संसार के प्रसिद्ध युद्ध
सुरेंद्र कुमार मिश्र

युद्ध सभी राष्ट्रों की स्थायी प्रक्रिया रही है। व्यक्ति, समाज, राज्य एवं राष्ट्र का अस्तित्व संघर्ष एवं युद्ध पर ही आधारित रहा है। युद्ध का महत्त्व मानव सभ्यता, विज्ञान तथा तकनीकी विकास में सदैव से रहा है। जब से इतिहास आरंभ होता है तब से लेकर आज तक युद्ध अनवरत चलता आ रहा है और मानव अस्तित्व के रहने तक निरंतर चलता रहेगा। विश्व के इतिहास में कोई भी ऐसा क्षण नहीं रहा है जबकि युद्ध न हुआ हो। इसीलिए कहा जाता है कि युद्ध एक आवश्यक बुराई है। अतः युद्धों का अध्ययन शांति की परिकल्पना को साकार बनाने के लिए आवश्यक है।

संसार के प्रसिद्ध युद्धों की प्रमुख घटनाओं, वास्तविक संघर्ष, तुलनात्मक सैन्य शक्ति, समरतांत्रिक फैलाव, कूट-योजना, समरतंत्र, शस्त्रास्त्रों, सिद्धांतों एवं सैन्य शिक्षाओं की मीमांसा करके जनसाधारण को युद्ध की जानकारी देकर शांति के प्रति जागरूकता पैदा करना इस पुस्तक का उद्देश्य है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के कारण युद्ध का अध्ययन अत्यंत परिश्रम से किए जाने की आवश्यकता है; क्योंकि यह राज्य का एक महान् कार्य है, जीने व मरने का क्षेत्र है तथा सुरक्षा व विनाश का मार्ग है। यदि भविष्य को सुरक्षित एवं शांतिपूर्ण रखना है, तो युद्ध को विस्तृत रूप में समझना होगा।

आज की आवश्यकता, आनेवाली पीढ़ियों की सुरक्षा एवं सुख-शांति के लिए उपयोगी यह पुस्तक निस्संदेह अध्ययन, अध्यापन एवं संग्रह के योग्य है। इसमें संसार के समस्त ज्ञात युद्धों (महाभारत काल तक) को समाहित किया गया है।

संसार के प्रसिद्ध युद्ध

संसार के प्रसिद्ध युद्ध

सुरेंद्र कुमार मिश्र

ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

स्व. जनरल भुवनचंद्र जोशी
पूर्व अध्यक्ष, भारतीय थलसेना
की
पुण्य स्मृति में।

प्राक्कथन

युद्ध का अध्ययन सदैव से मानव के लिए कौतूहल का विषय रहा है, क्योंकि मानव के विकास एवं विनाश का इतिहास इसी से आरंभ एवं अंततोगत्वा को प्राप्त हुआ है। युद्ध मानव जाति का एक प्राकृतिक क्रियाकलाप है, यद्यपि समय एवं स्थान की विभिन्नता के कारण इसका आनुपातिक स्वरूप परिवर्तित होता जा रहा है। यही कारण है कि 'मानव जाति की कहानी युद्ध है' माना जाता है। मानव आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित होकर तथा अपने अधिकार-क्षेत्र के विस्तार के लिए युद्ध का सदैव से सहारा लेता रहा है। जब से इतिहास आरंभ होता है, तब से लेकर अब तक युद्ध अनवरत चला आ रहा है और मानव अस्तित्व के रहने तक निरंतर चलता रहेगा, यह सार्वभौमिक सत्य है। जैसे-जैसे समुदाय, समाज, स्वराज्य व स्वराष्ट्र की सुरक्षा के लिए संघर्ष या युद्ध करना पड़ा है, जिसके कारण युद्ध के साधन के रूप में नवीन प्रकार के शस्त्रास्त्रों एवं समरतंत्र का विकास होता रहा है, प्रत्येक युद्ध विगत युद्ध से भयंकर होता रहा है और हमारी पाषाण युग की यात्रा परमाणु युग में प्रवेश कर चुकी है।

युद्ध में समय एवं परिस्थितियों के आधार पर परिवर्तन होता रहा है; किंतु इसके सिद्धांत सदैव स्थायी रहे हैं। यही कारण है कि विगत युद्धों में शस्त्रास्त्रों के आकार-प्रकार एवं प्रयोग में परिवर्तन अवश्य हुए हैं, किंतु सभी युद्धों के मूल तत्त्व प्रायः एक से ही रहे हैं। यदि गंभीरता से विचार करें तो ज्ञात होता है कि युद्ध समाज के विकास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक तत्त्व रहा है। आज युद्ध की विभीषिका ने समस्त संसार को अपनी परिधि में समेट लिया है, जिसके कारण मानव की उत्तरजीविता के लिए एक प्रश्नचिह्न लग गया है। यदि हम सभी शांति के आंतरिक भावना समर्थक हैं, तो युद्ध के बारे में हम सभी को जानना अत्यंत जरूरी है। यही कारण है कि विद्वानों के लिए युद्ध का अध्ययन सदैव से आकर्षण का विषय रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में संसार के प्रसिद्ध युद्धों की घटनाओं, वास्तविक संघर्ष, तुलनात्मक सैन्य-शक्ति, समरतांत्रिक फैलाव, कूटयोजना, समरतंत्र, शस्त्रास्त्रों, सिद्धांतों एवं सैन्य शिक्षाओं का विस्तृत उल्लेख करके युद्ध-कला के रहस्यों को उजागर करने का प्रयास किया है। युद्धों के माध्यम के संदर्भ में महान् सेनापति नेपोलियन का यह कथन भी उल्लेखनीय है—

"महान् सेनानायकों के अभियानों का बार-बार अध्ययन एवं मनन करो, उन्हें अपना आदर्श बनाओ। युद्ध-कला के भेदों को जानने तथा एक महान् सेनानायक बनने का यही गूढ़ रहस्य है।"

युद्ध की बढ़ती व्यापकता ने समस्त ब्रह्मांड को अपनी बाँहों में समेट लिया है। यदि हम सभी युद्ध के विगत, वर्तमान एवं भविष्य की जानकारी रखते हैं, तो शांति के संदर्भ में अच्छी तरह से विचार कर सकते हैं। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के कारण जहाँ प्रक्षेपास्त्रों की मारक शक्ति एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक हो गई है, वहाँ अंतरिक्ष से समस्त भू-मंडल को क्षण-भर में निशाना बनाया जा सकता है। अतः ऐसी स्थिति में मानवीय मूल्यों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि युद्ध के विषय में तथा इसके परिणामों के संदर्भ में जनसाधारण को जानकारी होनी चाहिए, जिससे मानवता के महाविनाश की तैयारी को निरंतर नियंत्रण में रखा जा सके। भारतीय युद्धों का उल्लेख हिंदी भाषा में कुछ सीमा तक उपलब्ध है, किंतु विश्व के अनेक युद्धों के हिंदी भाषा में वर्णन का आज तक अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक में इस कमी को पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक की रचना के लिए अपने पूज्य माता-पिता, श्रद्धेय गुरुजनों एवं सभी शुभचिंतकों को श्रेय देना चाहूँगा। सदैव अपनत्व व स्नेह के लिए श्री जगदीश अवस्थी (पूर्व सांसद्), डॉ. गायत्रीनाथ पंत (प्रति कुलपति, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली), श्री विवेक शर्मा (कुलपति, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक), श्री नरेंद्र कुमार पांडेय (लोक कल्याण अधिकारी, लोकसभा) तथा डॉ. लक्ष्मीनारायण (प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, आदमपुर) का आभार प्रकट करता हूँ। उन सभी विद्वानों का भी ऋणी हूँ, जिनकी रचनाओं का प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में किसी-न-किसी रूप में उपयोग किया गया है। इस कड़ी में मैं अपनी धर्मपत्नी डॉ. (श्रीमती) माया मिश्र (मोनिका), भतीजे आकाश मिश्र, पुत्र यशस्वी (याशी) एवं पुत्री सौम्या को भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

यह प्रयास अपने पवित्र उद्‌देश्य की संपूर्ति एवं शांति की रक्षा के निर्माण में सफल हो, यही मेरी हार्दिक कामना है। त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है, अतः क्षमायाचना के साथ आपके अमूल्य सुझाव की प्रतीक्षा रहेगी।

—**सुरेंद्र कुमार मिश्र**

अनुक्रम

महाभारत का संग्राम

(5000 ई. पू.)

भारतीय युद्धकला के संदर्भ में महाभारत में जो कौरव एवं पांडवों के मध्य युद्ध हुआ उससे स्पष्ट झलक मिलती है कि कूटयोजनात्मक एवं सामरिक दृष्टिकोण से ही वह महासंग्राम नहीं था, बल्कि उस समय प्रयुक्त हथियार, उच्चतम तकनीकी के प्रयोग की कहानी का भी एक स्पष्ट प्रमाण है। कौरवों और पांडवों की युद्धकथा में कूटयोजना, समरतंत्र एवं शस्त्रास्त्रों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। महाभारत में कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़े गए युद्ध का उल्लेख भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व तथा शल्यपर्व आदि में किया गया है। इस 18 दिन के युद्ध का वर्णन 415 अध्यायों तथा 22,977 श्लोकों में किया गया है। कौरव एवं पांडवों के मध्य लड़े गए इस महायुद्ध में पांडवों को अंततः सफलता प्राप्त हुई। इसमें दिखाया है कि युद्ध के आश्रय से ही राजा अथवा शासक राष्ट्र की रक्षा का भार वहन करने में समर्थ होता है।

महाभारत के अनेक प्रसंगों में कहा गया है कि धर्म-रक्षा तथा लोक-रक्षा के लिए युद्ध किया जा सकता है; किंतु ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जिसमें लोक-रक्षा के अलावा कुछ अन्य कारण भी युद्ध के प्रति उत्तरदायी रहे हैं। संक्षिप्त में हम कह सकते हैं कि इस दौरान युद्ध धर्म-रक्षा के साथ ही साम्राज्य-विस्तार की इच्छा, परस्पर प्रतिस्पर्धा तथा पूर्वकालीन वैमनस्य, शक्ति एवं शौर्य प्रदर्शन, स्वातंत्र्य-प्रेम आदि कारणों से भी हुए। इस दौरान जहाँ युद्धों के नियमों को ध्यान में रखा जाता था वहाँ इन नियमों की अवहेलना के अनेक उदाहरण भी स्पष्ट रूप से मिलते हैं; जिनमें लक्ष्यप्राप्ति को सर्वोपरि माना गया है।

महाभारत में कौरव एवं पांडवों द्वारा अंकुश, असि, गदा, चक्र, तोमर, धनुष, नाराच, परशु, प्रास, भाला, शर, शक्ति, तीक्ष्ण बाण, विषयुक्त बाण, पंखयुक्त बाण, अर्धचंद्राकार बाण तथा छुरा आदि शस्त्रास्त्रों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है।

वास्तविक संघर्ष

प्रातःकाल की बेला में कुरुक्षेत्र के मैदान में पांडवों की सात अक्षौहिणी* तथा कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना अपनी सुनिश्चित व्यूह-रचना में तैनात हो गई। पांडव सेना के आगे महाधनुर्धर अर्जुन थे, जिनके नंदिघोष रथ का संचालन श्रीकृष्ण स्वयं कर

* एक अक्षौहिणी सेना में 21,870 हाथी, 21,870 रथ, 65,610 घोड़े तथा 1,09,350 पैदल सैनिक होते थे।

रहे थे; जबकि कौरव सेना के आगे प्रधान सेनापति भीष्म पितामह थे। जब अर्जुन ने अपने पितामह, गुरु और संबंधियों को देखा तो उनके मन में आया कि स्वजनों की मृत्यु से प्राप्त राज्य लेकर क्या करेंगे ? इस मोह तथा भ्रम को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश दिया और अर्जुन ने युद्ध को अपना धर्म मानकर अपना प्रसिद्ध धनुष 'गांडीव' उठाया। कौरव एवं पांडवों की सेनाएँ युद्धारंभ होने की प्रतीक्षा में थीं। धर्मराज युधिष्ठिर ने वास्तविक संघर्ष आरंभ होने के पूर्व जब भीष्म पितामह को देखा तो अपना रथ छोड़कर पैदल ही उनकी ओर बढ़े और अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हुए उन्हें प्रणाम करके उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। युद्ध में धर्मनीति का स्पष्ट उल्लेख है।

व्यूह-रचना
(यौद्धिक संरचना)

	पांडव सेना		**कौरव सेना**	
युद्ध दिवस	*सेनापति*	*व्यूह का नाम*	*सेनापति*	*व्यूह का नाम*
1.	अर्जुन	वज्र	भीष्म	सर्वतोमुख
2.	धृष्टद्युम्न	सूचीमुख	भीष्म	सर्वतोमुख
3.	अर्जुन	अर्धचंद्राकार	भीष्म	गरुड़
4.	अर्जुन	अर्धचंद्राकार	भीष्म	मकर
5.	अर्जुन	श्येन	भीष्म	मकर
6.	युधिष्ठिर	मकर	भीष्म	क्रौंच
7.	युधिष्ठिर	वज्र	भीष्म	मंडल
8.	धृष्टद्युम्न	शृटक	भीष्म	सर्वतोमुख
9.	धृष्टद्युम्न	महाव्यूह	भीष्म	सर्वतोभद्र
10.	धृष्टद्युम्न	सर्वत्र विजयी	भीष्म	सर्वतोभद्र
11.	युधिष्ठिर	क्रौंच	द्रोणाचार्य	शकट
12.	युधिष्ठिर	मंडलार्ध	द्रोणाचार्य	गरुड़
13.	युधिष्ठिर	मंडलार्ध	द्रोणाचार्य	चक्रव्यूह
14.	युधिष्ठिर	मंडलार्ध	द्रोणाचार्य	शकट
15.	अर्जुन	अर्धचंद्राकार	द्रोणाचार्य	शकट
16.	अर्जुन	अर्धचंद्राकार	कर्ण	मकर
17.	अर्जुन	अनुपम	कर्ण	मकर
18.	अर्जुन	अनुपम	शल्य	सर्वतोभद्र
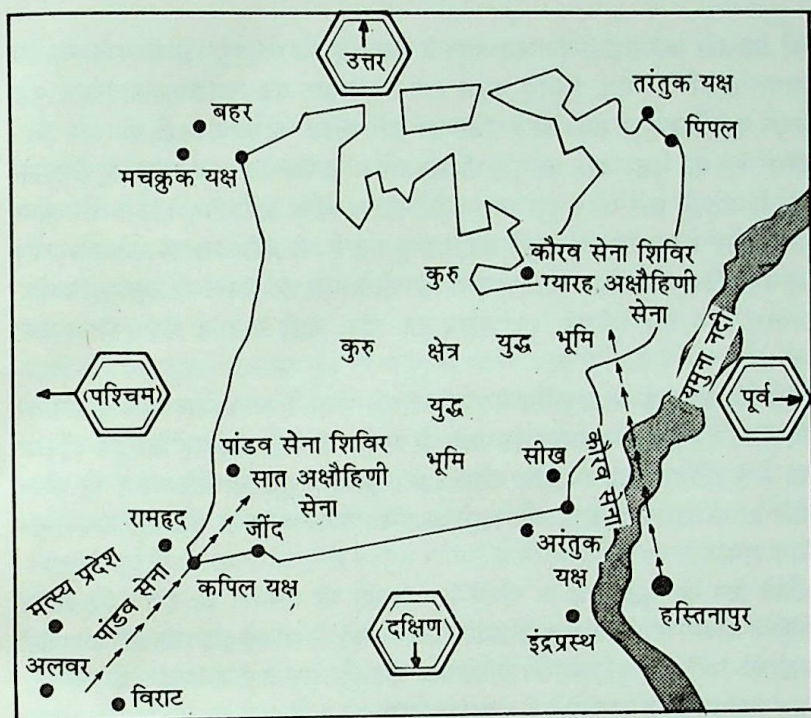
कुरुक्षेत्र भूमि में पांडव और कौरव सेना के शिविर

पहले दिन का युद्ध—युद्ध में कौरवों की सेना की तुलना में जब पांडवों ने अपनी सेना को सीमित देखा तो सूचीमुख व्यूह-रचना को अपनाया। भीम ने अपना आक्रमण अभियान आरंभ किया और अर्जुन की बाणवर्षा ने कौरवों पर अपना कहर ढा दिया। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध मच गया। भीष्म ने भी पांडवों पर अपनी शक्ति लगाई और अपार क्षति पहुँचाई। जिस समय पहला दिवस अवसान पर था, भीष्म सहित कौरव सेनापतियों ने अभिमन्यु पर प्रहार कर दिया; किंतु अभिमन्यु ने अपनी अद्‌भुत शस्त्र संचालन क्षमता का अभिनय किया। आज के युद्ध में विराटपुत्र उत्तम कुमार को वीरगति प्राप्त हुई। भीष्म पितामह के भीषण प्रहार से जहाँ कौरवों की विजय-प्राप्ति की लालसा बढ़ी, वहाँ पांडवों की सेना को बुरी तरह विचलित होना पड़ा। युधिष्ठिर जब विचलित होने लगे तो श्रीकृष्ण ने पुनः युद्ध के लिए उकसाया।

दूसरे दिन का युद्ध—दूसरे दिन का युद्ध वास्तव में भीष्म एवं अर्जुन का घोर युद्ध था। बाबा-पोते के मध्य जब युद्ध-कलाएँ एवं विनाश शुरू हुआ, उससे दोनों पक्षों में सन्नाटा छा गया। अर्जुन ने अपनी निपुणता का परिचय देकर भीष्म को भी विचलित कर दिया। इसी दौरान भीम ने भी अपना विकराल रूप कौरव सेना पर दिखाया। लगातार कौरवों का विनाश देखकर भीष्म भी अर्जुन से लड़ना छोड़कर भीम की ओर आगे बढ़े। भीम

की सहायता के लिए अन्य पांडव महारथी तैनात थे। उनके प्रहार से भीष्म का सारथि घायल होकर गिर गया, जिससे पांडव सेना का उत्साह बढ़ गया था। सायंकाल युद्ध रुकने पर कौरव सेना अपने को पराजित एवं हतोत्साहित अनुभव कर रही थी।

तीसरे दिन का युद्ध—आज का युद्ध भी पांडव सेना के पक्ष में ही रहा, जिससे दुर्योधन के मन में अशांति छाई रही। युद्ध समाप्त होते ही वह भीष्म के शिविर में गया और भीष्म से अनुरोध किया कि तन से ही नहीं, अपितु मन से भी मेरी सेना की सहायता करें। आज के दिन अर्जुन ने अपनी ओजस्वी प्रतिभा के बल पर अंबष्ठपति, श्रुतायु, चित्रसेन, जयद्रथ, द्रोण, कृप, भूरिश्रवा, शल, शल्य तथा भीष्म आदि योद्धाओं पर सफलता प्राप्त की।

चौथे दिन का युद्ध—आज कौरव सेना की ओर से भीष्म ने प्रबल प्रहार करके पांडवों को विचलित कर दिया। एक बार इस प्रहार से अर्जुन भी इतने गंभीर हो गए कि श्रीकृष्ण को उन्हें उत्तेजित तथा उत्साहित करना पड़ा। आज के युद्ध में घटोत्कच ने भी कौरव सेना पर जोरदार कहर ढाया और इससे आतंकित होकर आज का युद्ध यहीं समाप्त कर दिया गया।

पाँचवें दिन का युद्ध—युद्ध के पाँचवें दिन स्थिति की गंभीरता को देखते हुए अत्यंत क्रोधित होकर भीष्म पितामह ने अपने दिव्य अस्त्रों से पांडवों पर प्रहार किया। दोनों पक्षों की भारी क्षति हुई, असंख्य सैनिक मारे गए और समस्त सेना व्याकुल हो रही थी। अतः आज का युद्ध सायं होते ही रोक दिया गया।

छठे दिन का युद्ध—आज के युद्ध में पांडव सेना ने युद्धक्षेत्र में मकर व्यूह-संरचना अपनाई तथा कौरवों की ओर से भीष्म ने क्रौंच व्यूह-संरचना बनाई। दोनों पक्षों में जोरदार संघर्ष जारी रहा। आज के युद्ध में भीमसेन ने दुर्योधन को बुरी तरह से घायल कर दिया।

सातवें दिन का युद्ध—आज के युद्ध में कौरव सेना ने मंडल व्यूह-संरचना को अपनाया, जिसका मुख पश्चिम दिशा में रखा गया था। दूसरी ओर पांडवों ने अपनी सेना को वज्र व्यूह में तैनात किया। भीषण संघर्ष में आज भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर के साथ ही नकुल-सहदेव को उनकी सेनाओं सहित भारी आघात पहुँचाया। जिस समय शिखंडी आगे आया, भीष्म ने रास्ता बदल लिया। सायंकाल होते ही भीषण युद्ध ने विराम लिया।

आठवें दिन का युद्ध—आज के दिन अर्जुन का पुत्र इरावान कौरवों की सेना से युद्ध करते हुए मारा गया। इससे क्रोधित होकर अर्जुन ने जोरदार प्रहार किया, जिससे भीष्म भी उसका सामना नहीं कर सके। इसके साथ ही घटोत्कच के भीषण प्रहार ने दुर्योधन को बुरी तरह से भयभीत कर दिया। सूर्यास्त होते ही कौरवों को राहत मिली और वे निराश शिविर में लौटे। विचलित दुर्योधन ने भीष्म से अनुरोध किया कि मैं कर्ण को सेनापति बनाना चाहता हूँ, क्योंकि आपका मन से लगाव पांडवों की ओर है। इससे भीष्म को

भीषण क्रोध आया। दुर्योधन की बुद्धि भ्रष्ट समझकर कल के युद्ध में कुछ भी कसर नहीं रखने की सांत्वना दी।

नवें दिन का युद्ध—आज के दिन क्रोधित भीष्म ने अपना विकराल रूप धारण करके पांडवों की सेना को लक्ष्य बनाया, जिससे पांडवों की सेना में कोहराम मच गया। इस प्रहार से अर्जुन, कृष्ण सहित अनेक महारथी बुरी तरह घायल हो गए। कौरवों की सेना में यह देखकर अत्यंत उत्साह छा गया। कृष्ण भी क्रोधातुर होकर, रथ का पहिया उठाकर भीष्म पर प्रहार के लिए दौड़ पड़े। इसी समय सूर्यास्त होने लगा और आज का युद्ध समाप्त हो गया।

दसवें दिन का युद्ध—आज का युद्ध भी भीष्म के भीषण प्रहार के साथ आरंभ हुआ; किंतु जब शिखंडी भीष्म पितामह के सामने आ गया तो भीष्म ने तुरंत ही शस्त्र डाल दिए और अर्जुन ने उसकी आड़ से भीष्म पर भीषण बाण बरसाए; जिसके फलस्वरूप भीष्म रथ से गिर पड़े; परंतु बाण बहुत अधिक बिंधे थे, जिससे जमीन में उनका शरीर स्पर्श नहीं हुआ। उनके गिरते ही हाहाकार मच गया और आज का युद्ध विराम हो गया। भीष्म पितामह सूर्य के उत्तरायण आने की प्रतीक्षा में प्राण धारण करते हुए शर-शय्या पर शयन करने लगे।

ग्यारहवें दिन का युद्ध—कौरवों की सेना का सेनापति अब आचार्य द्रोण को नियुक्त किया गया। आचार्य द्रोण ने युद्धभूमि में अपनी सेना को शकट व्यूह में तैनात किया। दूसरी ओर पांडवों की सेना क्रौंच व्यूह में तैनात थी। अर्जुन ने अपने बाण छोड़कर गुरु द्रोण के चरणों की ओर गिराकर प्रणाम किया और आशीर्वाद प्राप्त किया। सामने से द्रोणाचार्य तथा बगल से कर्ण के जोरदार प्रहार ने पांडवों की सेना को भारी आघात पहुँचाया। दोनों ओर के महारथी आपस में भिड़ रहे थे; किंतु प्रमुख युद्ध द्रोण एवं युधिष्ठिर के मध्य चल रहा था। अचानक अफवाह फैली कि युधिष्ठिर को बंदी बना लिया गया तो अर्जुन, जो दूसरी ओर लड़ रहे थे, द्रोण की ओर दौड़े। उनके तीव्र प्रहार से कौरव सेना तितर-बितर हो गई और इसी के साथ आज का युद्ध समाप्त हो गया।

बारहवें दिन का युद्ध—आज कौरव सेना की ओर से त्रिगर्तराज ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा और देखते-ही-देखते युद्ध ने भयंकर रूप ले लिया; जिसमें भारी संख्या में त्रिगर्त सेना विनष्ट हो गई। अब अर्जुन को कौरव सेना की ओर से भगदत्त ने अपनी सेना सहित घेरने का प्रयास किया; किंतु अर्जुन ने अपनी कुशलता से सभी सैनिकों की गति को एकदम थाम दिया। क्रोधित होकर भगदत्त ने अर्जुन पर अंकुश का प्रहार किया; किंतु कृष्ण ने उसे रोककर उसके प्रहार को निष्फल कर दिया। अब अर्जुन ने अर्धचंद्राकार बाण का प्रहार करके भगदत्त को मौत के घाट उतार दिया। दूसरे मोरचे में द्रोणाचार्य एवं युधिष्ठिर के मध्य संघर्ष का क्रम जारी था। युधिष्ठिर के रक्षक सत्यजित ने जब द्रोण को रथविहीन कर दिया तो द्रोण ने अपने अर्धचंद्राकार बाण से उसका सिर काट दिया, जिससे युधिष्ठिर युद्धक्षेत्र से दुखित होकर लौटे। इसी समय अर्जुन ने भी

अपना रथ युधिष्ठिर की ओर मोड़कर कौरव सेना पर प्रहार किया और इसी के साथ ही सायंकाल की बेला आ गई। युद्ध विराम हो गया।

तेरहवें दिन का युद्ध—आज के दिन कौरवों ने अपनी योजना के अनुसार युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए चक्रव्यूह की रचना की और अर्जुन को त्रिगर्तों तथा संशप्तकों के द्वारा योजना के अनुसार इस व्यूह-रचना से दूर ले गए। युधिष्ठिर इस योजना से विचलित हो गए तो वीर अभिमन्यु ने इस व्यूह को तोड़ने की तैयारी की। उसकी रक्षा के लिए युधिष्ठिर के साथ ही भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न और सात्यकि आदि तैनात थे। अभिमन्यु जयद्रथ पर बाण प्रहार करके चक्रव्यूह में प्रवेश कर प्रथम द्वार को पार कर गया। द्वितीय द्वार पर द्रोण का धनुष काटकर तृतीय द्वार में प्रवेश कर गया। वहाँ कर्ण तैनात था, उसे अभिमन्यु को देखकर आश्चर्य हुआ और इसी समय अभिमन्यु ने तीव्र बाण प्रहार करके कर्ण को भी मूर्च्छित कर दिया।

चक्रव्यूह के चौथे द्वार पर अश्वत्थामा तैनात था। उसने अभिमन्यु का जमकर सामना किया; किंतु अंततः वह भी अभिमन्यु के रथ को आगे बढ़ने से नहीं रोक सका। अभिमन्यु के लगातार बढ़ते रथ को देखकर दुर्योधन बुरी तरह विचलित हो गया, अतः उसने अधर्मयुद्ध नीति को अपनाकर एक साथ सातों महारथियों को अभिमन्यु के विरुद्ध युद्ध में लगा दिया। चारों ओर से भीषण प्रहार ने अभिमन्यु को रथविहीन बना दिया। जब पैदल तलवार लेकर आगे बढ़ा तो तलवार भी नष्ट कर दी गई, अतः उसने रथ के पहिए को ही उठाकर कौरवों पर प्रहार किया; किंतु अश्वत्थामा ने रथ चक्र को भी तोड़ दिया। अब अभिमन्यु शस्त्रविहीन हो गया तो दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण ने गदा से प्रहार करके उसे घायल कर दिया, किंतु घायल अभिमन्यु ने उसकी गदा से उसे भी घायल कर दिया। अंततः दोनों मृत्यु शय्या में सो गए। इसी के साथ आज का युद्ध समाप्त हो गया।

चौदहवें दिन का युद्ध—आज के दिन कौरव सेना के नायक आचार्य द्रोण ने अपनी समस्त सेना को शकट व्यूह में तैनात किया, जो कि चौबीस कोस लंबी तथा दस कोस पीछे की ओर तक फैली हुई थी। इसके पीछे जयद्रथ अपनी सेना सहित खड़ा था। पांडव सेना की ओर से पुत्र-शोक से क्रोधित अर्जुन ने युद्ध की घोषणा होते ही अपने तीव्र बाणों के प्रहार से कहर ढाना शुरू कर दिया। किंतु द्रोण की योजना को जानकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ बगल से व्यूह के अंदर कर लिया; ताकि अर्जुन की प्रतिज्ञा जयद्रथ वध को पूरा किया जा सके। अर्जुन अपने आक्रोश के साथ व्यूह के बने द्वारों को लगातार तोड़ते हुए जयद्रथ की ओर बढ़ते गए। अर्जुन की सहायता के लिए सात्यकि और भीम को युधिष्ठिर ने आगे भेज दिया। अर्जुन दिन ढलने तक जयद्रथ को ढूँढ़ नहीं पाए और युधिष्ठिर की रक्षा के लिए वापस लौटने लगे। इसी समय सूर्यास्त होता दिखाई दिया और युद्ध विराम हुआ। कौरव सेना को अपार हर्ष था कि अर्जुन चिता में स्वयं प्रतिज्ञा के अनुसार भस्म होंगे, उसकी तैयारी हो गई। ज्योंही अर्जुन चिता

की ओर बढ़े, श्रीकृष्ण ने कहा—योद्धा को अपने शस्त्र सहित चिता पर चढ़ना चाहिए। चिता का दृश्य देखने के लिए जयद्रथ भी आ गया। इसी समय अर्जुन अपने धनुष-बाण सहित ज्योंही चिता की ओर बढ़े, श्रीकृष्ण ने कहा—अर्जुन, शत्रु सामने है, प्रहार करो, सूर्यास्त अभी नहीं हुआ। अर्जुन ने अपने तीव्र बाण से जयद्रथ का सिर उड़ा दिया और बादलों में छिपा सूर्य भी इसी समय निकल आया। कौरव सेना में मातम छा गया और पांडव सेना में उल्लास था।

इस घटना से पांडव सेना ने अनुमान लगा लिया कि आगामी युद्ध में कौरव कर्ण की शक्ति का प्रयोग करेंगे। जो अमोघ शक्ति कर्ण के पास है, उसके प्रहार से अर्जुन का बच पाना संभव नहीं होगा। अतः भीमपुत्र घटोत्कच को रात्रि में ही कौरव सेना पर प्रहार करने का आदेश दिया। घटोत्कच के भीषण प्रहार से कौरव सेना बुरी तरह भयभीत हो गई, अतः दुर्योधन ने कर्ण से किसी प्रकार इस प्रहार को रोकने का अनुरोध किया। कर्ण भी इस आक्रमण से विवश था, अंततः उसने अपनी अमोघ शक्ति का प्रयोग करके घटोत्कच को मार दिया। जिससे अर्जुन के विरुद्ध अब कर्ण का महाशक्ति साधन समाप्त हो गया।

पंद्रहवें दिन का युद्ध—कौरव सेना की ओर से आज द्रोण ने अपना विकराल रूप धारण करके पांडवों की सेना को धराशायी करना शुरू किया। उस समय युधिष्ठिर उनका सामना कर रहे थे। उनकी रक्षा के लिए द्रुपद एवं विराट तैनात थे; किंतु द्रोण ने अपने तीव्र बाणों से दोनों को ही मार दिया। द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोण पर जोरदार हमला किया; किंतु सफल नहीं हो सका। अतः द्रोण के इस प्रहार से पांडव सेना में खलबली मच गई। इसी समय कूटनीति के द्वारा द्रोण को पुत्र के वध की सूचना देकर भाव-विह्वल कर दिया, जिससे वे अपने शस्त्र त्यागकर अपने रथ में ही भावमग्न होकर बैठ गए। इसी समय धृष्टद्युम्न ने अपनी तलवार से उनका सिर धड़ से अलग कर दिया। द्रोण की मृत्यु से कौरव सेना में हाहाकार मच गया। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने अपनी समस्त शक्ति व आक्रोश सहित पांडवों पर प्रहार किया। अर्जुन ने ही उसका सामना किया; किंतु सायं होते ही आज का युद्ध समाप्त हो गया।

सोलहवें दिन का युद्ध—कौरव सेना का सेनापति अब कर्ण को नियुक्त किया गया। उसने शंख बजाकर पांडव सेना पर प्रहार शुरू किया। पांडव सेना के सेनानी नकुल को घायल कर दिया। कर्ण का सामना करने के लिए अर्जुन आगे बढ़ने लगे तो कौरवों के सेनापति सहित दुर्योधन ने अर्जुन का सामना किया; किंतु सफलता नहीं मिली। इधर अर्जुन ने अपने प्रबल प्रहार से अश्वत्थामा को जहाँ युद्धक्षेत्र से बाहर कर दिया, वहीं दंड सेनापति को भी मार गिराया। कर्ण का सामना अब सात्यकि कर रहा था। सायंकाल होते ही आज का युद्ध विराम हो गया।

सत्रहवें दिन का युद्ध—आज का युद्ध योजना के अनुसार कर्ण एवं अर्जुन के मध्य प्रमुख रूप से होना था। इसी कारण कर्ण ने अपना सारथि शल्य को बनाया था; ताकि कृष्ण के

समतुल्य किया जा सके। पांडव सेना ने जब शल्य को सारथि के रूप में देखा तो बड़ा आश्चर्य लगा। पांडव सेना की ओर से अर्जुन ने कर्ण का सामना किया। दूसरी ओर भीम के भीषण प्रहार से कौरव सेना में उथल-पुथल मच गई। जब कर्ण ने देखा तो उस ओर अपना रथ मोड़ दिया। कर्ण ने भीम पर जोरदार बाण प्रहार किए; किंतु भीम का आज भयंकर रूप था। उसने कर्ण को ही अपने प्रहार से मूर्च्छित कर दिया तो शल्य ने रथ को वहाँ से हटा लिया। अब भीम का सामना करने के लिए दुःशासन गदा लेकर आगे बढ़ा। भीम ने अपनी गदा के प्रहार से उसे धराशायी कर दिया।

अर्जुन एवं कर्ण के बीच आज निर्णायक युद्ध आरंभ हुआ। दोनों सेनापतियों ने अपनी कुशल धनुर्विद्या का एक-दूसरे पर जमकर प्रयोग किया। कर्ण के सारथि शल्य गंभीर रूप से घायल हो गए, जिससे कर्ण के लिए संकट पैदा हुआ। इसके बावजूद अर्जुन के बाणों की बराबरी जारी रही। इसी दौरान दुर्भाग्यवश कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धँस गया तो वह उसे निकालने में जुट गया। इसी समय अर्जुन ने कृष्ण के इशारे पर चंद्राकार तीर के प्रहार से कर्ण का सिर धड़ से अलग कर दिया। इसी के साथ आज के युद्ध का अंत हो गया। आज के युद्ध में पांडव सेना ने भारी संख्या में कौरव सेना को नष्ट कर दिया।

अंतिम दिन का युद्ध—आज कौरव सेना की ओर से शल्य को सेनापति नियुक्त किया गया। हताश एवं निराश कौरव सेना अंतिम आक्रमण के लिए तैयार थी। दूसरी ओर पांडवों की सेना में आज अधिक उत्साह था। युधिष्ठिर ने शल्य का सामना अपने सहायक सेनापतियों के साथ किया। इसमें शल्य को चारों ओर से घेरकर मौत के घाट उतार दिया गया। सहदेव ने शकुनि को आज अपना निशाना बनाया और शकुनि को धराशायी कर दिया। दुर्योधन यह स्थिति देखकर अत्यंत भयभीत हुआ और कुछ दूर एक सरोवर के निकट छिप गया; किंतु देख लिये जाने के कारण भीम ने दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों के मध्य जोरदार गदा-युद्ध छिड़ गया। कृष्ण का इशारा पाकर भीम को दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा याद आ गई। यद्यपि धर्मयुद्ध में कमर के नीचे गदा का प्रहार करना वर्जित था; किंतु धर्मयुद्ध को ताक पर रखकर दुर्योधन की जाँघ पर भीम ने अपनी गदा का जोरदार प्रहार किया, जिससे वह गिर गया और पुनः सिर पर गदा मारकर उसे मौत के घाट उतार दिया। कौरव सेना की ओर से अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने पांडवों के विनाश का संकल्प किया और युद्धभूमि से बहुत दूर जाकर भावी कार्यक्रम को सुनिश्चित करने लगे।

महाभारत युद्ध के अठारहवें अथवा अंतिम दिन की संध्या का सूर्यास्त इसी के साथ हो गया। यद्यपि उसके बाद कूटनीतिक एवं आकस्मिक छापामार कार्यवाही करके कौरव सेना के बचे सेनापतियों ने पांडवों के परिवार एवं कुशल सेनापतियों को अपना शिकार बनाना जारी रखा।

इस प्रकार महाभारत युद्ध के अठारह दिनों में अपने समय की श्रेष्ठ सामरिक

संरचना, कूटयोजना एवं समरतंत्र का समन्वय उपस्थित किया गया। यह वास्तव में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। युद्ध में धर्म को भी ताक पर रखना कई बार आवश्यक हो जाता है; जैसाकि इस युद्ध में अनेक बार देखने को मिला है। लक्ष्य अथवा उद्देश्य-प्राप्ति के लिए हर कार्यवाही उचित एवं आवश्यक परिलक्षित होती है।

सैन्य शिक्षाएँ

महाभारत में कुरुक्षेत्र की इस लड़ाई ने अनेक सामरिक संरचनाओं, कूटयोजना एवं समरतंत्र का जो समन्वय प्रदर्शित किया है वह अपने युग की सर्वश्रेष्ठ युद्धकला ही नहीं थी, बल्कि आगामी वर्षों के लिए अनेक सिद्धांत स्थापित करने का सर्वोत्तम उदाहरण है। अब हम संक्षिप्त में इससे प्राप्त सिद्धांतों एवं सैन्य शिक्षाओं का उल्लेख करते हैं—

1. किसी भी अभियान में लक्ष्य का निर्धारण एवं निर्वाह करना एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके परिपालन के लिए नैतिक नियमों एवं सिद्धांतों को भी ताक पर रख देना चाहिए, तभी उद्देश्य-प्राप्ति की संभावनाएँ प्रबल होती हैं। जैसा अनेक जगहों पर नैतिक नियमों का खुला उल्लंघन दिखाया गया है।
2. युद्धों में समय एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कार्यवाही करनी चाहिए, जोश एवं त्वरित कार्यवाही स्वयं के लिए भी हानिकारक हो सकती है। अतः युद्धों में संतुलित स्थिति बनाए रखकर कार्यवाही करनी चाहिए।
3. युद्धों में केवल सैनिक संख्या ही महत्त्वपूर्ण नहीं होती, बल्कि उनके सेनापतियों की सूझबूझ, सामरिक संरचना, समरतांत्रिक चालें एवं परिस्थितियों के अनुसार कार्यवाही ही सफलता का एक ठोस आधार है।
4. इस युद्ध में पांडवों ने कौरवों की स्थिति का सही जायजा लेते हुए उन पर इस प्रकार हमले की कार्यवाही की कि कौरव आक्रमणात्मक स्थिति की बजाय प्रतिरक्षात्मक स्थिति में अधिक रहे, जिससे समय एवं स्थान के साथ-साथ पांडवों ने भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से लाभ उठाया।
5. युद्ध में अपनाई जानेवाली श्रेष्ठ संरचनाओं का अपना अलग ही महत्त्व है; जैसे—कौरव सेना द्वारा अपनाई गई संरचना 'चक्रव्यूह' में पांडव सेना को केवल अभिमन्यु से ही हाथ नहीं धोना पड़ा; बल्कि भारी संख्या में सैनिक क्षति उठानी पड़ी।
6. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि शत्रु की प्रत्येक चाल पर अपनी निगरानी रखना तथा उसी के अनुरूप अपनी कार्यवाही ही सफलता का एक ठोस आधार है। पांडवों की ओर से श्रीकृष्ण ने कौरवों की योजना एवं

गतिविधियों को जान लेने के बाद ही अपनी तैयारी करके पांडवों को विजयश्री दिलवाई।

7. युद्धों में सेनापतियों की मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी कार्यवाही में पड़ता है; जैसाकि इस महायुद्ध में अधिकांश कौरव सेनापति पांडवों को मन से विजय दिलाना चाहते थे; किंतु धर्मपालन के लिए दुर्योधन की ओर से लड़ रहे थे। अतः युद्ध में शारीरिक प्रक्रिया के साथ ही मानसिक प्रक्रिया का विशेष योगदान होता है।
8. इस अभियान में पांडवों की सेना की सफलता का एक प्रमुख कारण गतिविधियों के अनुसार त्वरित कार्यवाही भी थी; जिसे हम आधुनिक युद्ध के सिद्धांतों में गतिशीलता के सिद्धांत का परिपालन कह सकते हैं। इसमें सेनापति जहाँ स्वयं सजग एवं सतर्क रहता है, वहाँ उसके विरोधी को उसी अनुपात में खतरा बढ़ जाता है।
9. इस युद्ध में पांडवों की सेना के संचालक श्रीकृष्ण ने शत्रु की चतुरतापूर्ण चालों के विरुद्ध सेना, संसाधनों एवं संचार व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करके एक निर्णायक सफलता प्राप्त की और अपने उद्देश्य के अनुसार कौरवों को कार्यवाही के लिए मजबूर कर दिया था।
10. किसी भी अभियान को सफल बनाने में सेनापति को अपनी परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिए, अन्यथा पराजय के अवसर बढ़ जाते हैं। जैसाकि दुर्योधन ने अपने भीष्म एवं द्रोणाचार्य जैसे महासेनापतियों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने नहीं दिया। अंततः पराजय का मुँह देखना पड़ा।

मेराथन का संग्राम

(490 ई. पू.)

प्रस्तावना

डेरियस ईरान का एक प्रसिद्ध एवं पराक्रमी शासक था। उसका राज्य पश्चिम की ओर ईजियन सागर से लेकर पूर्व की ओर सिंधु नदी तक और उत्तर की ओर सिथियन के मैदान से लेकर दक्षिण की ओर मिस्र की नील नदी तक फैला हुआ था। उसका राज्य कुल 20 प्रांतों में बँटा हुआ था तथा प्रत्येक प्रांत का प्रमुख अधिकारी (सत्रप) स्वतंत्र राजा की भाँति था। एशिया के पश्चिमी किनारे पर ग्रीक लोगों की बस्तियाँ थीं, जिन्हें आयोनिया कहा जाता था। इन ग्रीक बस्तियों में डेरियस का ही अधिकार था। इसलिए उसने ग्रीक जनता को खुश रखने के लिए इस प्रांत का अधिकारी (सत्रप) भी ग्रीक नागरिक को बनाया। परंतु ग्रीक डेरियस के समर्थक नहीं थे और उसके विरुद्ध बगावत का बीड़ा उठा लिया। ग्रीक आरिस्टागोरास ने इस अभियान के लिए स्पार्टा की सहायता माँगी; परंतु स्पार्टा के राजा क्लियोमिनिस ने सहायता देने से इनकार कर दिया। अब ग्रीक आरिस्टागोरास ने एथेंस की सहायता माँगी और एथेंस के साथ मिलकर डेरियस का मुकाबला किया। अंततः सैन्य-शक्ति एवं संगठन के अभाव में ग्रीक सेना को पराजित होना पड़ा तथा एक बार ग्रीक पुनः बिखर गए।

डेरियस की साम्राज्यलिप्सा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। एक दिन डेरियस ने सब ग्रीक लोगों को संदेश भेजा कि "इस बात को जतलाने के लिए कि तुमको हमारी अधीनता स्वीकार है, तुम इस जासूस के द्वारा मिट्‌टी और पानी भेज दो।" थीब्स तथा ईजीना ने तो दासता स्वीकार कर ली; परंतु एथेंस और स्पार्टा ने इसका विरोध किया तथा ईजीना को भी लड़कर अपने अधीन कर लिया। ईरानी शासक डेरियस ने बदला लेने के लिए भारी जहाजी सेना के साथ ग्रीस पर चढ़ाई कर दी और इस युद्ध का शुभारंभ हो गया।

वास्तविक संघर्ष

ईरान ने भारी जहाजी सेना के आक्रमण द्वारा ग्रीस पर अधिकार करने का जोरदार प्रयास किया, जिससे मार्ग में आनेवाले टापू भी जीत लिये तथा यूबिया में आकर इरिट्रिया को भी घेर लिया और उसे जलाकर नष्ट कर दिया। मेराथन के मैदान में अपनी सेना का पड़ाव लगा दिया। ईरानी सेना का मुकाबला करने के लिए प्लेटिका के ग्रीक

लोगों ने स्पार्टा का सहयोग लेना आवश्यक समझा; इसलिए अपने धावकों को भेजा। जिन्होंने 150 मील की दूरी 48 घंटे में तय की। स्पार्टा के सहयोग से तथा प्रतिभाशाली एवं साहसी मिल्टियाड्स के कुशल नेतृत्व में 11,000 ग्रीक सैनिकों ने ईरानी डेरियस के नेतृत्ववाली 20,000 सैनिकों की सेना को पूर्णतया पराजित कर दिया।

इस युद्ध में ग्रीक सेना में गुलामों की भरती थी, जिन्हें यौद्धिक प्रशिक्षण भी प्राप्त नहीं था, परंतु वे अत्यंत उत्साही एवं जोशीले थे। इसका रहस्य यह था कि ग्रीक सेनापति ने उन्हें वचन दिया था कि यदि इस युद्ध में विजय मिली तो उन्हें स्वतंत्र कर दिया जाएगा। इस सफलता से मिल्टियाड्स की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। इस युद्ध में पराजय से डेरियस (ईरानी) को बड़ा आघात पहुँचा और पुनः बदला लेने के लिए जोरदार सैनिक तैयारी की; परंतु इतने में ही उसका देहांत हो गया।

परिणाम एवं शिक्षाएँ

1. इस युद्ध से यूनान के छोटे-छोटे प्रांतों में एकता की लहर जाग्रत हुई, ताकि भावी युद्धों का सहजता से सामना कर सकें।
2. इस युद्ध में यूनान की सफलता का श्रेय मिल्टियाड्स के कुशल नेतृत्व को ही है, जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा ईरान की विशाल सेना को पराजित होने के लिए मजबूर कर दिया।
3. युद्धों में सफलता का आधार बड़ी संख्या में सेना का होना नहीं होता; बल्कि सैनिक-भावना (उत्साह) का होता है।
4. युद्ध में गतिशीलता का सिद्धांत सदैव ही सहायक सिद्ध होता है; जैसाकि इस युद्ध में गतिशील धावकों के द्वारा स्पार्टा को संदेश भेजकर सहयोग लिया गया।
5. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि सहयोग के बल पर शक्तिशाली सेना का मुकाबला ही नहीं किया जा सकता; बल्कि उस पर अधिकार भी किया जा सकता है।
6. युद्ध में सफलता पाने के लिए आक्रामक पहल अनिवार्य है; जैसाकि इस युद्ध में ईरानी सेना ने मेराथन के मैदान में छावनी बनाकर शत्रु का इंतजार किया, जबकि ग्रीक सेना ने आक्रामक पहल करके युद्ध की सफलता को अपने पक्ष में कर लिया।

अरबेला का संग्राम

(331 ई. पू.)

जिस समय यूनानी सम्राट् सिकंदर सिंहासनारूढ़ हुआ था, उसके चारों ओर अनेक समस्याएँ मुँह खोले हुए खड़ी थीं; परंतु उसने बड़ी कुशलता एवं धैर्य के साथ इन समस्याओं को हल किया। सबसे पहले उसने थिसली पर धावा किया और बिना रक्तपात के ही विजय हासिल कर ली। इसके फलस्वरूप उसे थिसली की लीग (league) का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। इस प्रकार उसने अपने साम्राज्य-विस्तार का श्रीगणेश कर दिया। ग्रीस को अपने अधीन करके उसने उत्तरी तथा पश्चिमी सीमांत क्षेत्र की जंगली जातियों को भी अपने अधीन कर लिया। वहाँ जब उसने यह सुना कि थीब्स में विद्रोह हो गया है, तो वह बिजली की तेजी से वापस लौटा और थीब्स को पूर्णतया नष्ट कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप एथेंस के लोग भी भयभीत हो गए और उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया।

इस प्रकार ग्रीस को एकसूत्र में बाँधकर सिकंदर विश्व-विजय के लिए निकला। उसने कहा, "मैं उन ग्रीक बस्तियों को स्वतंत्र करने जाता हूँ, जिन्हें ईरान के राजा ने जीत लिया है।" किंतु उसका भीतरी उद्देश्य दूसरा ही था। उस समय ईरान का राज्य पूर्व की ओर भारतवर्ष से लेकर पश्चिम में मिस्र तक फैला हुआ था। यह सारा राज्य जीतकर अपने अधिकार में करना, सिकंदर की चढ़ाई का मुख्य उद्देश्य था। ईरान के इस राज्य में सूजा, पर्सेपोलिस, एक्बाटना, डमास्कस, बेबिलोन आदि अनेक प्रसिद्ध शहर थे। उस समय ईरान की गद्दी पर डेरियस तृतीय आसीन था।

अभियान के आरंभ में उसे अनेक लड़ाइयों में महत्त्वपूर्ण सफलता मिली, जिसके कारण साम्राज्य-विस्तार की इच्छा निरंतर बढ़ती गई। सिकंदर ने ईरान के समुद्री सत्तावाले नगरों पर अधिकार करने का निश्चय किया और 333 ई.पू. में प्रमुख बंदरगाहों पर कब्जा कर लिया। इसी बीच डेरियस तृतीय सिकंदर का सामना करने के लिए ईसस नदी तट पर पहुँचा, परंतु इस आक्रमण में डेरियस पराजित होकर भाग गया। इसके बाद सिकंदर ने शेष सभी अड्डों पर अधिकार कर लिया तथा साइप्रस भी उसके अधिकार में आ गया। इस प्रकार उसने पूर्वी भूमध्यसागर पर अधिकार जमा लिया।

इसके पश्चात् सिकंदर पैलिसटाइन होता हुआ गाजा पहुँचा तथा उस पर विजय प्राप्त करके उसने ईरान से मिस्र के रास्ते को बंद कर दिया। अंत में मेनफिस पहुँचकर उसने अलेक्जेंड्रिया नामक नगर बसाया। मिस्र के शासन का प्रबंध करके वह टायर
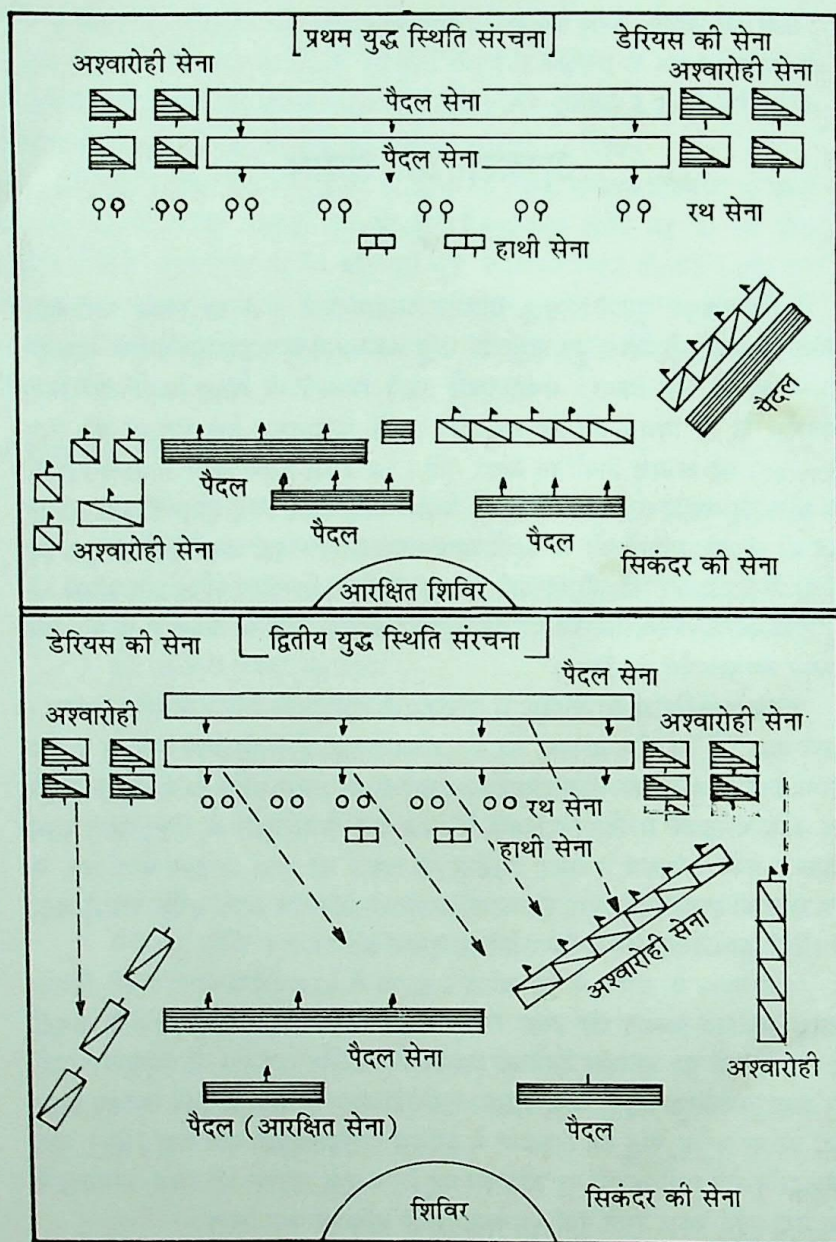
अरबेला का संग्राम, 331 ई.पू.

पहुँचा। टायर नगर समुद्र से कुछ दूर एक द्वीप पर बसा हुआ था। सिकंदर ने टायर पर भी अपना अधिकार जमा लिया तथा स्पार्टा की रोकथाम के लिए प्रबंध करके वह एंटियो चल दिया। सिकंदर की बढ़ती विजय-यात्रा को देखकर डेरियस ने दो बार उससे संधि के लिए प्रार्थना की; पर उसने प्रार्थना स्वीकार नहीं की। वह अगले युद्ध की तैयारी में लगा रहा। अंत में मेनफिस तथा पेल्यूजियम नामक स्थानों पर अपना सैनिक पड़ाव डालकर वह एशिया की ओर बढ़ा।

सिकंदर की सैन्य-शक्ति

सिकंदर की सेना इस प्रकार से संगठित थी कि उसमें युद्ध के समरतांत्रिक उद्देश्य को प्राप्त करने की पूरी क्षमता थी। उसके कंपेनियन अश्वारोही सैनिकों के पास तलवारें व भाले रहते थे तथा वे शिरस्त्राण और कवच भी धारण करते थे। उन्हें लगभग 1,500 के रेजीमेंट्स में विभक्त किया गया था। पैदल सेना में सैनिकों के पास 14 फीट लंबा 'सरिसा' (भाला), हलका कवच एवं ढाल होती थी। पैदल सेना भी लगभग 1,500 की टुकड़ियों में बँटी हुई थी। इनकी सबसे छोटी इकाई 'फाइल' कहलाती थी, जिसकी संख्या सिकंदर ने 16 सैनिकों के स्थान पर 8 सैनिकों की कर दी थी। इसके साथ ही कंपेनियन और फैलेंक्स के बीच में होप्सलाइट थे, जो हलकी पैदल सेना के स्थान पर थे। इन तीनों सेनाओं को इस प्रकार से व्यूहबद्ध किया जाता था कि वह शत्रु के ऊपर एक तिरछी दीवार की भाँति आक्रमण करके उसके पार्श्व को ध्वस्त कर सके। तेज अश्वारोही और मंद पैदल सैनिकों के मध्य हलकी पैदल सेना थी, जो दोनों को जोड़कर रखती थी। घेराबंदी के लिए कैटापुल्ट (युद्ध-यंत्र) तथा वेलैस्टे नामक युद्ध-यंत्र भी थे। सिकंदर ने आवश्यक इंजीनियरिंग व साज-सज्जा का भी संगठन किया था। उसकी दोनों सेनाओं में सैनिकों की संख्या इस प्रकार थी—

पैदल सेना—40,000,

अश्वारोही सेना—7,000।

डेरियस की सैन्य-शक्ति

ईरानी शासक डेरियस तृतीय के पास 1,00,000 पैदल सैनिक, 40,000 अश्वारोही सैनिक तथा छुरों से युक्त 200 रथ संगठित थे। इस सेना को डेरियस ने गोगामेला के पड़ाव पर उसी मैदान को समतल बनाया; ताकि रथों का समुचित प्रयोग किया जा सके। डेरियस की सेना में लगभग 25 हाथी भी थे। डेरियस ने अपनी विशाल सैन्य-शक्ति के आधार पर सिकंदर की सेना को घेरने की गूढ़ योजना बनाई। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने सबसे आगे रथ सेना को संगठित किया तथा उनके मध्य भाग में हाथी खड़े किए; ताकि जोरदार आक्रमण करके शत्रु की सेना में भय का वातावरण बनाया जा सके। रथ सेना के पीछे अश्वारोही सेना का गठन किया। डेरियस

ने अग्र भाग एवं मध्य भाग की सेना को तीन भागों में विभक्त किया था—

दाहिना भाग (Right Wing) सेनापति मेजियस के नेतृत्व में,
मध्य भाग (Centre Wing) स्वयं (डेरियस) के नेतृत्व में,
बायाँ भाग (Left Wing) सेनापति बेसुस के नेतृत्व में।

इस प्रकार डेरियस ने अपनी सैन्य-शक्ति को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए सैनिकों को तलवार तथा लंबे भाले दिए। उसके अश्वारोही भाले व तलवारों के साथ ढाल भी रखते थे।

अरबेला से लगभग 70 मील पश्चिम में प्राचीन निनवेह (Nineveh) के निकट गोगामेला के मैदान में डेरियस की सेना को जब सिकंदर के जासूसों ने व्यूहबद्ध होते देखा तो इसकी जानकारी सिकंदर को दी, जिससे सिकंदर सजग हो गया और अपनी सैन्य प्रतिभा के बल पर समस्त क्षेत्र का निरीक्षण एवं विश्लेषण करके अपने सेनापतियों से परामर्श किया। शत्रु को आश्चर्यचकित करने के उद्देश्य से कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जो इस प्रकार थे—

1. अपनी सेना में नियंत्रण रखने हेतु रात्रि में आक्रमण करना सामरिक दृष्टि से लाभदायक नहीं होगा।
2. शत्रु के पास पहुँचने के समय अपनी सेना द्वारा किसी प्रकार का शोर या आवाज नहीं की जाएगी, ताकि उसको हमारे निकट पहुँचने का आभास भी न हो सके।
3. शत्रु पर बड़ी तेजी के साथ तथा अचानक हमला किया जाएगा, जिससे वह हतप्रभ होकर रह जाए।
4. अपनी अश्वारोही सेना को प्रमुख निर्णायक सेना (Decisive Army) के रूप में प्रयोग किया जाएगा।
5. युद्ध में नारे तथा विजयघोष संग्राम के अंतिम चरण में ही तेजी के साथ लगाए जाएँगे, जिससे सेना अपने पूरे जोश के साथ हमला कर सके।

वास्तविक संघर्ष

30 सितंबर, 331 ई. पू. जब ईरानी सेना रात्रिकालीन उत्सव में व्यस्त थी, सिकंदर की सेना आराम कर रही थी। डेरियस ने अपनी सेना को संग्राम के एक दिन पूर्व ही व्यूहबद्ध कर लिया था। जब 1 अक्टूबर, 331 ई. पू. को सिकंदर ने यह देखा कि ईरानी सेना की अगली पंक्ति उसकी पंक्ति से दोगुनी लंबी है और शत्रु उसको दोनों ओर से घेर सकता है। अतः अपनी व्यूह-रचना करते समय सिकंदर ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि उसके पार्श्वों पर शत्रु आक्रमण न कर सके। अतः सिकंदर ने अपनी सेना को कुछ तिरछे होकर (Oblique Order) बढ़ने का आदेश दिया।

सिकंदर ने सेना की व्यूह-रचना इस प्रकार की थी कि वह बदलती हुई

परिस्थितियों में तुरंत परिवर्तन कर सके। उसके दाहिने पार्श्व में कंपेनियन अश्वारोही तथा तीन टैक्सिस (Taxies) पैदल सेना थी। अश्वारोही सेना का नियंत्रण फिलोटस (Philotas) द्वारा किया जा रहा था। बाएँ पार्श्व की अश्वारोही तथा पैदल सेना का नियंत्रण सेनापति पारमिनिवो (Parmenio) के द्वारा किया जा रहा था। इस पंक्ति के पीछे सिकंदर ने दोनों पार्श्वों में दोहरी पंक्ति लगा रखी थी। दाहिने पार्श्व में पीछे की ओर कोण बनाती हुई हलकी पैदल सेना थी तथा उसके आगे अश्वारोही सेना के तीन स्क्वैडर्न (सैनिक यूनिट) थे। इसी प्रकार बाईं ओर पीछे की तरफ कोण बनाती हुई एक पैदल सेना की टुकड़ी तथा दो अश्वारोही सेना के स्क्वैडर्न थे। उनके आगे पैदल सेना की एक और टुकड़ी थी, जिसे यह आदेश दिया गया था कि वह पार्श्व में घूमकर आक्रमण का सामना कुछ इस तरह करे मानो वह स्वयं आक्रमणकारी है। हलकी धनुर्धारी सेना आगे थी, जिससे ईरानी रथों का सामना किया जा सके। इस प्रकार सिकंदर की व्यूह-रचना सभी ओर से सुरक्षित थी, ताकि डेरियस की योजना को विफल किया जा सके। सिकंदर के 40,000 पैदल तथा 7,000 अश्वारोही सैनिक बड़े ही व्यवस्थित रूप में नियोजित किए गए थे।

डेरियस की सेना की व्यूह-रचना इस प्रकार की गई थी कि पहली पंक्ति में अश्वारोही सेना संगठित थी जिसके मध्य भाग का नियंत्रण स्वयं डेरियस कर रहा था। अश्वारोही सेना के आगे बाएँ पार्श्व में 100 रथ, मध्य में 50 रथ तथा दाहिने पार्श्व में 50 रथ तैनात थे। इन रथों में तेज छुरे लगे हुए थे। शाही अश्वारोही स्क्वैडर्न के आगे 25 हाथियों को लगाया गया था। दूसरी पंक्ति में पैदल सेना को संगठित किया गया था।

जब सिकंदर की सेना ने ईरानियों की सेना की ओर मार्च प्रारंभ किया तो सीधे आक्रमण न करके ईरानियों के बाएँ पार्श्व में पीछे की तरफ मार्च किया। यह देखकर डेरियस की सेना ने उसके समानांतर चलना आरंभ कर दिया। डेरियस ने अपनी साइथियन (Scythian) अश्वारोही सेना को आगे बढ़कर आक्रमण करने का आदेश दिया। इसके विरुद्ध सिकंदर की मेनीडास (Menidas) के नेतृत्ववाली अश्वारोही सेना ने आगे बढ़ना आरंभ रखा। जब डेरियस ने देखा कि शत्रु की सेना समतल किए हुए क्षेत्र से आगे बढ़ रही है तो डेरियस ने इस डर से कि उसके रथ बेकार हो जाएँगे, अपनी सेना के बाईं ओरवाली अश्वारोही सेना को आगे बढ़ाकर सिकंदर की सेना को रोकने का प्रयास किया। फलतः सिकंदर की मेनीडास के नेतृत्ववाली अश्वारोही सेना को भ्रम के कारण पीछे हटना पड़ा तो सिकंदर ने अरिस्टो (Aristo) के नेतृत्ववाली अश्वारोही सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया, जिसके जवाब में ईरानी कमांडर बेसुस (Bessus) ने बैक्ट्रियन (Bactrian) तथा साइथियन (Scythian) अश्वारोही सेनाओं को आगे बढ़ने का आदेश दिया। इस अश्वारोही सेना की मुठभेड़ में सिकंदर की अश्वारोही सेना को भारी हानि उठानी पड़ी, क्योंकि साइथियन अश्वारोही सैनिक कवचयुक्त थे। इस अव्यवस्था के बावजूद सिकंदर की सेना की बहादुरी तथा अनुशासन ने अपना प्रभाव बनाए रखा, जिसके परिणामस्वरूप

ईरानी सेना को पीछे हटना पड़ा।

उधर डेरियस ने सिकंदर की अश्वारोही सेना की अव्यवस्था का लाभ उठाने के लिए अपने रथों को उसके फैलेंक्स (Phalanx) पर आक्रमण करने का आदेश दिया। जैसे ही रथ आगे बढ़े, सिकंदर की हलकी धनुर्धारी एवं भालाधारी पैदल सेना ने अपने तीव्र प्रहारों से उनका डटकर मुकाबला किया। इस प्रकार युद्ध का एक चरण समाप्त हो गया।

युद्ध के द्वितीय चरण में सिकंदर ने अपनी सेना के पीछे की ओर पहुँच जानेवाले शत्रुओं पर प्रहार करने का आदेश दिया। सिकंदर ने चारों ओर घूमकर अपने नेतृत्व में अश्वारोही दल तथा चार टैक्सिस (Taxies) (पैदल सेना का संगठन) के साथ ईरानियों की अश्वारोही एवं पैदल सेना के मध्य दूरी (Gap) देखकर डेरियस पर तेजी से हमला बोल दिया। सिकंदर की अश्वारोही सेना के साथ पैदल सैनिकों के चमकते हुए भालों (सरिसा) को देखकर डेरियस इतना भयभीत हो गया कि युद्धक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। इसी बीच में ईरानी अश्वारोही सवारों ने देखा कि ऐरीटीज (Aretes) के नेतृत्ववाली यूनानी अश्वारोही सेना पीछे से आक्रमण कर रही है तो वे भी भाग खड़े हुए; परंतु उनका पीछा करके वध कर दिया गया। डेरियस की हाथी सेना ने पीछे मुड़कर स्वयं अपनी सेना को कुचलकर तितर-बितर कर दिया था।

जिस समय सिकंदर के दाएँ पार्श्व में आक्रमण की यह कार्यवाही चल रही थी, उसी समय बाएँ पार्श्व में भी तीव्र संघर्ष चल रहा था। सिकंदर की सेना के तेजी से तिरछे बढ़ने के कारण उसके बाएँ पार्श्व की सेना मध्य भाग से काफी पीछे रह गई थी, जिससे दोनों पार्श्वों के बीच में खाली स्थान हो गया था। इसी खाली स्थान से ईरानी अश्वारोही सेना ने सिकंदर के कैंप में प्रवेश करना चाहा, ताकि डेरियस के बंदी परिवार को मुक्त करा सके। जब सिकंदर की पैदल सेना फैलेंक्स को इस बात का पता लगा तो उसने पीछे मुड़कर उस ईरानी सेना को नष्ट कर दिया। इसी समय ईरानी सेना के दाहिने पार्श्ववाली अश्वारोही सेना ने सिकंदर के बाएँ पार्श्व पर स्थित अश्वारोही सेना को घेर लिया। इसका नेतृत्व कर रहे सेनापति पारमिनिवो (Parmenio) ने घिर जाने पर सिकंदर से सहयोग की अपील की। परंतु सिकंदर ईरानियों के बाएँ पार्श्व के बचे हुए सैनिकों को खदेड़ने में लगा हुआ था। जब उसे यह पता लगा तो उसने तुरंत पीछे घूमकर ईरानी सेना के दाहिने पार्श्व की टुकड़ी पर आक्रमण कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि ईरानियों के दाहिने पार्श्व की सेना भी घिर गई। यद्यपि ईरानी सैनिक बड़ी बहादुरी से लड़े; परंतु उन्हें बुरी तरह पराजित होना पड़ा। सेनापति पारमिनिवो के नेतृत्ववाली सेना जब सुरक्षित हो गई तो उसने पुनः शत्रु का पीछा किया। 35 मील पीछा करने के बाद भी डेरियस को पकड़ा नहीं जा सका।

इस प्रकार 331 ई. पू. लड़े गए इस युद्ध की समाप्ति हो गई। इस युद्ध में सिकंदर ने अपने कुशल नेतृत्व एवं सेना के समरतांत्रिक फैलाव के बल पर महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।

युद्ध का परिणाम

युद्ध में सफलता के पश्चात् सिकंदर ने बहुत दूर तक पीछा करके डेरियस को पकड़ने का प्रयत्न किया, परंतु सिकंदर के हाथ लगने के पहले बेसुस (ईरानी सेनापति) ने ही डेरियस की हत्या कर दी। अब ईरान भी सिकंदर के आधिपत्य में आ गया। इसके पश्चात् उसने उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व इलाकों को अधिकार में करके पूर्वी सीमांत को सुरक्षित कर लिया। फिर वह काबुल होता हुआ झेलम पहुँचा और पोरस को 326 ई.पू. झेलम के युद्ध में पराजित किया। सिकंदर का विचार गंगा नदी के किनारे चलकर पूर्वी समुद्र तक अधिकार जमाने का था; पर उसके सैनिकों को घर छोड़े हुए बहुत दिन हो चुके थे। अतः उन्होंने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया, जिससे आगे बढ़ने का विचार छोड़कर सिकंदर सिंधु नदी की ओर लौट आया। मार्ग में सिंधु प्रांत के लोगों से उसके अनेक संग्राम हुए।

इसके बाद सिकंदर बेबिलोन (Babylon) पहुँचा। उसकी इच्छा वहीं पर स्थायी रूप से रहने तथा बेबिलोन को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाने की थी। तदनुसार उसने अनेक नवीन कार्य किए, लेकिन अचानक तेज ज्वर से पीड़ित होकर उसका एक योग्य सेनापति चल बसा।

13 जून, 323 ई.पू. सिकंदर के इतिहास का अंतिम दिन प्रमाणित हुआ। उस समय उसकी अवस्था 33 वर्ष की ही थी। उसका सारा जीवन युद्ध और राज्य-विस्तार में व्यतीत हुआ; परंतु सिकंदर के हाथ से तलवार म्यान में जाते ही उसका वैभव क्षण-भर नहीं टिक सका और छाया के समान जहाँ-का-तहाँ ही लुप्त हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य मिस्र, मैसेडोनिया तथा एशिया में विभक्त हो गया था।

सैन्य शिक्षाएँ

इस ऐतिहासिक युद्ध से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. सेना में कुशल नेतृत्व का विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि कुशल सेनापति परिस्थितियों के अनुसार समरतंत्र में तुरंत परिवर्तन करके अपने अनुकूल वातावरण बना सकता है। जैसाकि इस युद्ध में सिकंदर ने किया। जब उसने डेरियस की विशाल सेना देखी तो तिरछा मार्च करके शत्रु की योजना को विफल कर दिया तथा अपनी योजना के अनुसार डेरियस को लड़ने के लिए मजबूर कर दिया।
2. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में सफलता पाने के लिए केवल सैनिक संख्या ही पर्याप्त नहीं होती; बल्कि सैनिकों के अंदर निहित गुण अधिक कारगर सिद्ध होते हैं, जैसे सिकंदर के सैनिक कम संख्या में होते हुए भी बहादुर एवं उत्साही होने के कारण सफल हो सके।
3. डेरियस की पराजय का एक प्रमुख कारण यह भी था कि वह सिकंदर के

नाम से बुरी तरह भयभीत था और उसने युद्ध के अंतिम क्षणों में आत्म-विश्वास खो दिया था। वह युद्ध को बीच में ही छोड़कर भाग खड़ा हुआ। विशाल सैन्य-शक्ति होते हुए भी उसे युद्ध में पराजय का मुँह देखना पड़ा।

4. युद्ध में सफलता पाने के लिए यह आवश्यक है कि शत्रु पर आक्रामक स्थिति को अपनाया जाए। इससे अपने सैनिकों का उत्साह तो बढ़ता ही है, शत्रु की सेना आश्चर्य में पड़कर अपना संतुलन खो बैठती है, फलतः पराजय के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं। जैसाकि सिकंदर ने आक्रामक पहल करके युद्ध की सफलता को अपने पक्ष में कर लिया।
5. ईरानी सेना की पराजय का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उसने प्रतिरक्षात्मक स्थिति अपनाई और सिकंदर के आक्रमण की प्रतीक्षा की, जिससे उसकी योजनाएँ विफल हो गईं और उसे सिकंदर की इच्छा के अनुसार बाध्य होकर युद्ध लड़ना पड़ा।
6. युद्ध में सफलता पाने के लिए एक सिद्धांत यह भी महत्त्वपूर्ण होता है कि लक्ष्य का निर्धारण कर लिया जाए तथा उसी के आधार पर कार्यवाही की जाए; जैसाकि सिकंदर ने किया और सफलता पाई।
7. युद्ध में सदैव तेज एवं गतिशील सेना को सफलता प्राप्त होने के अधिक अवसर रहते हैं, जिससे शत्रु आश्चर्य में पड़कर अपनी सुध-बुध खो बैठता है, जैसे इस युद्ध में जब सिकंदर की सेना ने ईरानी सेना पर गतिशील आक्रमण किया तो शत्रु (ईरानी) आश्चर्य में पड़ गया और अंततः पराजित हुआ।
8. डेरियस ने अपनी सेना को एक दिन पहले व्यूहबद्ध करके थका दिया था, फलतः वह युद्धक्षेत्र में सही रूप में कार्यवाही न कर सकी। यह नेतृत्व में दूरदर्शिता के अभाव को स्पष्ट अंकित करता है।
9. डेरियस की पराजय का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उसने सिकंदर की सेना को घेरने की बजाय उसके आक्रमण की प्रतीक्षा की तथा अंत में भयभीत होकर भाग निकला। इसके विपरीत सिकंदर ने पहले ही निश्चित कर लिया था कि उसे किस परिस्थिति में क्या करना है।
10. सिकंदर ने शत्रु की सैनिक संख्या, स्थिति तथा संभावना आदि के आधार पर अपनी सेना एवं योजनाओं का गठन किया तथा तिरछा आक्रमण करके कूटयोजना अपनाई और उसी रूप में उसे समरतंत्र का स्वरूप प्रदान किया तथा चारों ओर से शत्रु के आक्रमण का मुकाबला करने का प्रबंध कर लिया। यदि डेरियस में साहस तथा योग्यता होती तो वह जीती हुई बाजी न हारता। उसके भय का प्रमुख कारण उसकी पिछली पराजय थी।

झेलम का युद्ध

(326 ई. पू.)

यह प्रसिद्ध युद्ध यूनान के प्रसिद्ध सेनानायक सिकंदर महान् तथा भारतीय सेनानायक पोरस के मध्य 326 ई. पू. झेलम नदी के निकट लड़ा गया। बचपन से ही युद्ध-प्रेमी तथा विश्व-विजयी बनने की प्रबल इच्छा रखनेवाला सिकंदर अपने अभियान के लिए निकला तो उसे फारस, अफगान, तुर्की आदि देशों को पराजित करने में सफलता मिली। इसी क्रम में वह भारत की सीमा में भी प्रवेश कर गया।

सर्वप्रथम सिकंदर ने तक्षशिला के शासक आंभी को युद्ध किए बिना ही आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर किया; जिसमें उसे न केवल सफलता मिली, बल्कि आगे युद्ध करने के लिए सहयोग भी प्राप्त हुआ। राजा आंभी ने पोरस से बदला लेने के लिए सिकंदर की हर संभव सहायता भी की। इसका लाभ उठाते हुए सिकंदर ने पोरस को भी आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया; परंतु उसकी रगों में राष्ट्र-प्रेम एवं बलिदान की भावना बह रही थी, अतः उसने सिकंदर के आत्मसमर्पण के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहा, "मैं सीमा पर अवश्य आऊँगा; परंतु शत्रु का मुकाबला करने हेतु, न कि उससे भेंट अथवा आत्मसमर्पण करने हेतु।"

इस प्रकार दोनों सेनानायकों के मध्य युद्ध की तैयारी शुरू हो गई। नदी के कारण कुछ समय तक सिकंदर को युद्ध का इंतजार करना पड़ा; क्योंकि वह आकस्मिक आक्रमण द्वारा शत्रु को विस्मय में डालकर सफलता प्राप्त करना चाहता था। अंततः सिकंदर इसी नीति (धोखे) के आधार पर इस युद्ध में निर्णायक सफलता प्राप्त कर सका।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

(Comprative Military Strength)

दोनों ही सेनाओं की शक्ति के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद हैं; परंतु इतना निश्चित है कि सिकंदर की तुलना में पोरस की सेना की शक्ति कम थी। सिकंदर की सेना के पास कवचित अश्वारोहियों, युद्ध-यंत्र तथा श्रेष्ठ संगठन फैलेंक्स (Phalanx) का ठोस आधार था। विश्व-विजय अभियान एवं सफलता के कारण जहाँ उसकी सेना का मनोबल अधिक था वहाँ उसके सैनिक भी अत्यंत अभ्यस्त एवं शिक्षित थे; जबकि पोरस की सेना 'चतुरंग बल' पर ही आधारित थी।

पोरस की सेना

पोरस की सेना परंपरागत ढंग से 'चतुरंग बल' पर संगठित थी, डिडोरस (Didorus) के अनुसार, उसकी सैनिक संख्या इस प्रकार थी—

1. पैदल सेना (Infantry) 50,000,
2. अश्वारोही सेना (Cavalary, 3,000,
3. रथ सेना (Chariots) 1,000,
4. हाथी सेना (Elephants) 130।

1. पैदल सेना—पोरस की पैदल सेना के पास प्रमुख हथियार के रूप में धनुष-बाण थे, जो सैनिकों की ऊँचाई के बराबर लंबे होते थे। अधिक लंबाई के कारण उनके एक सिरे को जमीन पर टेककर चलना पड़ता था। ये सैनिक कवच का प्रयोग नहीं करते थे। कुछ पैदल सैनिक तलवार एवं भाला भी धारण करते थे।

2. अश्वारोही सेना—अश्वारोही सेना भारतीय सेना का सबसे नाजुक अंग था। इसमें जहाँ घटिया किस्म के घोड़े थे वहाँ सवार सैनिक भी कवचहीन रहते थे। वे भाला एवं तलवार रखते थे। इस सेना में गतिशीलता एवं कुशल कार्य-क्षमता का पूर्ण अभाव था।

3. रथ सेना—यह भारतीय सेना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग था। इसमें 6 व्यक्ति सवार होते थे, जो धनुष-बाण, भाला एवं ढाल से सुसज्जित रहते थे। दुर्भाग्यवश यह सेना युद्ध में सफल नहीं हो सकी; क्योंकि बरसात के कारण रथ तेजी से आगे बढ़कर अपनी सही क्षमता का परिचय नहीं दे सके।

4. हाथी सेना—इस सेना के द्वारा शत्रु की सेना में आतंक एवं भय उत्पन्न कर दिया जाता था। सबसे आगे लगाकर इससे अभेद्य किले का काम भी लिया जाता था। इसमें एक महावत व तीन योद्धा सवार रहते थे। इसके अनियंत्रित हो जाने पर स्वयं को भी भारी हानि उठानी पड़ती थी, जैसाकि इस युद्ध में हुआ।

सिकंदर की सेना

सिकंदर की सेना फैलेंक्स (Phalanx) पद्धति पर संगठित थी, जो उसे अपने पिता फिलिप से विरासत में प्राप्त हुई थी। यह सैन्य संगठन ठोस दीवार की भाँति दिखाई पड़ता था, जिससे शत्रु इसके आगे नहीं बढ़ पाता था। सर डब्ल्यू. टार्न के अनुसार, इसकी सैनिक संख्या इस प्रकार थी—

1. पैदल सेना (Infantry) 15,000,
2. अश्वारोही सेना (Cavalary) 53,000,
3. युद्ध-यंत्र (War Machine)।

1. पैदल सेना—पैदल सेना फैलेंक्स यूनानी सैन्य संगठन पर आधारित थी।

पैदल सैनिक कवच तथा 21 फीट लंबा भाला रखते थे, जिसे 'सरिसा' कहा जाता था। इसके साथ ये सैनिक तलवार व ढाल का भी प्रयोग करते थे। फैलेंक्स के सैनिक 16-16 की संख्या में एक के पीछे एक की गहराई में खड़े होते थे; जिसमें प्रत्येक पंक्ति के आगे 6 सैनिक भाला आगे की ओर झुकाकर रखते थे, शेष 10 सैनिक भाले की नोक को ऊपर की ओर रखते थे।
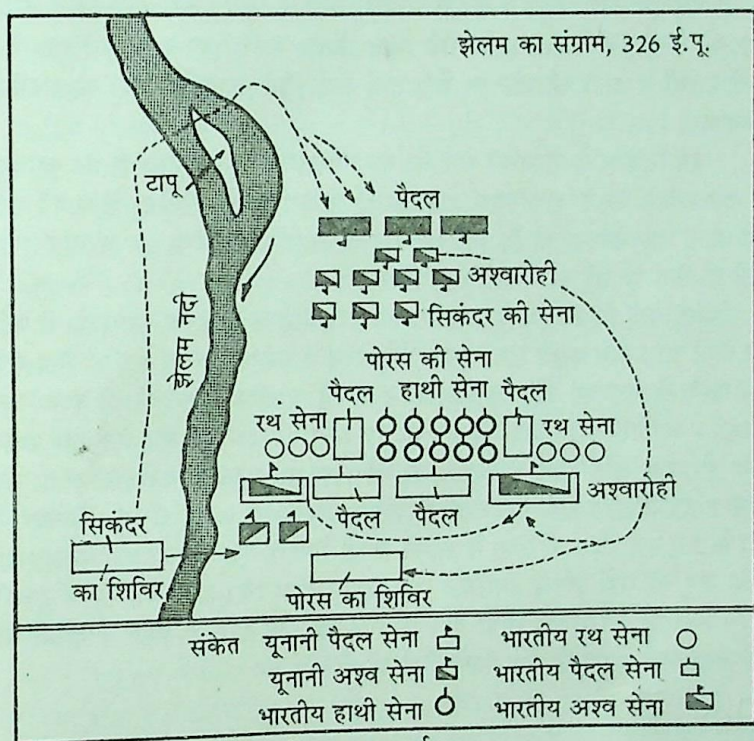
झेलम का संग्राम, 326 ई.पू.

2. अश्वारोही सेना—सिकंदर की अश्वारोही सेना प्रमुख सेना की भूमिका निभाती थी। इसके घोड़े जहाँ श्रेष्ठ नस्ल के थे, वहाँ घुड़सवार भी अत्यंत दक्ष तथा निपुण थे। अश्वारोही सेना कवचयुक्त होती थी। इस सेना का प्रमुख हथियार धनुष-बाण था। यह सेना मुख्य रूप से शत्रु को थकाने तथा आतंकित करने का काम करती थी। इसे फैलेंक्स का सहायक सेनांग भी कहा जाता था।

3. युद्ध-यंत्र—सिकंदर की सेना के द्वारा उस समय भी युद्ध-यंत्रों का प्रयोग किया गया। ये यंत्र शत्रु पर पत्थर के टुकड़े फेंकने का काम करते थे। इन्हें हाथ द्वारा ही संचालित किया जाता था। इनकी प्रहारक क्षमता लगभग 250 गज तक होती थी।

युद्ध-यंत्र भी दो प्रकार की श्रेणियों में विभक्त थे—

(i) केटापुल्ट,

(ii) वैलिस्टे।

समरतांत्रिक फैलाव

भारतीय नरेश पोरस ने शत्रु का सामना करने के लिए सबसे आगे अपनी हाथी सेना को तैनात किया था। इसके पीछे पैदल सैनिक अपने धनुष-बाण लिये खड़े थे। दोनों पार्श्वों में आगे की ओर रथ सेना तथा उनके पीछे अश्वारोही सेना को संगठित किया था।

जब सिकंदर ने पोरस की सेना का यह समरतांत्रिक फैलाव देखा तो वह भयभीत हो गया। अतः उसने आकस्मिक आक्रमण की योजना बनाई। सिकंदर के सामने नदी पार करना एक समस्या थी कि यदि वह शत्रु की सेना के सामने से पार करेगा तो पार करते ही सेना पर शत्रु का जवाबी प्रहार हो जाएगा।

अतः शत्रु को विस्मय में डालकर कार्यवाही करने के लिए वह गुप्त स्थान से नदी पार करने का प्रयास करता रहा। दूसरी ओर पोरस ने समझा कि अब शत्रु की सेना नदी पार करने में भय खा रही है, अतः उसने अपनी सामरिक तैयारी में भी उदासीनता दिखाई। आखिरकार सिकंदर को लगभग 17 मील दूर उत्तर की ओर ऐसा एक स्थान प्राप्त हो गया और उसने बेखबर पोरस की सेना पर आक्रमण करने का इरादा कर लिया। भाग्यवश सेना के पार करते ही भीषण बरसात भी आरंभ हो गई। सिकंदर ने नदी के उस पार पोरस की सेना के सामने अपनी सेना के एक दल को वहीं बनाए रखा; ताकि शत्रु को वहाँ उसकी उपस्थिति का आभास होता रहे। उसने यह सैनिक टुकड़ी अपने सेनापति क्रेटरस को सौंपी थी। सिकंदर नदी पार करने के स्थान से दक्षिण की ओर बढ़ा, जहाँ पोरस की सेना पहले ही तैनात थी।

वास्तविक संघर्ष

जब सिकंदर की सेना नदी पार करके आगे की ओर बढ़ने लगी तो इसकी खबर भारतीय नरेश पोरस को लग गई। उसने समझा कि थोड़ी संख्या में धोखे से शत्रु की सेना आ गई होगी, क्योंकि उसे क्रेटरस के नेतृत्ववाला कैंप दिखाई दे रहा था। अतः उसने अपने पुत्र के नेतृत्व में 1,000 अश्वारोही तथा 60 रथ सैनिकों को इसका सामना करने के लिए भेज दिया। किंतु सिकंदर की सेना के सामने यह सेना क्षण-भर में ही छिन्न-भिन्न कर दी गई; जिसमें पोरस का पुत्र व अनेक सैनिक मारे गए तथा शेष सेना भागकर पोरस के पास पहुँच गई। इस प्रथम मुठभेड़ में सिकंदर की अश्वारोही सेना ने पोरस की सेना को पृष्ठ तथा पार्श्व से अपना शिकार बनाया।

पोरस ने सिकंदर का सामना करने के लिए जैसे ही अपनी सेना को आगे बढ़ाया,

सिकंदर की तीव्र गतिवाली अश्वारोही सेना ने बाईं ओर से पृष्ठ भाग पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार दोनों के मध्य जोरदार संघर्ष शुरू हो गया। जिस समय यह संघर्ष चल रहा था, क्रेटरस के नेतृत्ववाले अश्वारोही दल ने सामने से नदी पार कर ली तथा पोरस के बाएँ पार्श्व पर पीछे से आक्रमण शुरू कर दिया। उधर पोरस की सेना के हाथी जैसे ही आगे बढ़े, वे फैलेंक्स के भालों के प्रहार से वापस लौटने को मजबूर हो गए। तथा रथ सेना भी बरसात के कारण तेजी के साथ आगे बढ़ने में असमर्थ हो गई। पैदल सेना के धनुष इतने बड़े थे कि उन्हें जमीन पर टेककर चलाना पड़ता था। कीचड़ के कारण धनुष-बाण भी कामयाब नहीं हो पाए। इस प्रकार भारतीय सेना केवल अपने उत्साह एवं मनोबल के द्वारा युद्ध तो लड़ती रही, परंतु शत्रु को सही टक्कर देने में असमर्थ रही।

पोरस की सेना चारों तरफ से घिर चुकी थी तथा उसकी समरतांत्रिक चालें निष्क्रिय हो गई थीं। अंततः विवश भारतीय नरेश घायल होकर गिर पड़ा तो सिकंदर के सैनिकों ने उसे बंदी बना लिया।

बंदी बनाने के बाद सिकंदर ने पोरस से पूछा, "तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाए?"

पोरस ने बड़ी गंभीरता से कहा, "जैसा एक राजा अपने शत्रु राजा के साथ व्यवहार करता है।"

सिकंदर इस बात से इतना प्रभावित हुआ कि उसने पोरस का राज्य ही नहीं, अपितु उसको सिंध एवं झेलम के अन्य विजित राज्यों को सौंपकर उसे अपना मित्र बना लिया।

परिणाम

इस युद्ध में किस पक्ष को कितनी हानि उठानी पड़ी, इसका बढ़ा-चढ़ाकर उल्लेख किया गया है। डाथोडोरस के अनुसार, इस संग्राम में 12,000 से अधिक भारतीय सैनिक मारे गए तथा 9,000 बंदी बनाए गए; जबकि सिकंदर की सेना के 700 पैदल तथा 280 अश्वारोही सैनिक मारे गए। इस सफलता ने सिकंदर के विजय-अभियान को एक नवीन दिशा प्रदान की। इसके साथ ही सिकंदर भारतीय सेना के शौर्य, पराक्रम एवं बलिदान की भावना से प्रेरित होकर आगे बढ़ने से रुक गया और वापस लौट गया।

सैन्य शिक्षाएँ

इस संग्राम के द्वारा हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं—

1. राष्ट्रीय सुरक्षा व्यवस्था को तभी सुदृढ़ बनाया जा सकता है जब केंद्रीय सत्ता के द्वारा क्षेत्रीय एवं सीमावर्ती राज्यों को नियंत्रण में रखा जाय।
2. राज्यों की आंतरिक कलह एवं मतभेद से देशद्रोही शक्तियों को सदैव बल

प्राप्त होता है।

3. सेना में लचकता एवं परिवर्तनशीलता का सिद्धांत सदैव सहयोगी सिद्ध होता है।
4. श्रेष्ठ शस्त्रास्त्र एवं साज-सज्जा भी युद्ध में महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाती है।
5. युद्ध में आक्रामक पहल के द्वारा शत्रु पर हावी होने के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं; जैसाकि इस युद्ध में हुआ।
6. शत्रु को धोखे में रखना सफलता का एक महत्त्वपूर्ण एवं गोपनीय रहस्य है।
7. गतिशीलता के द्वारा युद्ध में शत्रु को विस्मित करके सफलता प्राप्त करने के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं।
8. युद्धों में भाग्य का भी भाग होता है; जैसाकि बरसात होने से पोरस की समस्त सैन्य-शक्ति निष्क्रिय हो गई।
9. सेना का अनुशासन एवं नेतृत्व युद्ध में एक निर्णायक भूमिका ही नहीं निभाता; बल्कि सफलता का सच्चा सहयोगी होता है।
10. अपनी सैन्य-शक्ति का समुचित प्रयोग सफलता का एक प्रमुख आधार है।

कैने का संग्राम

(216 ई. पू.)

इस संग्राम के समय रोम एवं व्यापारिक राज्य कार्थेज के मध्य साम्राज्य-विस्तार को लेकर निरंतर लड़ाइयाँ होती रही थीं, जिसके कारण दोनों राज्य युद्ध से बुरी तरह ऊब गए थे। अंततः शांति के लिए युद्ध विराम हुआ तथा कार्थेज ने सिसली (Sicily) खाली कर दिया। जिस समय रोम की सेना सारडीनिया में लड़ रही थी उसी समय गॉल तथा इलीरिया के जल-दस्युओं के मध्य भी युद्ध चल रहा था, जिसमें गॉल की पराजय हुई तथा केमोना व पियासेलजा में रोम के उपनिवेश बन गए। 229 ई. पू. में कार्थेज का उत्तराधिकारी हेमिल्कर बना; परंतु 221 ई. पू. उसकी हत्या कर दी गई। हेनीबल को उसका स्थान मिल गया।

उस समय रोम के दो प्रमुख शत्रु राज्य थे—कार्थेज तथा मैसोडोनिया। इसी दौरान रोम की सेनाएँ गॉल के युद्ध से वापस लौटीं तो उसने सेनापति सेमेंटन को टार्वोलेट पर आक्रमण के लिए प्रोत्साहित किया। हेनीबल ने 219 ई. पू. टार्वोलेट पर रोम के प्रभाव जमाने के पूर्व ही उस पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। हेनीबल की इस विजय से रोम को गुस्सा आ गया और उसने कार्थेज को संदेश भेजा कि यदि हेनीबल को उन्हें नहीं सौंपा गया तो कार्थेज पर आक्रमण कर दिया जाएगा। उस समय कार्थेज में हेनीबल की स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी। वह स्वयं एक योग्य एवं कुशल सेनापति था। उसने सिकंदर की युद्ध-कला से अश्वारोही सेना का उपयोग करना सीखा था तथा अपने सैनिकों को प्रशिक्षण देकर पटु बना दिया था। इस बात का रोम को अनुमान नहीं था। उसी समय रोम ने कार्थेज के विरुद्ध अभियान आरंभ करने का उचित अवसर समझा, क्योंकि इस दौरान संपूर्ण इटली उसके अधिकार में था, साथ ही एड्रियाटिक सागर तथा मध्य भूमध्यसागर पर भी उसका पूर्ण प्रभुत्व था।

कार्थेज सेनापति हेनीबल एक सुयोग्य सेनानायक था। वह कठिनाइयों से घबराता नहीं था। जब वह 218 ई. पू. एब्रो की ओर बढ़ा तो उसका विचार रोम को जीतना नहीं, बल्कि रोमन साम्राज्य को शक्तिहीन बनाने का था। वह विजेता होने का दावा नहीं रखता था। उसने स्थल मार्ग को इसलिए अपनाया था; क्योंकि वह गॉल को अपना आधार बनाना चाहता था। हेनीबल पेइनीज को पार कर एविगनन की ओर बढ़ने लगा। इसी दौरान रोम ने सेंप्रोनियस के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी तैनात की, जिसे कार्थेज पर आक्रमण करना था। इसके साथ ही एक दूसरी टुकड़ी सीपियो के नेतृत्व में

नसीलिया (स्पेन) भेजी। जब हेनीबल की स्थिति का सही पता रोम को लगा तो उन्होंने सेंप्रोनियस की सेना को उत्तर में भेजा। सीपियो की सेना पहले ही स्पेन में आक्रमण के लिए भेजी जा चुकी थी। सेनापति हेनीबल ने सिकंदर की भाँति रोम नदी उत्तर से पार की तथा आल्पस को पार करता हुआ इटली पहुँच गया। उसने 218 ई. पू. में सबसे पहले ट्रेबिया (Trebia) में रोम के सेनापति सेंप्रोनियस (Sempronius) को पराजित किया। फिर 217 ई. पू. रोम की सेना पर सफलता प्राप्त की। इसके बाद वह दक्षिण की ओर बढ़ा तथा रोम के आपूर्ति डिपो पर अधिकार कर लिया, जो कैने के निकट था। उस समय उस क्षेत्र में रोम के चार दोहरे लीजन (सैनिक यूनिट) सेनापति कॉन्सल एमीलस पॉलस (Consuls Aemilius Paullus) तथा सेनापति सी. टेरेंटियस वैरो (C. Terentius Varro) के नेतृत्व में उपस्थित थे।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

कार्थेज की सेना

कार्थेज की सेना में हेनीबल ने अनेक प्रकार की जनजातियों का गठन किया था, जो स्वभाव से ही युद्धविद्या में पारंगत होती थीं। इसकी सेनाओं में विभिन्न वेशभूषावाले सैनिक थे तथा उनकी अलग-अलग भाषाएँ तथा भिन्न-भिन्न शस्त्रास्त्र भी थे। इस सबके बावजूद कार्थेज की सेना में अनेकता में एकता स्पष्ट नजर आती थी, क्योंकि सैनिकों को उच्च कोटि का प्रशिक्षण दिया गया था। उसकी सेना छापामार युद्ध क्रिया के द्वारा अपने सैनिकों की आवश्यक सामग्री की पूर्ति कर लेती थी, जिसका मुख्य रहस्य इसकी तीव्र गतिशीलता एवं लचकता थी। कार्थेज की सैनिक संख्या इस प्रकार थी—

पैदल सेना—40,000,
अश्वारोही सेना—10,000।

रोम की सेना

रोम की सेना का नेतृत्व कर रहे सेनापति पॉलस (Paullus) तथा सेनापति वैरो (Verro) ने पैदल सैनिकों की भरती अधिक की तथा अश्वारोही सेना का प्रयोग केवल सहायक सेना के रूप में लिया। रोम की सेना में यद्यपि सैनिक संख्या कार्थेज की तुलना में कहीं अधिक थी, परंतु इस युद्ध के पूर्व दो बार पराजित हो जाने के कारण रोमन सैनिकों का मनोबल भी गिर चुका था। उनकी सैनिक संख्या इस प्रकार थी—

पैदल सेना—70,000,
अश्वारोही सेना—6,000।

सेनाओं का समरतांत्रिक फैलाव

कार्थेज की सेना

कार्थेज सेनापति हेनीबल (Hannibal) ने गरमी के मौसम में कैने के मैदान में अपनी सेना को एक नवीन पद्धति से संगठित किया। उसने इस प्रकार की सैन्य-संरचना की जिसे केवल समर-विशेषज्ञ अथवा विज्ञ सेनापति ही कर सकता था; क्योंकि इस समरतांत्रिक संरचना से विजय प्राप्त करने के जितने अवसर थे उससे कहीं अधिक अवसर जोखिमयुक्त थे। हेनीबल ने अपनी सेना को रोमन कैंप के निकट इस प्रकार व्यूहबद्ध किया कि उसकी सेना के दोनों सिरे औफिडस (Aufidus) तटों से सुरक्षित रहें तथा बहुसंख्यक रोमन सेना उन्हें घेर न सके। हेनीबल ने 8,000 सैनिक कैंप की सुरक्षा के लिए छोड़ दिए थे। सेना के मध्य भाग में स्पेन तथा गॉल के पैदल सैनिक थे, जो एक पतली पंक्ति में फैले हुए थे। दोनों पार्श्वों में अफ्रीका की भारी कवचयुक्त तथा विश्वासपूर्ण पैदल सेना थी। बाएँ पार्श्व में उसके 8,000 स्पेन तथा गॉल के अश्वारोही सैनिक थे, जिनका नेतृत्व हेनीबल का भाई हेस्ड्रूबल (Hasdrubal) कर रहा था। पार्श्व में मेहरबल के नेतृत्व में 2,000 हलके न्यूवेलियन अश्वारोही सैनिक थे। इस प्रकार हेनीबल ने अपने दोनों पार्श्व सुरक्षित कर लिये थे।

हेनीबल की इस व्यूह-रचना का उद्‌देश्य यह था कि अपनी पैदल सेना के मध्य भाग को उत्तल या उन्नतोदर (Convex) स्थिति से नतोदर या अवतल (Concave) स्थिति में परिवर्तन करते हुए रोम की सेना को घेरकर नष्ट किया जा सके। यद्यपि यह जोखिम-भरी व्यूह-रचना थी, परंतु इसकी सफलता श्रेष्ठ प्रशिक्षण, गतिशीलता, अनुशासन एवं कुशल नेतृत्व पर निर्भर थी।

रोम की सेना

रोम की सेना का समरतांत्रिक फैलाव सेनापति वैरो ने अपनी पैदल सेना को तीन भागों में तथा दोनों पार्श्वों में अश्वारोही सेना को तैनात करके किया। वैरो ने अपनी सेना के साथ हेनीबल की चुनौती को स्वीकार किया तथा 1,100 सैनिक कार्थेज कैंप पर आक्रमण के लिए लगाए। जब उसने यह देखा कि हेनीबल की सेना दोनों पार्श्वों से सुरक्षित है, तो उसने अपनी बहुसंख्यक सेना द्वारा हेनीबल की सेना को कुचलने का विचार किया। उसने अपनी सैनिक टुकड़ियों को दोहरे लीजन में गठित किया तथा टुकड़ियों के बीच अंतर को कम कर दिया, जिससे उसकी सेना का समरतांत्रिक फैलाव हेनीबल के समरतांत्रिक फैलाव के बराबर किया जा सके। उसने अपनी पैदल सेना को इतना निकट-निकट व्यूहबद्ध कर दिया कि युद्ध के समय सैनिकों को आगे बढ़ने में परेशानी होने लगी। दाहिने पार्श्व में 24,000 रोमन अश्वारोही तथा बाएँ पार्श्व में 4,800 अश्वारोही मित्र राज्यों के तैनात कर दिए।
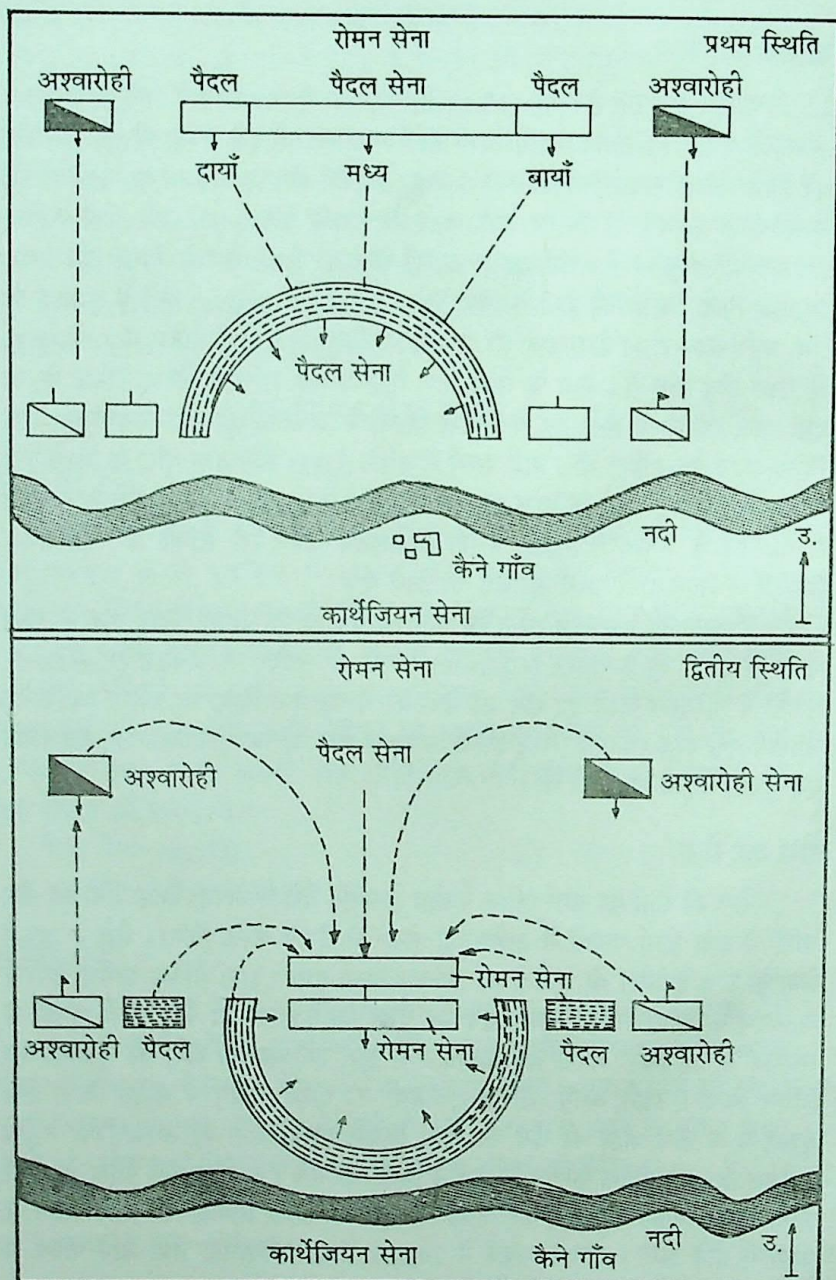
कैने का युद्ध, 216 ई.पू.

वास्तविक संघर्ष

प्रारंभिक आक्रमण में हेनीबल ने अपने पैदल सैनिकों को इस प्रकार आगे बढ़ाया कि बीच का हिस्सा आगे बढ़कर अर्धचंद्र के आकार में हो गया। इस प्रारंभिक आक्रमण में भारी सैनिकों ने आक्रमण नहीं किया। वे स्थिर बने रहे। युद्ध-क्रिया का आरंभ हेनीबल ने दाईं ओर से किया तथा दाईं ओर के अश्वारोही सैनिकों ने रोम के बाएँ पार्श्व के अश्वारोही सैनिकों को बुरी तरह से कुचल दिया। इसके बाद रोम की पैदल सेना के पीछे होकर उन्होंने बाएँ पार्श्व में पीछे से आक्रमण करना आरंभ कर दिया। इस समय रोम के दाहिने पार्श्व की सेना कार्थेज के बाईं ओर की निबेलियन अश्वारोही सेना के साथ उलझ रही थी। उसी समय कार्थेज के अश्वारोही सैनिकों ने पीछे से आक्रमण करके उनको तितर-बितर कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि रोम के दाएँ पार्श्व की अश्वारोही सेना भी मैदान से खदेड़ दी गई। न्यूमेडियन ने इसका पीछा किया। अब कार्थेज की अश्वारोही सेना ने रोम की पैदल सेना के पीछे से आक्रमण आरंभ कर दिया।

इस समय तक पैदल सेना का संघर्ष हेनीबल की कूटयोजना के आधार पर ही हो रहा था। उसके मध्य भाग के पैदल सैनिकों ने, जो आगे बढ़ गए थे, रोम के भीषण दबाव में पीछे हटना आरंभ किया। रोमन सेनापति वैरो ने इससे उत्साहित होकर पीछेवाले मैनीपल्स (Maniples) (रोमन सैन्य संगठन की एक इकाई) को आगेवाले मैनीपल्स के मध्य छूटे हुए भागों में लगा दिया। इसके बात ट्रियारी (Triari) तथा वैलाइट्स (Velites) को आगे बढ़ने का आदेश दिया, जिससे कार्थेज की सेना नदी पार करके भाग न सके। हेनीबल की सेना अपनी योजना के अनुसार भीतर की ओर अवतल (Concave) स्थिति में आ गई थी तथा रोम की सेना भी उसके मध्य भाग में प्रवेश कर गई थी।

अचानक तेजी के साथ हेनीबल ने अपने दोनों पार्श्वों की पैदल सेना को, जो अभी युद्ध में विशेष भाग नहीं ले रही थी, भीतर की ओर घूमने का आदेश दिया। अफ्रीका की पैदल सेना ने भीतर की ओर घूमकर रोम की सेना के पीछे से आक्रमण करना आरंभ कर दिया। रोम की सेना उस समय जीत की खुशी के नारे लगा रही थी। तभी रोम की सेना के पीछे के मध्य भाग में कार्थेज अश्वारोही सैनिकों ने भी अपनी यौद्धिक कार्यवाही आरंभ कर दी। फिर क्या था, अचानक एवं तीव्र प्रहार के कारण रोम की सेना के जीत के नारे घबराहट की चीख-पुकार में बदल गए। रोम की सेना की व्यूह-रचना भंग हो चुकी थी और उसकी दशा भयभीत हिरनों के समूह की भाँति हो रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि रोम की सेना बुरी तरह से काटी गई, क्योंकि वह चारों ओर से घिर चुकी थी। उसके केवल 10,000 सैनिक ही भाग जाने में सफल हो सके और लगभग 60,000 सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया गया। इसमें रोम का सेनापति पॉलस (Paullus) भी वीरगति को प्राप्त हुआ। रोम की सेना के लगभग

2,000 सैनिक हेनीबल के कैंप में आक्रमण करते समय मारे गए थे। वैरो (Varro) उन गिने-चुने लोगों में से था जो भागकर बच गए थे।

इस प्रकार कैने के इस संग्राम में जहाँ रोमन सेना के अधिकांश सैनिक मारे गए वहाँ कार्थेज के केवल 6,000 सैनिक ही मारे गए तथा घायल हुए। इस तरह हेनीबल ने एक निर्णायक सफलता प्राप्त करके रोम पर अपना अधिकार जमा लिया तथा अपनी कुशल सैन्य प्रतिभा का परिचय दिया। हेनीबल का यह संग्राम उसके श्रेष्ठ समरतंत्र का परिचायक माना जाता है। कैने गाँव के निकट लड़ा गया यह युद्ध 'कैने युद्ध' के नाम से विख्यात हुआ।

परिणाम

इस युद्ध में हेनीबल के नेतृत्व में कार्थेज ने विशाल रोमन साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। इस युद्ध की कूटयोजनात्मक एवं समरतांत्रिक गतिविधियों के प्रयोग ने हेनीबल को सिकंदर और नेपोलियन आदि सेनानायकों की श्रेणी में ला दिया। मैसोडोनिया के राजा पाँचवें फिलिप ने वकील भेजकर हेनीबल से मैत्री के लिए प्रार्थना की। इसके परिणामस्वरूप हेनीबल एक कुशल, दूरदर्शी, आत्मसंयमी, तात्कालिक निर्णय क्षमता तथा श्रेष्ठ समरतांत्रिक संरचनाकार के रूप में सैन्य इतिहास में माना जाने लगा। इस निर्णायक युद्ध के साथ ही हेनीबल ने अपना विजय अभियान आरंभ कर दिया, परंतु जामा के युद्ध ने हेनीबल की इस महत्त्वपूर्ण विजय पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। इसके पश्चात् इटली में जहाँ हेनीबल को सफलता मिली वहाँ इसके विरुद्ध सीपियो (Scipio) द्वारा कार्थेज में की गई कार्यवाही में महत्त्वपूर्ण सफलता मिल गई। यद्यपि हेनीबल सीपियो से श्रेष्ठ सेनापति था; परंतु अंत में विफल हुआ।

सैन्य शिक्षाएँ

इस ऐतिहासिक एवं कूटयोजनात्मक युद्ध से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. युद्ध में कुशल नेतृत्व का विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि कुशल सेनानायक अपनी परिस्थितियों के अनुसार सेना में तुरंत ही परिवर्तन करके अपने अनुकूल वातावरण बना सकता है; जैसाकि इस युद्ध में हेनीबल ने अपनी पूर्व निश्चित योजना के आधार पर कार्यवाही करके शत्रु को अपने अनुसार लड़ने के लिए मजबूर कर दिया और विशाल सैनिक संख्या को भेड़-बकरियों की भाँति काट दिया।
2. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि उच्च कोटि की कूटयोजना तथा उसका समरतांत्रिक प्रयोग ही सफलता का मूल आधार है; जैसाकि हेनीबल ने उत्तल (Convex) स्थिति से अपनी सेना को अवतल (Concave)स्थिति

में करके, शत्रु को चारों ओर से घेरकर नष्ट कर दिया। इसके साथ ही हेनीबल ने भूमध्यसागर से सीधे रोम पर आक्रमण नहीं किया। वह स्पेन और आल्पस पर्वत श्रेणी को पार करते हुए आया था। रोम को उसकी कूटयोजना का आभास भी न हो सका था।

3. हेनीबल की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत यह भी था कि उसकी सेना ने गतिशीलता के सिद्धांत का पूर्णरूप से पालन किया। उसने अपनी तेज अश्वारोही सेना द्वारा जहाँ रोमन अश्वारोही सैनिकों को टिकने नहीं दिया, वहाँ अपनी पैदल सेना को योजना के अनुसार तेजी से पीछे हटाकर, शत्रु को धोखे में डालकर उसे नष्ट कर दिया।
4. युद्ध में सफलता का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है कि शत्रु को चकित कर दिया जाए। इस सिद्धांत का पालन करते हुए सेनापति हेनीबल ने रोमन सेना को विजय की झलक दिखाकर, उसके सैन्य संगठन को भीड़ के रूप में परिवर्तित करके, अचानक पीछे एवं पार्श्व से हमला कर चकित कर दिया तथा अप्रत्याशित सफलता हासिल कर ली।
5. कार्थेज सेनापति ने अपनी समस्त सैन्य-शक्ति का समुचित रूप से प्रयोग करते हुए युद्ध के प्रमुख सिद्धांत शक्ति की मितव्ययता (Economy of Force) का पालन किया तथा ऐतिहासिक एवं निर्णयात्मक सफलता प्राप्त की।
6. सेना का समरतांत्रिक फैलाव भी युद्धक्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस युद्ध में रोमन सेना का समरतांत्रिक फैलाव इतना पास-पास किया गया था कि जैसे ही सेना आगे की ओर बढ़ी, वह भीड़ के रूप में परिवर्तित हो गई; जिससे रोमन सैनिक अपने हथियारों का भी खुलकर प्रयोग नहीं कर सके और बुरी तरह पराजित हुए।
7. कार्थेज की सेना में संकेंद्रण के सिद्धांत का भी पूर्ण पालन परिलक्षित होता है। यद्यपि उसकी सेना में विभिन्न वर्ग के सैनिक थे; परंतु उनमें अनेकता होते हुए भी एकता कूट-कूटकर भरी थी, जिससे रोमन सेना क्षण-भर में ही नष्ट कर दी गई।
8. सेना में नेतृत्व की भूमिका सदैव प्रमुख रहती है। इस युद्ध में रोमन सेना की पराजय का एक प्रमुख कारण यह भी था कि वहाँ सेनापति का प्रतिदिन परिवर्तन करने की प्रथा सामरिक दृष्टि से त्रुटिपूर्ण होते हुए भी अपनाई जाती रही। जिसका परिणाम यह हुआ कि सामरिक गतिविधियों में अस्थिरता उत्पन्न हो गई।
9. रोम की सेना की पराजय का एक प्रमुख कारण यह था कि जब उसकी सेना आगे बढ़ने लगी तो वे लोग जोश में आ गए तथा नारे लगाने में इतने मस्त

हो गए कि अपना होश ही खो बैठे। अंततः उन्हें घिरकर मरने के लिए मजबूर होना पड़ा। युद्ध में जोश के साथ-साथ होश से भी काम लेना चाहिए।

10. इस निर्णायक एवं ऐतिहासिक युद्ध के संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार आर्थर विर्नी का यह कथन भी उल्लेखनीय है—"कैने का युद्ध एक पूर्ण युद्ध है, जिसमें सबल सेना दुर्बल सेना द्वारा घेरकर नष्ट कर दी गई।" इस प्रकार इससे प्रमाणित होता है कि युद्धों में सैनिक संख्या नहीं, अपितु सैनिक भावना अधिक प्रभावी होती है।

सोमनाथ का संग्राम

(1026 ई.)

ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में भारत की राजनीतिक अवस्था बड़ी दयनीय थी। देश छोटे-छोटे अनेक राज्यों तथा रियासतों में विभक्त था; जो आपसी ईर्ष्या तथा द्वेष के शिकार थे। उनमें राष्ट्रीय एकता तथा देशभक्ति का पूर्णतया अभाव था तथा मिलकर बाहरी आक्रमणकारियों का सामना करने की भावना भी शून्य थी। इन परिस्थितियों का लाभ उठाकर गजनी के सुल्तान महमूद ने भारतीय शासकों एवं राज्यों पर अपना अधिकार जमाना आरंभ किया। महमूद ने राज्य सिंहासन पर बैठने से पूर्व भारत की विशाल धन-संपदा के किस्से सुने थे। अतः वह भारत के प्रति विशेष रूप से आकर्षित था। जब उसके राज्याधिकार को बगदाद के खलीफा ने स्वीकृति प्रदान कर दी तो उसका निश्चय और भी दृढ़ हो गया। उसने प्रतिज्ञा की कि वह प्रतिवर्ष भारत पर पूरी शक्ति से आक्रमण करेगा। यही कारण है कि महमूद ने 1000 ई. से 1026 ई. के बीच भारत पर लगातार सत्रह बार आक्रमण किए और समस्त उत्तरी भारत को बुरी तरह रौंद डाला।

महमूद ने सर्वप्रथम 1000 ई. में भारत पर आक्रमण किया। उसने सिंधु नदी के पश्चिम प्रदेश में स्थित नगरों तथा किलों को लूटा। जीते हुए स्थानों पर अधिकार जमाकर वह वापस गजनी लौट गया। महमूद ने दूसरा आक्रमण पुनः एक वर्ष बाद; यानी 1001 ई. में लाहौर के शासक जयपाल पर किया। पेशावर के निकट भीषण संघर्ष हुआ; परंतु सामरिक भूलों एवं कूटनीतिक चालों के अभाव में जयपाल को इस युद्ध में पराजित होना पड़ा। इस सफलता के परिणामस्वरूप महमूद का साहस बहुत बढ़ गया तथा धन-प्राप्ति की लालसा ने उसे इस कार्य के लिए और भी अधिक प्रेरित किया। तीसरा आक्रमण 1003 ई. में सिंधु नदी के पार झेलम के किनारे स्थित भेरा राज्य पर किया। यह राज्य उस समय विजयराय के अधिकार में था। वहाँ का दुर्ग सैनिक दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्वपूर्ण था। इस युद्ध में भी अंततः महमूद को ही सफलता प्राप्त हुई।

महमूद ने चौथा आक्रमण 1006 ई. में मुल्तान के शासक अब्बुल-फतेह-दाऊद पर किया। इस अभियान में भी उसे सफलता प्राप्त हुई। इसके बाद पाँचवें आक्रमण (1007 ई.) में महमूद ने नावासाशाह को पराजित कर दिया। अपने छठे आक्रमण में महमूद ने 1008 ई. में लाहौर के राजा आनंदपाल को हराया। यह युद्ध अत्यंत संघर्षपूर्ण

एवं रोमांचक रहा था। लाहौर पर अधिकार करने के पश्चात् सातवाँ आक्रमण नगरकोट पर 1009 ई. में किया और इसमें उसे भारी धन-संपदा प्राप्त हुई। इसके बाद उसने लगातार आक्रमणों का सिलसिला शुरू कर दिया। बारहवाँ आक्रमण 1018-19 में मथुरा और कन्नौज की विजय के उद्देश्य से किया और वह सफल भी हुआ। तेरहवाँ आक्रमण (1020 ई.) कालिंजर विजय के साथ समाप्त हुआ। इन आक्रमणों में सफलता प्राप्त करने के बाद लूटपाट करके महमूद जल्दी ही लौट जाता था।
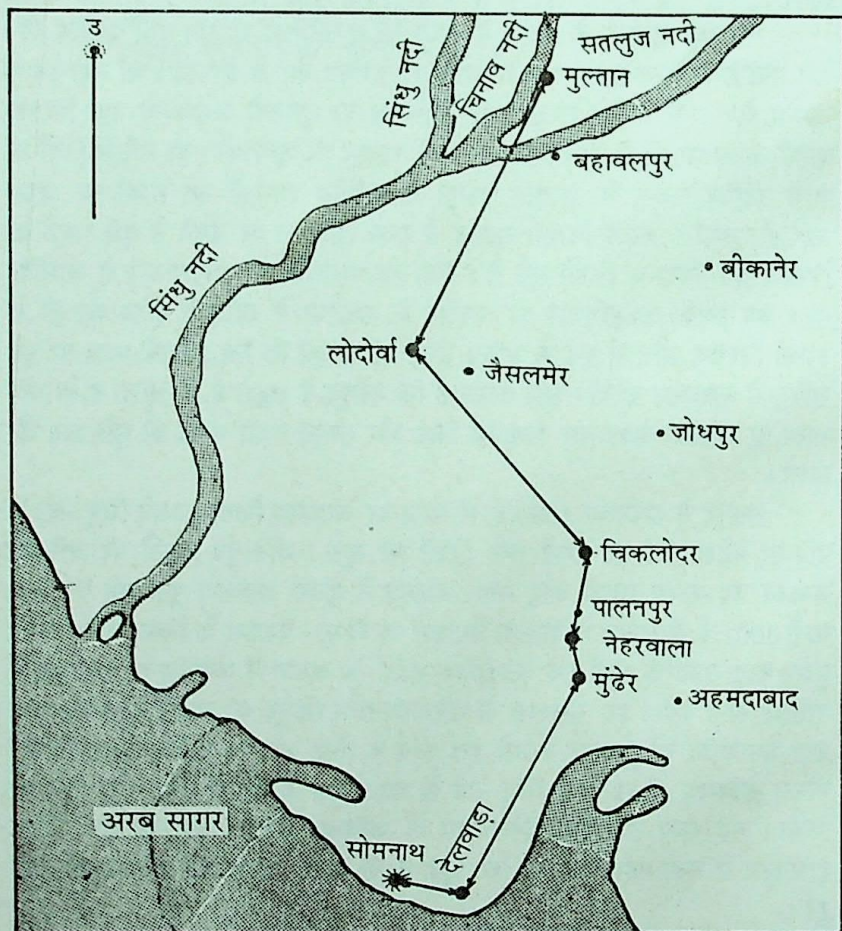
सोमनाथ अभियान (1026 ई.)

1025 ई. में महमूद ने भारत के विख्यात मंदिर सोमनाथ पर आक्रमण करने का इरादा बनाया। यह मंदिर सौराष्ट्र में सरस्वती नदी के मुहाने के पास अरब सागर के तट पर स्थित था। इसमें हजारों पुजारी रहते थे। भारतीयों की दृष्टि में इस मंदिर का विशेष

महत्त्व था। इसी कारण समस्त भारत में इसकी विशेष मान्यता थी। सूर्यग्रहण एवं चंद्रग्रहण के समय लाखों की संख्या में लोग एकत्रित होते थे। एक हजार पुजारी प्रतिदिन पूजा के लिए निर्धारित थे। मंदिर का मंडप 56 रत्नजटित भारी-भारी स्तंभों पर आश्रित था।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

महमूद की सेना में लगभग 80,000 योद्धा संगठित थे, जिनमें लगभग 30,000 नियमित अश्वारोही तथा शेष पैदल सैनिक के रूप में उसके स्वयंसेवी सैनिक थे। उसने अपनी सैन्य-शक्ति का समुचित प्रयोग करने के लिए आपूर्ति व्यवस्था पर विशेष रूप से ध्यान दिया था, क्योंकि उसे विगत कई लड़ाइयों का अनुभव भी प्राप्त था। इसके साथ ही जल-पूर्ति के लिए उसने 30,000 ऊँटों पर पानी तथा अन्य आवश्यक सामग्री इस अभियान के लिए रखी; ताकि रेगिस्तान की समस्याओं से भी सुरक्षा की जा सके।

सोमनाथ के इस आक्रमण में राजपूतों की निश्चित संख्या का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता; परंतु यह अनुमान है कि लगभग 50,000 सैनिक ही रहे होंगे। इसके साथ ही उनकी सैन्य-शक्ति का समुचित उपयोग नहीं हो सका। अरब सागर के तट पर स्थित सोमनाथ मंदिर की किलेबंदी सुदृढ़ थी और सतर्कता के साथ प्रत्येक दिशा से होनेवाले आक्रमण का सामना किया जा सकता था। महमूद ने कूटनीति से काम लिया और गुप्त रूप से अपनी सेना मंदिर की किलेबंदी में प्रवेश करा दी।

वास्तविक संघर्ष

6 जनवरी, 1026 ई. को महमूद की सेना देलवाड़ा (गुजरात) से सोमनाथ के मंदिर को घेरने के लिए तेजी के साथ आगे बढ़ी। उसने अपनी निर्धारित योजना के आधार पर कार्यवाही करना आरंभ कर दिया, जिससे उसके कुछ सैनिक दुर्ग की प्राचीर को तोड़कर आगे बढ़ गए। इस दौरान अनेक मुठभेड़ें भी हुईं, जिनमें एक-दो बार तो महमूद की सेना को पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा, परंतु अपने दृढ़ इरादे के साथ ही राजपूतों की कमजोरियों का लाभ उठाते हुए महमूद ने अपना सैनिक अभियान जारी रखा। इस बार की जोरदार कार्यवाही से उसके सैनिक सोमनाथ मंदिर की ओर बढ़ने में सफल हो गए। जिस समय महमूद की सेना मंदिर में प्रवेश कर रही थी, बहुत बड़ी संख्या में मंदिर के पुजारी तथा हिंदू जनता मंदिर की दीवार एवं छतों पर खड़ी होकर उपहासों तथा धमकियों द्वारा उसकी सेना का स्वागत कर रही थी।

ऐसी स्थिति में महमूद ने अपनी सेना को अपने धर्म की दुहाई दी तथा 'अल्लाह-हो-अकबर' के उद्घोष के साथ ही अपना आक्रमण जारी रखा। अपने तीरों की बौछारों से हिंदुओं की लाशों के ढेर लगा दिए। लगभग 5,000 हिंदू सैनिक इस दौरान मारे गए। मंदिर के पुजारी छत पर खड़े होकर तमाशा देख रहे थे कि मंदिर से

भगवान् शंकर स्वयं निकलकर, अपने तीसरे नेत्र को खोलकर इन आक्रांता अफगानों को विनष्ट कर देंगे। इसके साथ ही महमूद की सेना ने सोमनाथ के मंदिर में गुप्त मार्ग से प्रवेश किया। महमूद ने अपनी गदा के द्वारा शिवलिंग के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। किलेबंदी के कुछ सैनिकों ने भागकर समुद्र-तट पर छिपने का प्रयास किया, किंतु महमूद के पूर्व तैनात सैनिकों ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया। मंदिर का समस्त धन एवं बहुमूल्य वस्तुएँ, मंदिर के विशाल दरवाजे समेत, लूटकर महमूद गजनी वापस लौट गया।

इस प्रकार इस युद्ध की समाप्ति तो हो गई; परंतु यह युद्ध सामरिक दृष्टिकोण से शायद इतना महत्त्वपूर्ण नहीं रहा; जितना सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से। इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि कर्तव्य को छोड़कर केवल धार्मिक आस्था के आधार पर युद्धों में सुरक्षा या सफलता पाना कभी संभव नहीं है। यदि समस्त हिंदू एवं मंदिर के पुजारियों ने इन आक्रमणकारियों का सामना किया होता तो महमूद अपने इस आक्रमण में कभी सफल नहीं हो सकता था। महमूद ने अपने पूर्व आक्रमणों द्वारा हिंदुओं की कमजोरियों का अनुभव कर लिया था, जिनका लाभ उठाकर वह सदैव सफल होता रहा। महमूद की सेना से कभी भी भारतीय सेना आतंकित नहीं हुई; किंतु उसकी धूर्ततापूर्ण चालों से अवश्य भारी हानि उठानी पड़ी।

परिणाम

महमूद के आक्रमण के साथ ही भारतीय इतिहास पर कुछ स्थायी प्रभाव पड़े, जिन्हें संक्षेप में इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है—

1. भारतीय संस्कृति का पतन हुआ।
2. अपार आर्थिक हानि उठानी पड़ी।
3. भारत की सैनिक एवं राजनीतिक पोल खुल गई।
4. मुसलिम साम्राज्य के लिए द्वार खुल गए।
5. भारत में इसलाम धर्म का प्रसार आरंभ हो गया।
6. महमूद का साम्राज्य-विस्तार भी हो गया।

सैन्य शिक्षाएँ

भारतीय इतिहास के इस राजनीतिक एवं सामरिक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. परिस्थितियों के अनुसार आक्रमण करके शत्रु को सदैव पराजित किया जा सकता है, जैसे महमूद ने भारतीय परिस्थितियों का लाभ उठाकर अनेक हमलों में सफलता प्राप्त की।
2. श्रेष्ठ नेतृत्व एवं सेनाओं के अनुभव युद्ध में सदैव सफलता के सच्चे

सहयोगी होते हैं, जैसे इस युद्ध में महमूद ने अपने कुशल नेतृत्व के द्वारा अपनी सेना को जागरूक बनाकर अप्रत्याशित एवं महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की।

3. किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा उस समय संकट में पड़ जाती है जब उस राष्ट्र के लोग एवं सेना में राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्रीय एकता का अभाव होता है, जैसे इस युद्ध में भारतीय लोगों में एकता एवं राष्ट्रीय भावना का पूर्ण अभाव था, क्योंकि इस समय भारत अनेक छोटी-छोटी रियासतों में विभक्त था तथा हिंदू राजा बड़े ही स्वाभिमानी थे। वे एक-दूसरे का सहयोग बिना किसी अनुरोध के नहीं करते थे। अपने प्रांत की सुरक्षा करने तक ही उनका लक्ष्य सीमित रहता था। महमूद ने इसका लाभ उठाया और सफलता प्राप्त की।
4. सैन्य संगठन एवं संरचना के आधार पर भी युद्धों के परिणाम निर्भर करते हैं। भारतीय सैन्य संगठन एवं संरचना दोषपूर्ण थी; जबकि अफगानी सेनाओं का संगठन एवं संरचना श्रेष्ठ थी। इसी कारण यह सफलता प्राप्त हुई।
5. युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए सेनाओं में उत्साह एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जैसे इस युद्ध में महमूद ने अपनी सेना को 'जेहाद' (धर्मयुद्ध) का नाम देकर धार्मिक जोश भर दिया, जिसके परिणामस्वरूप जहाँ अधिक संख्या में सैनिक संगठित हो गए वहाँ उनमें धर्म के नाम पर विशेष उत्साह भर गया और उन्होंने भारी सफलता हासिल की।
6. युद्ध में सफलता पाने के लिए आवश्यक है कि सैनिक तैयारी के साथ शत्रुओं का मुकाबला किया जाना चाहिए। केवल धर्म की आड़ से सफलता प्राप्त नहीं होती, जैसे इस युद्ध में भारतीय हिंदुओं ने अपनी सैनिक तैयारी नहीं की और न ही हथियार उठाए, जिसके परिणामस्वरूप महमूद को एक महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हुई।
7. युद्ध का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है—गतिशीलता, जिसके पालन करने से सफलता के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं, जैसे इस युद्ध में महमूद की सेना ने इस सिद्धांत का पालन किया और अपनी सेनाओं का कूच इतनी द्रुतगति से किया कि अनेक बार भारतीय राजाओं को युद्ध करने का अवसर ही नहीं मिला तथा आश्चर्य में पड़कर पराजित होना पड़ा।
8. युद्ध में सफलता पाने के लिए आक्रामक पहल अनिवार्य है, जैसे इस युद्ध में महमूद की सेना ने लगातार आक्रामक पहल की और सफलता प्राप्त की। जबकि भारतीय हिंदू राजा सदैव आक्रमण की प्रतीक्षा में रहे। उन्होंने कभी भी अपनी ओर से युद्ध की पहल नहीं की। अनेक लड़ाइयों में असफलता

ही उनके हाथ लगी।

9. शत्रु को सदैव धोखे में रखना भी सफलता का एक प्रमुख सिद्धांत है, जैसे इस युद्ध में महमूद ने हिंदुओं को धोखे में रखा और आकस्मिक आक्रमण करके अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की। अचानक आक्रमण से हिंदू सदैव धोखे में रहे और असफल होते रहे।
10. हिंदुओं की पराजय के प्रमुख कारणों में एक कारण यह भी था कि वे किसी एक के नेतृत्व में आक्रमण नहीं कर सकते थे। उनकी स्वार्थ भावना इतनी प्रबल हो चुकी थी कि वे व्यक्तिगत हितों की रक्षा के लिए जाति तथा देश के हितों का बलिदान कर देते थे। उनमें उद्देश्य की एकता का सर्वथा अभाव था, जिसके कारण वे संयुक्त होकर शत्रु से न लड़ सके। अपने सैनिक संगठन की इन त्रुटियों के कारण भी भारतीयों को बार-बार पराजय का मुँह देखना पड़ा। इसके साथ हिंदू राजा युद्ध में हाथियों का प्रयोग करते थे जिससे उनके बिगड़ जाने पर स्वयं की सेना के तहस-नहस हो जाने का ही भय रहता था।

तराइन का संग्राम

(1191-92 ई.)

शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी भारत पर आक्रमण करनेवाला तीसरा मुसलिम शासक था। उसे भारतवर्ष में मुसलिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। उसके पूर्वज जाति के पठान अथवा तुर्क थे। उनका मूल निवास-स्थान पूर्वी ईरान था। मुहम्मद गोरी बड़ा महत्त्वाकांक्षी तथा साहसी व्यक्ति था। गजनी का शासक बनने के पश्चात् उसने भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

मुहम्मद गोरी का प्रथम आक्रमण 1175 ई. में भारत के मुल्तान राज्य पर हुआ। इस आक्रमण में गोरी ने शत्रु को बड़ी सरलता से पराजित कर दिया और मुल्तान पर अधिकार करके उसे अपने एक सूबेदार को सौंप दिया। 1178 ई. में मुहम्मद गोरी ने दूसरा आक्रमण गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़ा पर किया; परंतु वहाँ के युवा शासक भीमदेव द्वितीय ने शत्रु का डटकर मुकाबला किया और आबू पर्वत के निकट उसे करारी पराजय दी। उसके अनेक सैनिक बंदी बना लिये गए। लौटते समय सैकड़ों सैनिक मारे गए। गोरी स्वयं भी मरते-मरते बचा। इस जोरदार पराजय से मुहम्मद गोरी इतना हतोत्साहित हुआ कि आगामी वर्षों में वह गुजरात-विजय का साहस नहीं कर सका।

1181 ई. में गोरी ने पंजाब की राजधानी लाहौर पर आक्रमण कर दिया, परंतु लाहौर के सूबेदार मलिक खुसरो ने शत्रु का सामना करने के बजाय उसकी सेवा में बहुमूल्य उपहार तथा अपने एक पुत्र को गुलाम बनाकर भेज दिया। इससे गोरी वापस गजनी चला गया। फिर भी वह अपने मन में पंजाब-विजय की लालसा सँजोए हुए था। 1185 ई. में उसने जम्मू के राजा चक्रदेव के साथ मिलकर पुनः पंजाब पर आक्रमण कर दिया, जिसमें युवा राजकुमार विजयदेव ने सैनिक नेतृत्व करके अभियान चलाया; परंतु सफलता नहीं मिल सकी। तब मुहम्मद गोरी ने विश्वासघात की नीति के सहारे कार्यवाही करके सफलता प्राप्त कर ली और पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया। 1190 ई. में गोरी ने भटिंडा के किले पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। भटिंडा की रक्षा करनेवाली सेनाएँ भी सफल न हो सकी थीं। तराइन का प्रथम संग्राम भटिंडा किले को पुनः प्राप्त करने के लिए पृथ्वीराज चौहान द्वारा लड़ा गया था।

पंजाब पर अधिकार हो जाने के पश्चात् मुहम्मद गोरी का साहस बहुत बढ़ गया। वह दिल्ली के हिंदू राज्य को अपने अधीन करने की योजना बनाने लगा। उस समय दिल्ली की बागडोर पृथ्वीराज चौहान के हाथ में थी, जो अपनी असाधारण वीरता तथा

रण-कौशल के लिए बहुत प्रसिद्ध था। पृथ्वीराज चौहान कूटनीतिज्ञ तथा दूरदर्शी शासक नहीं था। इसी कारण विदेशी आक्रांताओं से देश की रक्षा के प्रति उदासीन रहा। उस समय के अन्य राजा भी एक-दूसरे की शक्ति को क्षीण करने में अधिक ध्यान लगाते रहे। इसी कारण तराइन का प्रथम संग्राम हुआ।

तराइन का प्रथम संग्राम—1191 ई.

1190 ई. में मुहम्मद गोरी ने भटिंडा के किले को अपने अधिकार में कर लिया। उसने काजी जियाउद्दीन के नेतृत्व में 1,200 अश्वारोहियों की दुर्ग-रक्षक सेना वहाँ छोड़ दी। फिर अपने देश की ओर प्रस्थान किया। किंतु यह सूचना देकर कि एक विशाल सेना लेकर पृथ्वीराज इस किले को पुनः प्राप्त करने के लिए बढ़ा आ रहा है,
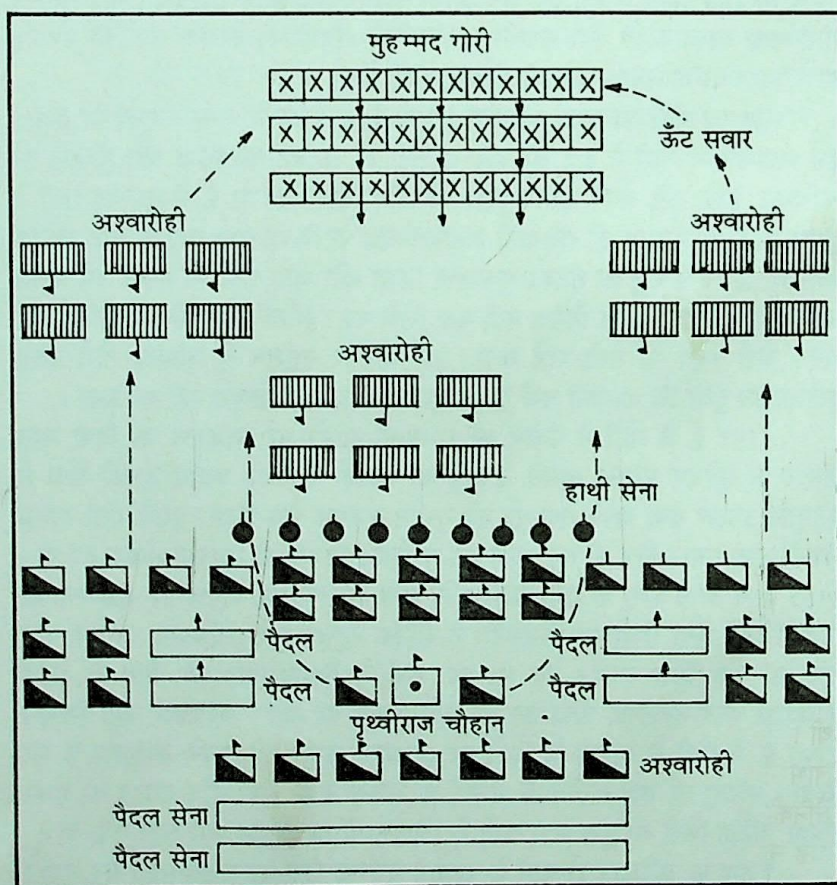
तराइन का प्रथम संग्राम, 1191 ई.

मुहम्मद गोरी अपने रास्ते से बुला लिया गया। उस समय पृथ्वीराज को अन्य राजाओं का सहयोग भी प्राप्त था। इधर गोरी भी अपनी सेनाओं के साथ भटिंडा से दिल्ली की ओर बढ़ा। दोनों सेनाओं का आमना-सामना तराइन (तरावड़ी) गाँव के निकट हुआ। तरावड़ी गाँव करनाल (हरियाणा) से लगभग 14 कि.मी. उत्तर तथा थानेश्वर (कुरुक्षेत्र) से 19 कि.मी. दक्षिण में स्थित है। यह स्थान दिल्ली एवं भटिंडा दोनों से लगभग बराबर दूरी पर है।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इतिहासकारों के अनुसार, पृथ्वीराज चौहान की सेना में लगभग 3,00,000 अश्वारोही सैनिक, 3,000 हाथी मवार सैनिक तथा बड़ी संख्या में पैदल सैनिक थे। पृथ्वीराज की सेना के प्रमुख तीन अंग थे—पैदल, अश्वारोही एवं हाथी सेना; जबकि मुहम्मद गोरी के पास प्रमुख रूप से दो प्रकार की सेनाएँ थीं—अश्वारोही तथा ऊँट सवार सेना। गोरी ने 1,20,000 कवचित धनुर्धारी तथा भालाधारी अश्वारोही सैनिकों को संगठित किया था। गोरी की सेना का प्रमुख हथियार धनुष-बाण था; जबकि पृथ्वीराज की सेना के प्रमुख हथियार तलवार एवं भाला थे। अश्वारोही सेना ही प्रमुख लड़ाकू सेना के रूप में दोनों ओर से थी।

वास्तविक संघर्ष

सर्वप्रथम पृथ्वीराज चौहान ने गोरी की सेना के दोनों पार्श्वों पर जोरदार आक्रमण करके इस संग्राम का श्रीगणेश किया। आक्रमण की तेजी एवं भीषण प्रहारक क्षमता को मुहम्मद गोरी की सेनाएँ रोक न सकीं। विवश होकर उन्हें पीछे की ओर हटना पड़ा। इस प्रकार राजपूत सैनिक तुर्क सेना के दोनों पक्षों पर आक्रमण करते हुए गोरी की सेना के मध्य भाग में जा पहुँचे, जहाँ अपनी सेना की बागडोर स्वयं मुहम्मद गोरी ने सँभाल रखी थी; परंतु इस प्रहार को वह भी नहीं झेल सका। वह बुरी तरह से घायल हो गया। इस दौरान उसकी सेना का मध्य भाग भी बुरी तरह से टूट चुका था। इसका परिणाम यह हुआ कि तुर्क सेना में भगदड़ मच गई। राजपूत सेना ने भागती हुई तुर्क सेना का पीछा किया। पृथ्वीराज चौहान ने भटिंडा के किले पर पुनः 13 माह बाद अपना अधिकार जमा लिया। यह मुहम्मद गोरी की भारतीय राजाओं के विरुद्ध दूसरी पराजय थी। इस युद्ध में राजपूत सैनिकों को सफलता अवश्य प्राप्त हुई, परंतु वे इसका पूरा लाभ नहीं उठा सके; क्योंकि पृथ्वीराज की सेना के अश्वारोही सैनिकों की गति, तुर्क सैनिकों की तुलना में कम होने के कारण राजपूत सेना तुर्क सेना का पीछा करके उसे पूरी तरह नष्ट करने में सफल नहीं हो सकी। इससे पूर्व कभी भी तुर्कों को हिंदुओं ने इस प्रकार नहीं खदेड़ा था।

तराइन का द्वितीय संग्राम—1192 ई.

तराइन के प्रथम संग्राम की पराजय का बदला लेने के लिए मुहम्मद गोरी कृत-संकल्प रहा। अपने देश पहुँचते ही उसने सर्वप्रथम उन सभी सैनिकों एवं सरदारों का सार्वजनिक अपमान किया तथा उन्हें अपदस्थ कर दिया; जिन्होंने इस युद्ध में कायरता दिखलाई थी। अपने संकल्प को पूरा करने के लिए उसने सेनाओं का पुनर्गठन किया। तुर्क एवं अफगान नागरिकों की विशाल सेना एकत्र की और डेढ़ वर्ष के अंदर ही एक लाख बीस हजार (1,20,000) कवचधारी अश्वारोही सैनिक तैयार कर लिये।

दूसरी ओर प्रथम युद्ध की विजय के पश्चात् पृथ्वीराज चौहान ने अपनी सेना के संगठन, प्रशिक्षण एवं शस्त्रों के प्रति उदासीनता दिखाई। इसके साथ ही राजपूत राजाओं में आपसी मतभेद बहुत बढ़ गए थे। राजपूत इतने स्वाभिमानी थे कि उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा को भी ताक पर रख दिया था। कन्नौज का राजपूत शासक जयचंद पृथ्वीराज चौहान का घोर विरोधी था; क्योंकि पृथ्वीराज चौहान ने जयचंद की सुंदर पुत्री का अपहरण कर लिया था।

इस प्रकार आपसी मतभेदों के कारण मुहम्मद गोरी को पुनः आक्रमण करने का बल मिला।

जब पृथ्वीराज को यह पता लगा कि मुहम्मद गोरी अपनी सेना एकत्रित करके पुनः दिल्ली की ओर बढ़ रहा है तो वह भी अपनी संपूर्ण शक्ति को एकत्रित करके दिल्ली से भटिंडा की ओर बढ़ा और तराइन (तरावड़ी) के मैदान में पड़ाव डालकर शत्रु के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उधर मुहम्मद गोरी भी अपनी सेनाओं सहित पेशावर से आगे बढ़कर आया; परंतु पृथ्वीराज के पड़ाव से लगभग 16 कि. मी. दूर ही रुक गया और अपनी सेनाओं को योजनानुसार व्यूहबद्ध करने में जुट गया।

मुहम्मद गोरी जब अपनी सेनाओं को व्यूहबद्ध करने में व्यस्त था, उसी समय पृथ्वीराज चौहान की ओर से उसे एक लिखित चेतावनी दी गई कि यदि वह (गोरी) बिना लड़े ही वापस लौट जाएगा तो मेरी ओर से न तो उसकी वापस लौटती सेना पर आक्रमण किया जाएगा; और न ही उसे किसी प्रकार की क्षति पहुँचाई जाएगी। साथ-ही-साथ सेना की वापसी के समय भी पूरा संरक्षण प्राप्त होगा। मुहम्मद गोरी ने इस सुझाव का कूटयोजनात्मक लाभ उठाने के लिए धूर्त चाल का सहारा लिया और पृथ्वीराज चौहान के पास संदेश भेजा—"यह आपका बहुत ही मित्रतापूर्ण व्यवहार तथा विशाल हृदय है कि आपने शांति का प्रस्ताव भेजा। मैं अपने भाई के पास, जो शासक सुल्तान है, एक संदेशवाहक भेज रहा हूँ और उससे निवेदन कर रहा हूँ कि इस शर्त पर आपसे संधि कर ले कि भटिंडा, पंजाब तथा मुल्तान गोर वंश के अधीन रहें और शेष हिंदू राजाओं के पास रहें। जब तक इस संदेश का उत्तर न मिले, तब तक आपसे अनुरोध है कि आप आक्रमण न करें।"

पृथ्वीराज चौहान को जब यह संदेश मिला तो उसने अनुमान लगा लिया कि
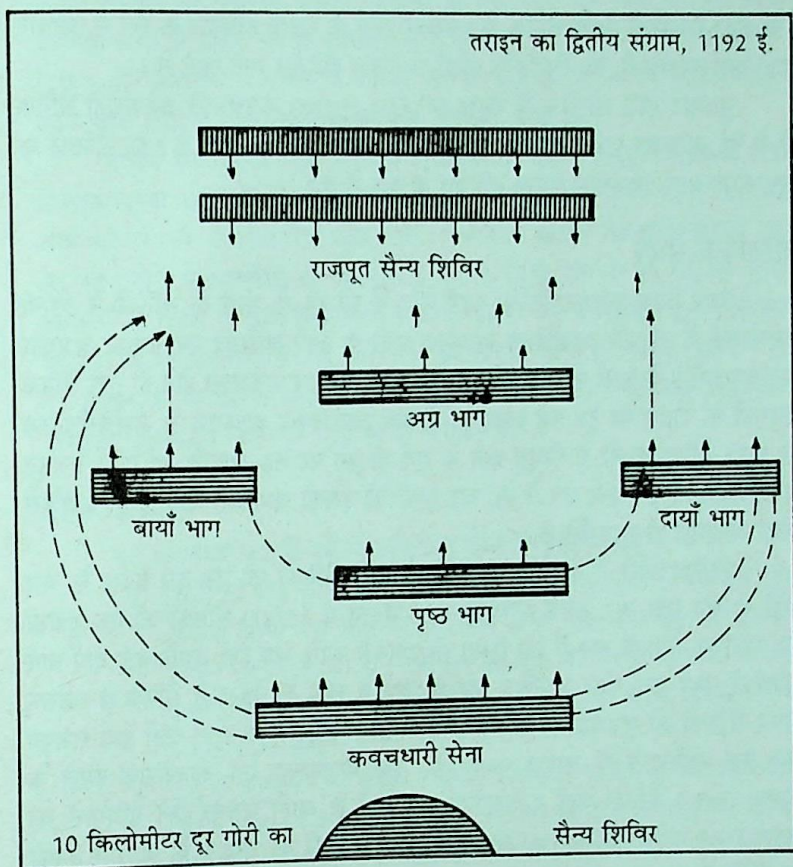
गोरी की सेना ने उसकी विशाल सैन्य-शक्ति को देखकर ही शांति का संदेश भेजा है। पृथ्वीराज चौहान ने जब अपनी तुलना में गोरी की सैनिक संख्या कम देखी तो उसने अपनी सतर्कता छोड़ दी तथा कोई भी सैनिक तैयारी नहीं की। शत्रु की योजना के मूल्यांकन में भी लापरवाही बरती। जब गोरी ने देखा कि उसकी कूट चाल सफल हो रही है तो उसने पूरी शक्ति के साथ प्रातःकाल आक्रमण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया; ताकि आकस्मिक आक्रमण करके शत्रु की विशाल सैन्य-शक्ति को दबाया जा सके और पृथ्वीराज को अन्य सैनिक सहायता भी प्राप्त न हो सके। अतः उसने आकस्मिक आक्रमण करके युद्ध की घोषणा कर दी।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

पृथ्वीराज चौहान की सेना में लगभग 3,00,000 अश्वारोही सैनिक, 3,000 हाथी

तथा भारी संख्या में पैदल सैनिक थे। उसकी सेना के प्रमुख हथियार के रूप में तलवार, भाले तथा बल्लम थे, जो 'भिड़ंत के युद्ध' के सफल हथियार माने जाते थे।

मुहम्मद गोरी की सेना में प्रमुख रूप से 1,50,000 कवचधारी अश्वारोही सैनिक ही थे, जो बलिदान एवं जेहाद (धर्मयुद्ध) के नाम से भरती किए गए थे। इन सैनिकों के पास धनुष-बाण तथा भाले प्रमुख हथियार के रूप में थे।

वास्तविक संघर्ष

जिस समय राजपूत सैनिक गहरी नींद में सो रहे थे, गोरी के सैनिकों ने अपनी कूटयोजना के अनुसार आकस्मिक आक्रमण करने के लिए अर्धरात्रि एवं भयंकर अंधकार में राजपूत सेना के पास पहुँचकर अपना मोरचा ले लिया। प्रातःकाल होते ही तुर्क सैनिक राजपूतों के पड़ाव पर टूट पड़े। राजपूत सैनिक आकस्मिक आक्रमण से आश्चर्यचकित रह गए। दैनिक कृत्यों से निवृत्त होने के पूर्व ही उन पर यह आपत्ति आ गई। राजपूत सेना का पड़ाव एक लंबे क्षेत्र में था, अतः सभी को इसकी जानकारी भी नहीं हुई। वे इसे छोटा आक्रमण ही मान बैठे थे।

मुहम्मद गोरी ने अपने अश्वारोही धनुर्धारी सैनिकों को दस-दस हजार के चार दलों में बाँट रखा था। इसके साथ ही अपने नेतृत्व में 12,000 सैनिकों की एक टुकड़ी को आरक्षित सेना के रूप में रख लिया था। सबसे आगे अग्र दल; उसके बाद दाएँ-बाएँ पार्श्व में मध्य दल; पीछे आरक्षित सेना के रूप में स्वयं के नेतृत्व में सैनिक थे। उसने अपने सैनिकों को मुठभेड़ की लड़ाई से दूर रखा। वे दूर से ही सभी दलों द्वारा राजपूत सेना पर बारी-बारी से आघात करते रहे। इस योजनाबद्ध एवं आकस्मिक हमले के कारण राजपूत सैनिक जहाँ हतोत्साहित हुए वहाँ वे अपने मुठभेड़वाले हथियारों का कुशलता से प्रयोग भी नहीं कर पाए। इसके साथ तुर्कों की योजना के अनुसार उनको लड़ने के लिए मजबूर होना पड़ रहा था। वे अपनी सैनिक कार्यवाही भी सफलता से नहीं कर पा रहे थे।

गोरी की योजना यह थी कि राजपूत अश्वारोही सैनिकों को अपनी सेना के समीप न आने दिया जाए, जिससे वे अपने धनुष-बाण का सही प्रयोग कर सकें। इस कार्यवाही से राजपूतों का सैन्य-संतुलन बिगड़ गया। जैसे ही राजपूत सैनिक निकट आने लगते, वे पीछे की ओर हट जाते। वे अपने को आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ दौड़ाकर राजपूतों की सेना को परेशान करने लगे। इसी के साथ मुहम्मद गोरी ने अपने अधीन आरक्षित सेना के द्वारा जोरदार आक्रमण करके राजपूत सैनिकों को हतोत्साहित कर दिया। पार्श्वों पर किए गए आक्रमणों से राजपूत सेना छिन्न-भिन्न हो गई और अपनी शक्ति का सही प्रदर्शन भी नहीं कर सकी।

इस प्रकार यह संघर्ष सायं 3 बजे तक लगातार चलता रहा। राजपूत सेना बुरी तरह थक चुकी थी। साथ ही भूखे-प्यासे तथा दैनिक क्रिया से भी निवृत्त न होने के

कारण सैनिकों की यौद्धिक क्षमता शिथिल हो गई थी। जब गोरी को इस बात का अनुमान लगा तो उसने अपनी आरक्षित सेना के द्वारा पूरी शक्ति से पुनः आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में पृथ्वीराज चौहान को भी मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार गोरी को इस आक्रमण से ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हुई।

तराइन का द्वितीय युद्ध भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसके परिणामस्वरूप राजपूतों की सैन्य-शक्ति का विनाश हो गया तथा भारत में मुसलिम राज्य की स्थापना के लिए मार्ग खुल गया। पृथ्वीराज चौहान जैसे शक्तिशाली शासक का पतन होने से भारतीयों की राजनीतिक शक्ति इतनी कमजोर हो गई कि मुसलिम शासकों को रोकने के लिए किसी हिंदू राजा में साहस नहीं हो सका। तुर्क साम्राज्य की स्थापना समस्त भारत पर हो गई। इस तथ्य का समर्थन करते हुए वी. ए. स्मिथ ने लिखा है, "तराइन के निर्णयात्मक युद्ध ने भारत में मुसलिम साम्राज्य की नींव रख दी। तुर्कों की लगातार विजय इस महत्त्वपूर्ण युद्ध का ही परिणाम थी।"

सैन्य शिक्षाएँ

इस महत्त्वपूर्ण युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा उस समय खतरे में पड़ जाती है जब उस राष्ट्र के अधीन राज्यों एवं शासकों के मध्य ईर्ष्या, द्वेष तथा आपसी बदले की भावना पनपने लगती है। जैसाकि इस युद्ध में राजपूत शासकों में आपसी मतभेदों एवं स्वाभिमान के कारण ही अपने राष्ट्र की सुरक्षा को उन्होंने खतरे में डाल दिया था।
2. युद्ध में सफलता का सच्चा सहयोगी सिद्धांत आक्रमणात्मक कार्यवाही है, जिसके द्वारा हमें आक्रमण की पहल, संग्राम का दाँव, इच्छानुकूल समय एवं स्थान की सुविधा प्राप्त हो जाती है। जिसका लाभ मुहम्मद गोरी के सैनिकों ने उठाया और अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की, जबकि पृथ्वीराज ने अपनी सेना को रोककर आक्रमण की प्रतीक्षा की और पराजित हुआ।
3. युद्ध में 'धोखे की नीति' के द्वारा भी सफलता के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं, क्योंकि शत्रु आकस्मिक आक्रमण से आश्चर्य में पड़ जाता है और उसकी स्थिति से लड़ने को मजबूर हो जाता है, जैसे गोरी ने अपनी कूटनीति के द्वारा पृथ्वीराज को धोखे में रखकर आकस्मिक कार्यवाही की और विशाल सैन्य-शक्ति को भी धोखे की नीति से नष्ट कर दिया।
4. युद्ध में गतिशीलता सदैव लाभदायक सिद्ध होती है। इस युद्ध में गोरी की गतिशील अश्वारोही सेना ने राजपूत सैनिकों को बुरी तरह थका दिया था। यही कारण है कि आज भी इस सिद्धांत का उतना ही महत्त्व है, जबकि राजपूत सेना में इसका पूर्ण अभाव रहा।

5. युद्ध में सफलता पाने के लिए यह आवश्यक है कि सैनिकों को नियमित रूप से प्रशिक्षित एवं अभ्यस्त रखा जाए। साथ-ही-साथ उन्हें नवीनतम शस्त्रास्त्रों एवं सामरिक जानकारी भी होनी चाहिए। राजपूत सेनाओं का संगठन व उनके शस्त्रास्त्र परंपरागत ही चले आ रहे थे। समयानुसार उनमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया गया, जिससे उनकी पराजय हुई, जबकि तुर्क सेना ने नवीन सामरिकी का प्रयोग करके सफलता प्राप्त की।
6. युद्ध में कुशल नेतृत्व सफलता का सच्चा सहयोगी होता है। सैनिक दृष्टिकोण से राजपूत सेना में कुशल नेतृत्व का अभाव था। वे स्वयं आगे बढ़कर पथ-प्रदर्शन करते थे, जबकि आक्रमणकारी तुर्क सैनिक अपनी देखरेख रखकर सेना का नियंत्रण एवं नेतृत्व करते थे। वे शत्रु की गतिविधियों पर पूरी तरह निगरानी रखकर योजना निर्धारित करते थे, जबकि राजपूत शासक उस पर ध्यान ही नहीं देते थे।
7. युद्ध में राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ धार्मिक भावना भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जैसाकि इस युद्ध में मुहम्मद गोरी की सेना ने 'जेहाद' (धर्मयुद्ध) का नारा लगाकर मुसलिम नागरिकों को कुरबानी के लिए बाध्य किया, जिसका उसे पूरा लाभ मिला। धार्मिक भावना के कारण सफलता या मृत्यु दो ही जीवन के उद्देश्य बन गए थे।
8. युद्ध में भौगोलिक स्थिति महत्त्वपूर्ण भूमिका सदैव से निभाती रही है। इस युद्ध में मुसलिम आक्रमणकारी गोरी ने युद्धक्षेत्र की भौगोलिक स्थिति को उचित महत्त्व दिया, जबकि भारतीय नरेश उसे युद्ध-कौशल का कोई विशेष अंग नहीं समझते थे।
9. सामंत-प्रथा होने के कारण भारत में स्थायी सेना का प्रायः अभाव था। भारत में युद्ध के समय सामंत सैनिक टुकड़ियाँ भेजते थे, जो भारत की सेना के रूप संगठित की जाती थीं। भिन्न-भिन्न सामंतों की सेनाएँ होने के कारण उनमें कुशलता एवं एकता का अभाव रहता था; जो हिंदू राजाओं की पराजय का एक कारण बना।
10. युद्ध में लड़ते समय राजपूत शासक प्रायः अपने सैनिकों को दाएँ-बाएँ एवं मध्य भागों में विभक्त करते थे, किंतु मुसलमानों की सेना में इन तीनों भागों के अलावा अग्र दल तथा पृष्ठ दल भी रहते थे; जिनमें से एक आक्रमण की पहल करता तथा दूसरा आरक्षित सेना के रूप में रहकर थके हुए शत्रु पर उचित समय पर तेजी के साथ टूट पड़ता था, जिससे शत्रु की सेना में भय एवं भगदड़ मच जाती थी। इसके साथ ही मुसलिम शासक शत्रु की कमजोरियों का पूरा लाभ उठाने का प्रयास करते थे।

क्रेसी का संग्राम

(1346 ई.)

यह सौ वर्षीय युद्ध का प्रथम महत्त्वपूर्ण संग्राम था। यह प्रसिद्ध संग्राम इंग्लैंड के शासक एडवर्ड तृतीय (Edward-III) तथा फ्रांस के शासक फिलिप ऑफ वैलाइस (Philip of Valois) के मध्य क्रेसी के मैदान में सन् 1346 ई. में लड़ा गया। यह युद्ध शाही घरानों ने अपने अधिकार को जमाए रखने के लिए लड़ा था। इंग्लैंड का शासक एडवर्ड तृतीय फ्रांस के शासक चार्ल्स (Charles) चतुर्थ की बड़ी बहन ईसाबेला (Isabella) तथा एडवर्ड द्वितीय का पुत्र था। एडवर्ड तृतीय को जब अक्यूटेन (Aquitaine) का इलाका अपने पिता से प्राप्त हुआ तब उसे भी अपने पिता तथा दादा (Grand Father) की भाँति फ्रांस के राजा चार्ल्स चतुर्थ के प्रति प्रभु-भक्ति की शपथ लेनी पड़ी। एडवर्ड तृतीय को 15 वर्ष की अवस्था में ही राज्य प्राप्त हो गया था। लगभग एक वर्ष पश्चात् 1328 ई. में फ्रांस के राजा चार्ल्स चतुर्थ की मृत्यु हो गई और उसके चचेरे भाई फिलिप षष्ठ (Philip-VI) ने फ्रांस की गद्दी सँभाली। फिलिप षष्ठ के गद्दी पर बैठने के बाद एडवर्ड तृतीय की माता ने फ्रांस के सिंहासन के लिए अपना दावा किया; परंतु इंग्लैंड की नाजुक परिस्थितियों को देखकर फिलिप षष्ठ ने एडवर्ड तृतीय को यह संदेश भेजा कि केवल उसी ने अभी तक निष्ठा की शपथ नहीं ली है। यदि आपने शीघ्र ही ऐसा नहीं किया तो वह अक्यूटेन की जागीर को जब्त कर लेगा। अतः एडवर्ड तृतीय को भी फिलिप के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी पड़ी; परंतु यह सब अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए फिलिप की एक कूटनीतिक चाल थी।

जब फिलिप ने ग्वाइने (Guienne) का इलाका जब्त करने का आदेश दिया तो तुरंत ही एडवर्ड तृतीय फ्रांस के सिंहासन का दावेदार बन गया, जिससे समानता के स्तर पर फ्रांस से संघर्ष किया जा सके। यहीं से वास्तव में इंग्लैंड एवं फ्रांस के मध्य सौ वर्षों के युद्धों का सूत्रपात होता है। इस लंबे युद्ध का एक अन्य कारण यह भी था कि रोमन साम्राज्य तथा पोप की शक्ति का पतन हो चुका था। इसी के परिणामस्वरूप दोनों देश बिना किसी हस्तक्षेप के इतनी लंबी अवधि तक युद्ध में उलझे रहे। इसका तीसरा कारण यह भी था कि फ्रांस इंग्लैंड के विरुद्ध स्कॉटलैंड की सहायता कर रहा था तथा इंग्लैंड फ्लाडर्स में हस्तक्षेप कर रहा था।

जिस समय फिलिप ने अक्यूटेन पर अधिकार करने का प्रयास किया, एडवर्ड तृतीय ने फ्लाडर्स पर आक्रमण करके युद्ध को पश्चिम में खींचने का प्रयास किया तथा

फ्लाडर्स को हर संभव प्रयास करके अपनी ओर मिलाने में भी सफल हो गया। इस कार्यवाही के जवाब में फिलिप ने इंग्लिश चैनल को भी घेरकर इंग्लैंड के जलयानों तथा दक्षिणी तटों पर लूटपाट आरंभ कर दी। एडवर्ड ने एक बार फिर फ्रांस के सिंहासन के अधिकार का प्रश्न उठाया। इस दौरान अनेक छोटी-छोटी मुठभेड़ें भी हुईं। फिलिप ने एडवर्ड को फ्रांस में आने से रोकने के लिए एक शक्तिशाली जंगी बेड़ा नियुक्त किया जिससे सशंकित होकर इंग्लैंड भी अपनी तैयारी में जुट गया।

1340 ई. में एडवर्ड तृतीय अपने जंगी जलयानों के साथ स्लाइज (Sluys) के निकट पहुँच गया। 24 जून, 1340 को दोनों पक्ष युद्ध के लिए जुट गए। फ्रांसीसी सेना ने आक्रमण के स्थान पर बंदरगाह में प्रतिरक्षात्मक युद्ध का निश्चय किया; परंतु सेनापतियों में मतभेद होने के कारण बीच का रास्ता तय करना पड़ा। इसके बाद एक स्क्वैड्रन खुले समुद्र में आक्रामक कार्यवाही हेतु आया तथा दो स्क्वैड्रन बंदरगाह के मुहाने पर रुककर और जलयानों को बाँधकर प्रतिरक्षात्मक स्थिति में लग गए। एडवर्ड तृतीय ने अपने हर तीसरे जलयान पर सैनिक योद्धा तैनात किए थे तथा मध्य के जलयानों में धनुर्धारी। जब दोनों पक्षों में मुठभेड़ आरंभ हुई तो अंग्रेज धनुर्धारियों ने आक्रमणकारी जलयानों को सुरक्षित रखने के लिए तेजी से बाणों की वर्षा की तथा आक्रमणकारी जलयानों ने फ्रांसीसी जलयानों को अपने अधिकार में कर लिया। इन जलयानों पर कब्जा करने के पश्चात् उन्होंने पीछेवाले जलयानों के स्क्वैड्रन को लक्ष्य बनाया; परंतु वे भाग निकले। एडवर्ड के सैनिकों ने भागनेवाले जलयानों को भी नष्ट कर दिया। इस विजय का परिणाम यह हुआ कि इंग्लिश चैनल पर अंग्रेजों का पूर्ण आधिपत्य हो गया, जिसके परिणामस्वरूप एक लंबी अवधि तक इंग्लैंड युद्धरत बना रहा।

स्लाइज की विजय के पश्चात् एडवर्ड तृतीय इंग्लैंड वापस आया और पुनः नई पद्धति से सेना संगठित करने लगा। इस बार एडवर्ड ने ब्रिटेनी (Brettany) तथा ग्वाइने (Guienne) की ओर से हटकर आक्रमण करने का निश्चय किया। 1344 ई. में दोनों पक्षों में समझौता करने का प्रयत्न किया गया; परंतु असफल रहा। अंतिम निर्णय हो जाने के पश्चात् एडवर्ड ने लगभग 10,000 सैनिकों को संगठित किया। यह सेना फ्रांस की सेना से प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ थी। इसमें अनुशासन के साथ ही दूर-से-दूर तथा निकट-से-निकट प्रहार करने की शक्ति थी। जबकि फिलिप की सेना में सामंती संगठन था। वह केवल निकट से ही युद्ध करने में सक्षम थी। एडवर्ड ने अपनी सेना की दो टुकड़ियों को कुछ ही अंतर पर तैनात किया। प्रथम पंक्ति में पैदल सैनिक तथा दूसरी पंक्ति में घोड़ों पर सवार सैनिक रखे। धनुर्धारी सैनिक इस प्रकार संगठित किए गए थे कि वे पार्श्वों से शत्रु पर आक्रमण कर सकें। इसके साथ ही अपने दोनों पार्श्वों को प्राकृतिक एवं कृत्रिम बाधाओं से भी सुरक्षित कर रखा था, इसके लिए खाइयाँ खोदकर तथा लोहे की सलाखें गाड़कर मोरचा तैयार कर लिया था, जिससे शत्रु की पैदल सेना ही आक्रमण कर सकती थी और उसके विरुद्ध धनुर्धारी सेना तैनात ही थी।

अपनी सैनिक तैयारी के साथ-ही-साथ एडवर्ड तृतीय ने यह प्रचार किया कि फ्रांस का शासक फिलिप अंग्रेजी भाषा को समाप्त करना चाहता है, जिससे वहाँ के लोगों का उसे भरपूर सहयोग प्राप्त हो सके। 11 जुलाई, 1346 ई. को एडवर्ड का जंगी बेड़ा गैस्कनी (Gascony) की ओर बढ़ा; परंतु परिस्थितिवश उसे नार्मंडी में उतरना पड़ा। 26 जुलाई को वह कैन (Caen) पहुँचा। इसी समय उसके नाविक उसकी आज्ञा के विरुद्ध इंग्लैंड लौट गए। इसलिए एडवर्ड पूर्व की ओर आगे बढ़ा; क्योंकि दक्षिण में उसे नार्मंडी की सेना से मुकाबला करना पड़ता। 31 जुलाई को वह कैन से बढ़कर रुयेन (Roun) पहुँचा, परंतु सीन (Seine) नदी के पुल को टूटा पाकर पेरिस की ओर बढ़ा तथा रास्ते में पड़नेवाले क्षेत्र को उजाड़ता हुआ पाइसी (Poissy) पहुँचकर नदी पार कर गया।

सेनाओं की स्थिति

26 अगस्त, 1346 ई. को एडवर्ड ने युद्ध करने का निश्चय किया, क्योंकि फिलिप उसका पीछा कर रहा था। उसने क्रेसी (Crecy) तथा वादीकुर्त (Wadicourt) गाँवों के बीच थोड़ी-सी ऊँची भूमि पर अपनी सेना को तीन टुकड़ियों में व्यूहबद्ध किया। दो टुकड़ियाँ थोड़े अंतर पर आगे के ढाल पर थीं और एक पीछे क्रेसी-वादीकुर्त सड़क पर तैनात थी। उसने अपनी सेनाओं का नियंत्रण इस प्रकार से रखा था—

बायाँ भाग—ब्लैक प्रिंस के नेतृत्व में,
दायाँ भाग—अर्ल ऑफ नार्थेम्प्टन के नेतृत्व में,
पृष्ठ भाग—स्वयं (एडवर्ड) के नेतृत्व में।

एडवर्ड ने अपने बाएँ पार्श्व की सुरक्षा के लिए खाइयाँ खुदवा दी थीं तथा दाहिना पार्श्व नदी की आड़ से सुरक्षित बना लिया था। एडवर्ड ने अपनी स्थिति ऊँचे स्थान पर बना रखी थी, जहाँ से वह समस्त कार्यवाही का निरीक्षण कर सकता था तथा अपने अधीन सेनापतियों को आसानी से आदेश भेज सकता था। उसने अपनी सेना का फैलाव फैलेंक्स संगठन के आधार पर किया था।

एडवर्ड ने अपने लंबे धनुर्धारी सैनिक पैदल दलों के आगे और पार्श्व में इस प्रकार संगठित किए थे कि वे पैदल के पार्श्वों में आगे की ओर तिरछे वी (V) आकार में खड़े रहकर क्रास फायर कर सकें। विंदूघम ने इसके समरतांत्रिक फैलाव को शतरंज बोर्ड (Chessboard) संरचना के नाम से वर्णित किया।

जब फ्रांस के शासक फिलिप को यह पता लगा कि एडवर्ड ने अपनी सेनाओं का समरतांत्रिक फैलाव भी कर लिया है तो उसने अपनी फैली हुई सेना को एकत्रित करने का प्रयास किया। फ्रांसीसी सेना सामंती सेना थी, जिसके कारण उसमें एकता का अभाव था। फिलिप ने अपने बढ़ते हुए सैनिकों के दल को रोकने का प्रयास किया, परंतु सफल नहीं हो सका; क्योंकि उनमें अनुशासन का अभाव था। वे युद्ध के लिए उतावले हो रहे थे। इसी कारण बिना किसी योजना के आगे बढ़ते गए। अपने अधीन सेना को फिलिप

ने आक्रामक स्थिति में रखते हुए तीन भागों में संगठित किया—

अग्र भाग—तिर्यक धनुर्धारी सैनिक,
मध्य भाग—कवचयुक्त अश्वारोही सैनिक,
पृष्ठ भाग—कवचयुक्त अश्वारोही सैनिक।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

एडवर्ड की सेना में लगभग 20,000 सैनिक थे, जिनमें 11,000 धनुर्धारी सैनिक, 4,000 शस्त्र सज्जित सैनिक (Men-at-arms) तथा 5,000 वेल्स पैदल सैनिक (Welshmen) थे। उसकी सेना का प्रमुख हथियार लंबा धनुष (Long bow) तथा भाला था। लंबा धनुष सामरिक दृष्टि से श्रेष्ठ हथियार था, क्योंकि इसमें दूर तक मार करने के साथ ही लक्ष्यभेदन क्षमता भी पर्याप्त थी।

फिलिप की सेना में लगभग 60,000 सैनिक थे, जिनमें 12,000 शस्त्र सज्जित सैनिक (Men-at-arms), 6,000 जिनोइज (Genoese), 17,000 अश्वारोही तथा
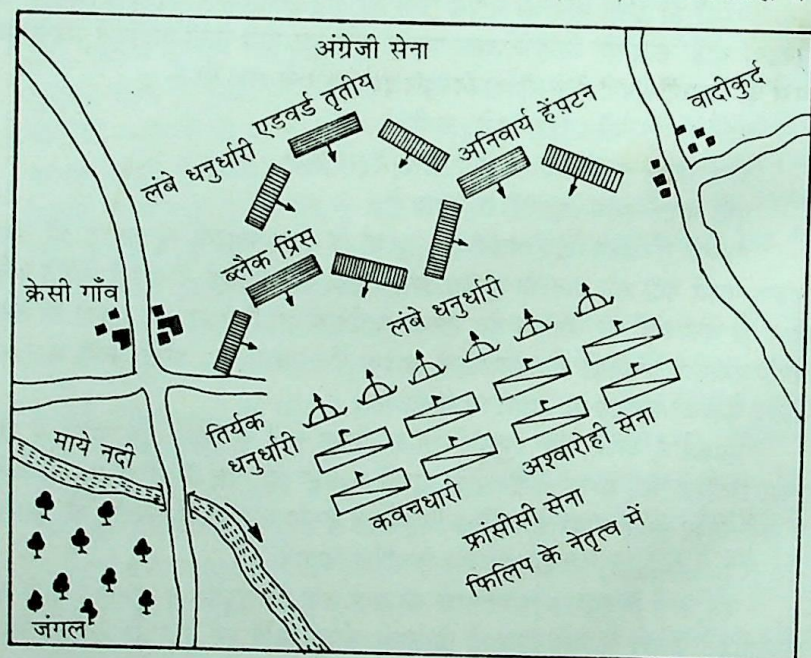
क्रेसी का संग्राम, 1346 ई.

25,000 पृष्ठ भाग में साधारण पैदल सैनिक थे। उसकी सेना के पहले ग्रुप का नेतृत्व बोहेमिया का राजा एलेन कोन कर रहा था। दूसरे ग्रुप का नेतृत्व ड्यूक ऑफ लारेन व्यलस कर रहा था तथा तीसरे ग्रुप का नेतृत्व स्वयं फिलिप के हाथों में था।

सैन्य-शक्ति के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है, अतः उन्होंने अलग-अलग प्रकार से सैनिक संख्या वर्णित की है, परंतु यह बात निर्विवाद सत्य है कि एडवर्ड तृतीय की तुलना में फिलिप षष्ठ की सैनिक संख्या कहीं अधिक थी।

वास्तविक संघर्ष

फिलिप की सामंती सेना एडवर्ड के मोरचे के समीप जैसे ही पहुँची, सामंती सेना ने उचित नेतृत्व एवं नियंत्रण के अभाव में एडवर्ड की सेना पर तेजी से आक्रमण कर दिया। उसे यह भ्रम था कि हेस्टिंग के संग्राम की भाँति अंग्रेजों को भी उसके कवचयुक्त अश्वारोही सैनिक शीघ्र ही पराजित कर देंगे। उसे इस बात का बिलकुल अनुमान नहीं था कि अंग्रेजी सेना पूरी तरह तैयार है और आक्रमण को विफल कर सकती है। फिलिप की सेना ने युद्ध के प्रमुख सिद्धांत—शक्ति के केंद्रीयकरण (Concentration of Force) – की पूरी तरह अवहेलना की। इसी कारण आक्रमण करने पर भी युद्ध के प्रथम चरण में उसे बुरी तरह से हानि उठानी पड़ी तथा अंग्रेजों से दोगुनी सैन्य-शक्ति होने पर भी सफलता नहीं मिली।

एडवर्ड की सेना के लंबे धनुर्धारी सैनिकों ने भीषण बाण-वर्षा करके फ्रांसीसी धनुर्धारी सेना को बुरी तरह से आतंकित कर दिया; क्योंकि अंग्रेजी सेना के तीर अत्यंत प्रहारक तथा दूर तक निशाना साधने में सक्षम थे। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रथम अभियान में अनेक फ्रांसीसी सैनिक मौत के मुँह में समा गए तथा शेष बुरी तरह से भयभीत होकर पीछे लौट गए। इनके सामने फ्रांसीसी तिर्यक धनुर्धारी सैनिक कामयाब नहीं हो सके; क्योंकि उनकी मारक क्षमता सीमित थी। वे शत्रु के पास आने की प्रतीक्षा में बैठे रहे। तब तक अंग्रेज सेना के लंबे धनुर्धारियों ने उनका काम तमाम कर दिया।

फ्रांसीसी सामंतों ने आवेश एवं जोश में आकर अनुशासनहीनता के साथ आक्रमण कर दिया था, जिससे उनकी ही अश्वारोही सेना से पैदल सेना अव्यवस्थित एवं कुचल गई। इसके विपरीत अंग्रेजों की सेना ने अपनी प्रतिरक्षात्मक स्थिति ऊँचे स्थान पर ले रखी थी, जिसके परिणामस्वरूप फ्रांसीसी सैनिक ऊपर चढ़कर मोरचा तोड़ने में सफल नहीं हो सके। उन्होंने लगभग 15 बार प्रयास किए, परंतु प्रत्येक प्रयास में उन्हें मुँह की ही खानी पड़ी; क्योंकि अंग्रेजों की धनुर्धारी सेना ने दूर से ही उनको अपना शिकार बनाना आरंभ कर दिया था। अंग्रेजों के तीर इतने प्रहारक थे कि वे मोटे-से-मोटे कवच को भी भेदकर प्रवेश कर जाते थे।

अंत में निराश होकर फ्रांसीसी सेनानायकों ने एक नवीन समरतांत्रिक विधि अपनाने की योजना बनाई, जिसमें विमुख गतिविधि (Turning Movement) अपनाकर अंग्रेजों के पार्श्व पर आक्रमण करना था। इस योजना में भी फ्रांसीसी सेना सफल न हो सकी; क्योंकि अंग्रेज सेनानायक एडवर्ड तृतीय ने अपने दोनों पार्श्वों की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था अत्यंत सुदृढ़ कर रखी थी। इसी कारण फ्रांसीसी सेना द्वारा क्रेसी

की ओर से किया गया आक्रमण पूरी तरह से विफल रहा। इस प्रकार हर अभियान में फ्रांसीसी सेना को बुरी तरह पराजित होना पड़ा तथा अनेक सैनिकों की जान भी गँवानी पड़ी। फ्रांसीसी सैनिकों की लाशों का ढेर-सा बिछ गया, जिसे देखकर अन्य फ्रांसीसी सैनिक भी भयभीत हो गए तथा मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। इस प्रकार एडवर्ड पर रात्रि तक 15 आक्रमण हुए, परंतु फिलिप की कोई निश्चित योजना न होने के कारण उसकी सेना में लगातार अव्यवस्था ही फैलती गई और अंततः असफलता ही हाथ लगी।

विजय के पश्चात् भी एडवर्ड ने अपनी सेना को उसी स्थान पर बनाए रखा। जब दूसरे दिन तड़के फ्रांस की अन्य सहयोगी सेनाएँ वहाँ पहुँचीं तो उन्हें यह नहीं मालूम था कि फिलिप पराजित हो चुका है। इस सेना को पराजित करने में एडवर्ड को कोई कठिनाई नहीं हुई। इस संग्राम में फ्रांस के अनेक सैनिक मारे गए; परंतु अंग्रेजों की विशेष सैनिक क्षति नहीं हुई।

क्रेसी की विजय के पश्चात् एडवर्ड तृतीय ने केलेस (Calais) पर अधिकार कर लिया। सितंबर 1346 ई. में पूर्णरूप से युद्ध विराम हो गया। 12 अक्टूबर, 1346 ई. को एडवर्ड तृतीय इंग्लैंड वापस आ गया। इस विजय के साथ ही अंग्रेजों ने फ्रांस में अपने पैर रख दिए और अगले दो सौ वर्षों तक जमे रहे। अंग्रेजों ने केलेस को व्यापारिक केंद्र के रूप में इस्तेमाल किया। इस संग्राम का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि इंग्लैंड का उत्साह बढ़ गया और वह (इंग्लैंड) एक सैनिक राष्ट्र के रूप में सम्मानित हुआ।

सैन्य शिक्षाएँ

1. युद्ध में सफलता पाने के लिए कुशल नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, इसके अभाव में कभी भी सफलता नहीं मिलती है; जैसे इस युद्ध में फ्रांसीसी सामंत नेतृत्वहीन एवं योजनाविहीन कार्यवाही करके विशाल सैन्य-शक्ति के बावजूद पराजित होने के लिए मजबूर हो गए। जबकि इसके विपरीत अंग्रेजों की सफलता का प्रमुख श्रेय एडवर्ड तृतीय के कुशल नेतृत्व को दिया गया।
2. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि उच्च कोटि की कूटयोजना तथा उसका समरतांत्रिक प्रयोग सफलता का मूल आधार होता है, जैसे इस युद्ध में एडवर्ड तृतीय ने अपनी सेना के दोनों पार्श्वों को सुरक्षित करके इस प्रकार की कार्यवाही की कि शत्रु की विशाल सैन्य-शक्ति उनके सामने नहीं टिक सकी और प्रत्येक आक्रमण में उन्हें मुँह की खानी पड़ी तथा भयभीत होकर भागना भी पड़ा।
3. युद्ध में संकेंद्रण के सिद्धांत का सक्रिय सहयोग सफलता का सूचक होता है, जबकि इसकी अवहेलना करने पर पराजय के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं; जैसे इस युद्ध में विशाल सैन्य-शक्तिवाली फ्रांसीसी सेना ने एकजुट न होकर बिखराव के साथ अलग-अलग टुकड़ियों में युद्ध किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें बुरी तरह से पराजित होना पड़ा।

4. युद्धों में सुरक्षा का सिद्धांत सदैव सहायक होता है, जिसमें शत्रु की विस्मयपूर्ण चालों के विरुद्ध सेना, संसाधनों एवं संचार साधनों की सुरक्षा के साथ-साथ व्यक्तिगत सुरक्षा, समरतांत्रिक सुरक्षा, योजना की सुरक्षा तथा सैनिक पड़ाव स्थल की सुरक्षा का ध्यान रखना होता है। इस युद्ध में एडवर्ड तृतीय ने इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर कार्यवाही की और महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
5. युद्धगत सफलता में सक्रिय सहयोग एवं श्रेष्ठ हथियार सदैव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं, जैसे इस युद्ध में अंग्रेजों की सेना के लंबे धनुष-बाणों ने अपनी विशाल प्रहारक क्षमता, अचूकता एवं दूर तक लक्ष्यभेदन क्षमता के बल पर विशाल सैन्य-शक्तिवाली फ्रांसीसी सेना पर कहर ढा दिया और एक समरतांत्रिक सफलता प्राप्त की।
6. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में सफलता पाने के लिए केवल सैनिक संख्या ही पर्याप्त नहीं होती; बल्कि सैनिकों के अंदर निहित गुण अधिक कारगर प्रमाणित होते हैं। एडवर्ड तृतीय के सैनिक फिलिप की तुलना में कहीं कम संख्या में होते हुए भी बहादुर एवं उत्साही होने के कारण सफल हो सके।
7. फ्रांसीसी सेना की पराजय का एक प्रमुख कारण यह था कि उसके सैनिक बिना किसी जानकारी के, जोश में आकर अपनी आधी-अधूरी शक्ति से अनजानी शत्रु शक्ति से भिड़ गए; जिससे एक-एक करके उसके सभी सामंत मारे गए। जहाँ बहुत से मत होते हैं वहाँ सफलतापूर्वक कार्यवाही करना संभव नहीं हो पाता है। जैसाकि इस युद्ध में हुआ।
8. इस युद्ध में अश्वारोही सेना के विरुद्ध अनुशासित पैदल सेना ने अपने श्रेष्ठ हथियार का सर्वोत्तम प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में अश्वारोही सेना ही विजय का आधार नहीं है, अपितु श्रेष्ठ एवं अनुशासन-युक्त सेना के द्वारा अश्वारोही सेना पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है, जैसें एडवर्ड तृतीय की सेना को ऐतिहासिक सफलता मिली।
9. इस युद्ध में प्रक्षेपास्त्र की सामरिकी सर्वप्रथम प्रकाश में आई और इसके साथ ही लंबे धनुष-बाण का प्रभाव लगभग एक शताब्दी तक बना रहा।
10. इस संग्राम ने एक नवीन युद्ध का सूत्रपात किया, जिसमें अश्वारोही सेना का पतन हुआ तथा उसका स्थान पैदल सेना ने ग्रहण कर लिया। जनरल जे. एफ. सी. फुलर ने इस संदर्भ में लिखा है, "क्रेसी के युद्ध ने ब्रिटेन को एक सैनिक राष्ट्र के रूप में परिवर्तित कर दिया। अंग्रेजों की लड़ाकू प्रतिभा इतनी उच्च थी कि अब उसे यूरोप में बनाए रखने का प्रश्न था। इस युद्ध के साथ ही मध्यकाल की समाप्ति और जागृति के काल का शुभारंभ होता है।"

पानीपत का प्रथम संग्राम
(1526 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी एवं मुगल शासक बाबर के मध्य 21 अप्रैल, 1526 को पानीपत (हरियाणा) के मैदान में हुआ था। इस संग्राम के साथ ही मुगल साम्राज्य का भारत में प्रसार आरंभ हो गया था। बाबर का वास्तविक नाम मुहम्मद जहीरुद्दीन था। उसका जन्म फरगाना के शासक उमरशेख के यहाँ 1483 ई. में हुआ। वह पिता की ओर से तैमूर और माता की ओर से चंगेज खाँ के वंश से संबंध रखता था। इस प्रकार बाबर की नसों में मध्य एशिया के दो विख्यात क्रूर वंशों के रक्त का मिश्रण था। उसने 11 वर्ष की अवस्था में ही राज्य प्रबंध का भार उठाना आरंभ कर दिया था। इसके बाद संघर्षों से जूझते हुए बाबर ने काबुल पर अपना अधिकार कर लिया। काबुल का शासक बन जाने के पश्चात् उसने खोए हुए प्रदेशों को पाने के लिए अनेक प्रयास किए; परंतु भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। हर बार उसे असफलता ही हाथ लगी! विजय-लालसा के लिए उसने भारत की ओर अपने कदम बढ़ाए। परिणामस्वरूप उसने 1519 और 1524 ई. के दौरान चार बार सिंध पार करके पंजाब पर आक्रमण किया; परंतु लाहौर से आगे बढ़ने में सफल नहीं हो सका।

जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण की योजना बनाई उस दौरान भारत अस्थिरता एवं अराजकता के वातावरण से गुजर रहा था। आपसी मतभेदों एवं क्षणिक स्वार्थों ने दिल्ली शासन की जड़ों को खोखला कर दिया था। 1451 ई. में बहलोल खाँ लोदी दिल्ली का सुल्तान बना। उसकी मृत्यु के पश्चात् 1489 ई. में उसके पुत्र सिकंदर लोदी ने दिल्ली की बागडोर सँभाली। नवंबर 1517 ई. में सुल्तान की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र इब्राहीम खाँ लोदी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। 1526 ई. में उसका बाबर के विरुद्ध पानीपत के मैदान में एक ऐतिहासिक एवं महत्त्वपूर्ण संग्राम हुआ। परंतु इस युद्ध के अंत में वह मारा गया और भारत में मुगल शासन की आधारशिला रख दी गई।

5 जनवरी, 1526 ई. को बाबर अपनी सेना सहित दिल्ली पर आक्रमण करने के इरादे से आगे बढ़ा। इसी दौरान बाबर को पता लगा कि सुल्तान इब्राहीम लोदी ने हिसार (हरियाणा) के शेखदार हमीद खाँ को मुठभेड़ के लिए भेजा है, तो उसने मुकाबला करने के लिए अपने पुत्र हुमायूँ को मैदान में भेजा। हुमायूँ ने अपने विशिष्ट सरदारों के सहयोग से 25 फरवरी, 1526 ई. को अंबाला (हरियाणा) में हमीद खाँ को पराजित करके

उसकी शेखदारी प्राप्त कर ली। इस सफलता को शुभ मानकर बाबर ने अपनी सेना का पड़ाव अंबाला के निकट शाहाबाद (मारकंडा) में डाल दिया तथा सुल्तान इब्राहीम लोदी की स्थिति का पता लगाने के लिए अपने जासूसों को भेजा—जिससे ज्ञात हुआ कि सुल्तान की सेना का एक दल दौलत खाँ लोदी के नेतृत्व में उसका सामना करने के लिए आ रहा है। इससे निबटने के लिए बाबर ने अपनी सेना की एक टुकड़ी मेहँदी ख्वाजा के नेतृत्व में सामने की ओर लगा दी। इस अभियान में भी बाबर की सेना को सफलता प्राप्त हुई। अब बाबर ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और पानीपत (हरियाणा) के विशाल मैदान में अपनी सेना को तैनात कर दिया।

जिस समय बाबर दिल्ली पर आक्रमण करने के इरादे से आगे बढ़ रहा था, उस समय दिल्ली के शासक सुल्तान इब्राहीम लोदी के मिजाज एवं व्यवहार से उसके अधीन सरदार तथा अधिकारी खुश नहीं रहते थे। यही कारण रहा कि उसके पास विशाल सैन्य-शक्ति होते हुए भी उसे पराजित होना पड़ा।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति के आधार पर दोनों में अत्यधिक अंतर दर्शाया गया है। 'बाबरनामा' के अनुसार, बाबर की सेना में कुल 12,000 सैनिक थे। मेजर डेविड के अनुसार, उसके सैनिकों की संख्या लगभग 10,000 ही रही होगी। कर्नल हेग के अनुसार, उसके पास 25,000 सैनिक थे। बाबर की सेना में नवीन हथियार के रूप में तोपें एवं दस्ती बंदूकें थीं। तोपों को गाड़ियों में रखकर युद्धक्षेत्र में ले जाया जाता था। मुगल सैनिक पूर्णरूप से कवचयुक्त थे। बाबर की सेना का प्रमुख हथियार धनुष-बाण था। उसकी सेना में अधिकांश अश्वारोही सैनिक थे, जो धनुष-बाण चलाने में अत्यंत निपुण थे। उनके तीर 60 से 70 गज तक की दूरी पर भी सरलता से प्रहार कर सकते थे। इसके साथ ही बाबर एक कुशल सेनापति था, जिसने अपनी सेना को बड़े ही सुनियोजित तरीके से संगठित किया था। आग्नेयास्त्रों ने उसकी सैन्य-शक्ति को अत्यधिक बल प्रदान किया।

सुल्तान इब्राहीम लोदी की सेना में लगभग 1,00,000 सैनिक तथा 1,000 हाथी थे। यह सैनिक संख्या 'बाबरनामा' के आधार पर है। जदुनाथ सरकार के अनुसार, इब्राहीम लोदी की सेना में 20,000 कुशल अश्वारोही सैनिक, 20,000 साधारण अश्वारोही सैनिक, 30,000 पैदल सैनिक तथा 1,000 हाथी सैनिक थे। सुल्तान के अधीन सरदारों तथा सूबेदारों में आपसी मतभेद बहुत अधिक थे। उसकी सेना में राष्ट्रीय तथा दल भावना का पूर्णतः अभाव था। उसकी सेना के प्रमुख हथियार तलवार, भाला, लाठी, कुल्हाड़ी तथा धनुष-बाण थे। यद्यपि उसकी सेना के पास बारूद के विस्फोटक और आग उगलनेवाले हथियार भी थे; परंतु वे बाबर की तोपों का सामना कर सकने में समर्थ नहीं थे।

समरतांत्रिक फैलाव

बाबर के पास सुल्तान की तुलना में बहुत कम सैन्य-शक्ति थी। इसी कारण उसने आक्रमणात्मक नीति न अपनाकर दृढ़ सुरक्षात्मक मोरचा बनाया। 12 अप्रैल, 1526 ई. को उसने यमुना नदी और पानीपत नगर के बीच 3 मील लंबा क्षेत्र युद्ध के लिए चुना। नदी से नालोंवाले प्रवेश-मार्गों को रोकने के लिए बड़े-बड़े पेड़ कटवाकर डाल दिए, जिससे शत्रु इस ओर से आक्रमण न कर सके। अपनी तोपों की सुरक्षा के लिए 700 बैलगाड़ियों को दो-दो के साथ जोड़कर, गीले चमड़े के रस्सों से बँधवा दिया। गाड़ियों के मध्य 16 गज की दूरी रखी। गाड़ियों के बीच खाली जगह पर पहिएदार तिपाइयों पर ढालें रखकर उनके पीछे दस्ती बंदूकधारियों को खड़ा कर दिया। बाबर ने अपने सैन्य दलों को निम्न नामों से संबोधित किया—

1. अग्र दल (हरावल),
2. बायाँ पार्श्व (जैरनगढ़),
3. दायाँ पार्श्व (वैरनगढ़),
4. मध्य दल (घोल),
5. पृष्ठ दल (चंडावल)।

बाबर ने मध्य भाग के, मुख्य दल तथा सहायक, दो डिवीजनों को प्रत्यक्ष रूप से अपने अधीन रखा। दाहिने डिवीजन का सेनापति चिन तैमूर सुल्तान और बाएँ डिवीजन का सेनापति ख्वाजा मीर को नियुक्त किया था। उसने अपनी गतिशील अश्वारोही सेना 'तौलगमा संक्रिया' के लिए वलीकाजिल की कमान में तैनात की थी, जिससे शत्रु के पार्श्व तथा पृष्ठ भाग पर जोरदार आक्रमण करके दबाव डाला जा सके।

सुल्तान इब्राहीम लोदी ने अपनी सेना के साथ पानीपत नगर के दक्षिण में मोरचा सँभाला था। उसने सबसे आगे अपनी हाथी सेना को खड़ा किया, इसके बाद अपनी पैदल सेना लगाई। उसने अश्वारोही सेना को चार प्रमुख भागों—अग्र भाग, मुख्य भाग, दाएँ भाग तथा बाएँ भाग में विभक्त कर रखा था। अपनी सेना की सुरक्षा के लिए उसने किसी भी प्रकार की प्राकृतिक या कृत्रिम रुकावटों का सहारा नहीं लिया था।

वास्तविक संघर्ष

बाबर यह जानता था कि उसको अपने से कई गुना अधिक सैन्य-शक्तिवाली सेना के साथ लड़ना होगा, जिसको सीधे आक्रमण के द्वारा पराजित करना संभव नहीं होगा। अतः उसने अपनी योजना के अनुसार छोटे-छोटे दलों के द्वारा सुल्तान इब्राहीम लोदी की सेना पर आक्रमण आरंभ कर दिए, जिससे सुल्तान आक्रामक स्थिति अपनाकर हमला करे; परंतु इन हमलों के बावजूद लोदी ने आक्रामक पहल नहीं की। अतः बाबर ने 19 अप्रैल, 1526 ई. की रात्रि को अपने 5,000 कुशल अश्वारोही सैनिकों का एक दल लोदी की सेना पर आक्रमण के लिए भेजा; परंतु रात्रि में रास्ता भूल जाने के कारण यह
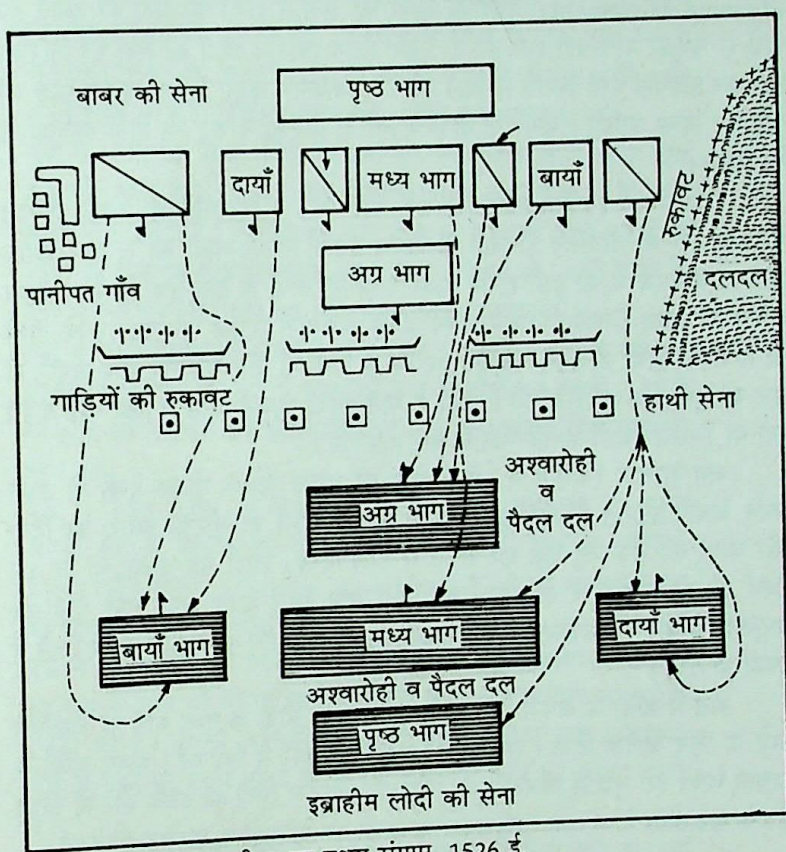
पानीपत का प्रथम संग्राम, 1526 ई.

आक्रमण सफल नहीं हो पाया। साथ ही सैनिक शत्रुसेना द्वारा घिर गए; परंतु मुगल सेना किसी प्रकार बचकर वापस 20 अप्रैल को लौट आई। लोदी की सैनिक गतिविधि पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। लोदी ने बाबर की सुरक्षा पंक्ति पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। 21 अप्रैल को प्रातः लोदी की सेना लगभग 4 मील की दूरी 3 घंटे में तय करके बाबर की सेना के निकट पहुँच गई; परंतु बाबर की सेना के आगे बैलगाड़ियों से बनी मोरचेबंदी को देखकर लोदी की सेना अचानक रुक गई, जिससे आगे बढ़ती हुई सेना का संगठन एक भीड़ के रूप में परिवर्तित होकर बाबर की सेना के दाहिने पार्श्व में एकत्रित हो गया।

उसी समय बाबर ने अपनी निर्धारित योजना के अनुसार सुल्तान की सेना पर 'तौलगमा संक्रिया' के द्वारा दोनों पार्श्वों से आक्रमण कर दिया। बाबर की अश्वारोही सेना के द्वारा यह कार्यवाही बड़े ही सफलतापूर्ण ढंग से की गई। व्यापक टर्निंग मूवमेंट

(Turning Movement) अपनाकर बाबर की सेना ने लोदी की सेना को दबाते हुए पीछे से भयंकर बाण-वर्षा शुरू कर दी। इस दौरान इब्राहीम लोदी की सेना यह निश्चित नहीं कर पाई कि ऐसी स्थिति में आगे की ओर आक्रमण करना चाहिए अथवा पीछे की ओर हट जाना चाहिए। बाबर के दोनों पार्श्वों के सैनिकों ने शत्रु को दोनों बाजुओं से घेर लिया।

जिस समय इब्राहीम लोदी की सेना चारों ओर से घिर गई तथा उसका संगठन भीड़ के रूप में परिवर्तित हो जाने के कारण उसके सैनिक शस्त्रों का खुलकर प्रयोग करने में असमर्थ थे, तो इसी दौरान बाबर ने अपनी तोपों के द्वारा तेजी के साथ फायर आरंभ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप अनेक अफगानी सैनिक मारे गए। उनके हाथी भी तोपों के फायर से इतने भयभीत हुए कि वे पीछे की ओर मुड़ गए और अपनी ही सेना को बुरी तरह कुचलने लगे। लोदी के पास इसका सामना करने के लिए कोई उपाय नहीं था, जिससे हजारों सैनिक मौत के घाट उतर गए।

जब सुल्तान इब्राहीम ने अपनी सेना की हालत अत्यंत नाजुक देखी तो उसने अपने अधीन 5,000 सैनिकों सहित बाबर के दाएँ पार्श्व पर जोरदार हमला कर दिया और बाबर की सेना को एक बार संकट में डाल दिया। लोदी यह चाहता था कि इस पार्श्व को पानीपत नगर से अलग कर दिया जाए; परंतु बाबर अपने पृष्ठ भाग एवं इल्तुमिश से बार-बार सहायक सेनाएँ भेजकर अपने दाएँ भाग को मजबूत बनाए रखने में सफल हो गया।

अंत में बाबर ने अपनी सेना के मध्य भाग को लोदी के मध्य भाग पर आक्रमण करने के लिए आदेश दिया। सुल्तान की सेना चारों ओर से घिर गई। भीषण संघर्ष के पश्चात् बाबर इस युद्ध में विजयी हुआ। सुल्तान इब्राहीम लोदी को उसके सैनिकों सहित मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार बाबर को एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हुई।

युद्ध का परिणाम

यह संग्राम भारतीय सैन्य इतिहास की एक महान् घटना है। इसके परिणामस्वरूप लोदी वंश, लोदी राज्य एवं लोदी शक्ति का पतन हो गया तथा बाबर ने भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल साम्राज्य की आधारशिला स्थापित कर दी। प्रो. एस. एम. जाफर ने लिखा है, "इस युद्ध से भारतीय इतिहास में एक नए युग का आरंभ हुआ। लोदी वंश के स्थान पर मुगल वंश की स्थापना हुई। इस नए वंश ने समय आने पर ऐसे प्रतिभाशाली तथा महान् शासकों को जन्म दिया, जिनकी छत्रछाया में भारत ने असाधारण उन्नति एवं महानता प्राप्त की।"

सैन्य शिक्षाएँ

पानीपत के प्रथम संग्राम से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं—

1. अपनी शक्ति के अनुसार लक्ष्य का निर्धारण एवं उसका निर्वाह करना सदैव सफलता का सूचक रहा है; जैसे इस युद्ध में बाबर ने सुरक्षात्मक स्थिति अपनाकर, लक्ष्य के अनुसार शत्रु को लड़ने के लिए मजबूर करके और अपने लक्ष्य का सही निर्धारण करके अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की।
2. युद्ध में आक्रामक पहल सदैव सफलता की सूचक है, क्योंकि इसके द्वारा शत्रु को अपने चुने हुए क्षेत्र तथा निश्चित समय में युद्ध करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। जैसाकि इस युद्ध में बाबर ने अपनी छोटी टुकड़ी से लोदी की सेना पर आक्रमण करके अपने सुरक्षित स्थान पर उसको लड़ने के लिए मजबूर कर दिया तथा एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
3. युद्ध में नए-नए हथियारों के प्रयोग से शत्रु को हतोत्साहित करने में सफलता मिलती है, जैसाकि इस युद्ध में बाबर की सेना की तोपों एवं बंदूकों ने लोदी की सेना को भयभीत एवं हतोत्साहित कर दिया और समरतांत्रिक सफलता प्राप्त की।
4. युद्ध में नवीन प्रकार की सामरिकी (Tactics) भी सफलता का प्रमुख आधार होती है, जैसाकि इस युद्ध में बाबर की सेना ने 'तौलगमा संक्रिया' अथवा टर्निंग मूवमेंट (Turning Movement) कार्यवाही अपनाकर शत्रु को आश्चर्यचकित कर दिया।
5. युद्ध में गतिशीलता का सिद्धांत भी सफलता का प्रमुख आधार होता है। इस युद्ध में बाबर की विजय का श्रेय उसकी सेना की गतिशील अश्वारोही टुकड़ी को है। उसकी अश्वारोही सेना में अरबी, इराकी तथा खुरासानी घोड़े थे, जिन पर सवार होकर ही सैनिक बाण-वर्षा करने की क्षमता रखते थे।
6. युद्ध में श्रेष्ठ नेतृत्व का सदैव से अत्यंत उच्च स्थान रहा है, जिसके बल पर हारी हुई बाजी भी विजय में बदल सकती है। इस युद्ध में लोदी की तुलना में बाबर की सेना नगण्य ही थी, परंतु बाबर ने कुशल नेतृत्व के द्वारा अपनी सैन्य-शक्ति से कई गुना अधिक शत्रु की सेना को परास्त कर दिया।
7. शत्रु को सदैव धोखे में रखना तथा आकस्मिक कार्यवाही करना युद्ध को अपने पक्ष में करना होता है; जैसाकि बाबर ने अपनी योजनाओं एवं तैयारियों को गुप्त रखकर शस्त्र एवं समरतंत्र के माध्यम से शत्रु को एक बार आश्चर्य में डाल दिया।
8. श्रेष्ठ सैन्य-संगठन भी युद्ध में सफलता का सच्चा सहयोगी होता है, जैसाकि इस युद्ध में बाबर की सेना का सैन्य संगठन सुल्तान इब्राहीम लोदी की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ था; क्योंकि लोदी की सेना में एकता, अनुशासन एवं संगठन का पूर्ण अभाव था तथा युद्ध-कौशल भी दोषपूर्ण

एवं प्राचीन ही था।

9. इस युद्ध में बाबर की सफलता का श्रेय उसकी सेनाओं के सैन्य संगठन एवं आपसी सहयोग को दिया जाता है, क्योंकि बाबर की सभी टुकड़ियों ने एक साथ मिलकर तथा व्यूहबद्ध ढंग से सहयोग के सिद्धांत की सार्थकता को प्रमाणित कर दिया।
10. युद्धक्षेत्र की स्थिति के अनुसार ही सेनाओं का विस्तारण किया जाना चाहिए; जिससे संबंधित सैन्य दल के सभी सदस्य अपने समस्त हथियारों का समुचित प्रयोग करके उचित कार्यवाही कर सकें। युद्ध में सफलता उसकी सैनिक शक्ति से नहीं प्राप्त होती, बल्कि श्रेष्ठ शस्त्र एवं सैनिक की भावना के द्वारा ही विजय को सुनिश्चित किया जा सकता है। जैसाकि बाबर की सेना ने शस्त्रास्त्रों का समुचित प्रयोग करने के लिए सेनाओं का फैलाव इस ढंग से किया था कि शत्रु पर सरलता से हावी हुआ जा सके।

खानवा का संग्राम

(1527 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम मुगल शासक बाबर तथा मेवाड़ के राजपूत शासक चित्तौड़-नरेश राणा साँगा के मध्य लड़ा गया। राणा साँगा राजस्थान का विख्यात एवं शक्तिशाली योद्धा था, जिसने अपनी यौद्धिक प्रतिभा के बल पर अनेक युद्धों में वीरता का परिचय दिया था, जिसके कारण आसपास के मुसलिम शासक भी उसके शौर्य एवं शक्ति से भयभीत थे। यौद्धिक शक्ति के साथ ही राणा साँगा एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था।

राणा साँगा ने सोचा था कि बाबर लोदी को पराजित करके तथा धन-दौलत लूटकर लौट जाएगा तो उसके शासन के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाएगा; परंतु जब बाबर ने भारत में स्थायी तौर पर बस जाने का निश्चय किया तो राणा साँगा के सामने बाबर के विरुद्ध युद्ध करने के अतिरिक्त कोई उपाय ही नहीं बचा, जिसके परिणामस्वरूप इस युद्ध का आरंभ हुआ।

पानीपत के प्रथम संग्राम में सफलता के पश्चात् बाबर की सेना ने कालपी, बयाना तथा धौलपुर पर अधिकार कर लिया, जो कि समझौते के आधार पर राणा साँगा के अधिकार-क्षेत्र में थे, इस प्रकार दोनों के मध्य आपसी मतभेद बढ़ गए। इसी समय बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ की कमान में एक विशाल सेना के द्वारा आगरा पर अधिकार जमा लिया, जिससे राणा साँगा और भी अधिक विरोधी बन गया। अतः उसने एक कूटनीतिक चाल चली जिसमें सुल्तान सिकंदर खाँ लोदी के पुत्र को दिल्ली सल्तनत का दावेदार घोषित कर दिया तथा आक्रमण करके कंधेरी तथा बयाना के किलों पर अधिकार कर लिया, जिससे बाबर अत्यंत क्षुब्ध तथा भयभीत हुआ। उसने राणा साँगा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए दाँव-पेंच शुरू कर दिए। राणा से निबटने के लिए उसने हुमायूँ को भी बुलाया। साथ ही, हसन खाँ मेवाती को भी अपने पक्ष में करने का प्रयास किया। इस दौरान अलग-अलग कमानों में तीन बार राजपूतों की सेना को पराजित करने के जोरदार प्रयास बाबर द्वारा किए गए, परंतु उसे किसी भी अभियान में सफलता नहीं मिली।

बाबर ने राजपूत सेना का मुकाबला करने के लिए अपने सैनिकों को धर्म की दुहाई देकर अल्लाह के नाम पर जेहाद आरंभ करने की योजना बनाई, ताकि सैनिकों में साहस एवं बलिदान की भावना को बरकरार रखा जा सके। तभी राजपूत सैनिकों को हराना संभव होगा। इसी योजना के अंतर्गत बाबर ने 17 मार्च, 1527 ई. को आगरा के

निकट खानवा में अपनी सेना की मोरचेबंदी आरंभ कर दी।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

बाबर की सेना के पैदल, अश्वारोही तथा तोपखाने प्रमुख अंग थे, जिनकी सैनिक संख्या इस प्रकार थी—

कुल 30,000 सैनिक।
मित्रों की सेना सहित 50,000 सैनिक।
दाएँ बाजू में (हुमायूँ के नेतृत्व में) 5,000 अश्वारोही,
बाएँ बाजू में (मेहँदी ख्वाजा के नेतृत्व में) 3,000 अश्वारोही,
केंद्रीय कमान (बाबर के नेतृत्व में) 10,000 अश्वारोही।
इसके साथ ही आरक्षित सेना भी थी।

राजपूत शासक राणा साँगा की सैन्य-शक्ति बाबर की तुलना में कहीं अधिक थी—
पैदल सेना— 1,00,000 सैनिक,
हाथी सेना— 1,000।

राणा की सेना में अश्वारोही सेना भी थी। सबसे आगे हाथी सेना, उसके पीछे अश्वारोही सेना तथा सबसे पीछे मध्य तथा पार्श्व समूहों में विभक्त पैदल सेना खड़ी होती थी। उसके पास तोपों का अभाव था। उसने तोपों के विरुद्ध कभी युद्ध भी नहीं लड़ा था।

बाबर की सेना का फैलाव पानीपत के प्रथम युद्ध की भाँति था, जिसमें सबसे आगे सामान ढोनेवाली लगभग 1,000 गाड़ियों को 40-40 फीट की दूरी पर एक पंक्ति के रूप में लगाकर चमड़े की पट्टियों से बाँधा गया था। दो-दो गाड़ियों के बीच में चक्केवाली तिपाइयों पर ढालों के पीछे बंदूकधारी सैनिक तैनात किए गए। अश्वारोही सेना को युद्ध में आगे बढ़ाने के लिए दोनों पार्श्वों में लगभग 60-60 गज की दूरी छोड़ी गई थी; जिससे राणा की सेना पर तौलगमा आक्रमण किया जा सके। बाबर ने अपनी सेना की बड़ी तोपों (जिंसी) का नेतृत्व उस्ताद अली कुली को सौंपा। बंदूकधारियों का नेतृत्व मुस्तफा खान के अधीन रखा गया। उसने अपनी प्रमुख अश्वारोही सेना को तीन मुख्य भागों में संगठित किया—केंद्रीय कमान स्वय बाबर के नेतृत्व में, बायाँ पक्ष मेहँदी ख्वाजा के अधीन तथा दायाँ पक्ष हुमायूँ के अधीन था। इसके अतिरिक्त 1,000-1,000 सैनिकों की दो विशिष्ट अश्वारोही टुकड़ियाँ पृष्ठ भाग से राणा पर आक्रमण करने के लिए रखी गईं, जिन्हें 'तौलगमा' आक्रमण कहा जाता है। इल्तमिश (पृष्ठ भाग) में लगभग 30,000 आरक्षित सैनिक लगाए गए। बाबर के भारतीय मित्रों की सेना भी उसके बाईं ओर थी।

राजपूत सेना प्राचीन परंपरागत ढंग से युद्धक्षेत्र में संगठित हो गई—जिसमें सबसे आगे हाथी सेना, फिर अश्वारोही सेना तथा तीन भागों (दाएँ, मध्य एवं बाएँ) में विभक्त

पैदल सेना सबसे पीछे लगाई गई थी। वास्तविक युद्ध आरंभ होने के पूर्व राजपूत सेना का सिलहदी नाम का राजपूत सरदार विश्वासघात करके लगभग 30,000 सैनिकों सहित बाबर की सेना में मिल गया तथा अपना धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान बन गया। इससे राणा साँगा की यौद्धिक संरचना लड़खड़ा गई। उसका अग्रिम बायाँ भाग खाली हो गया। राणा साँगा ने पुनः अपनी सेना को पंक्तिबद्ध किया।
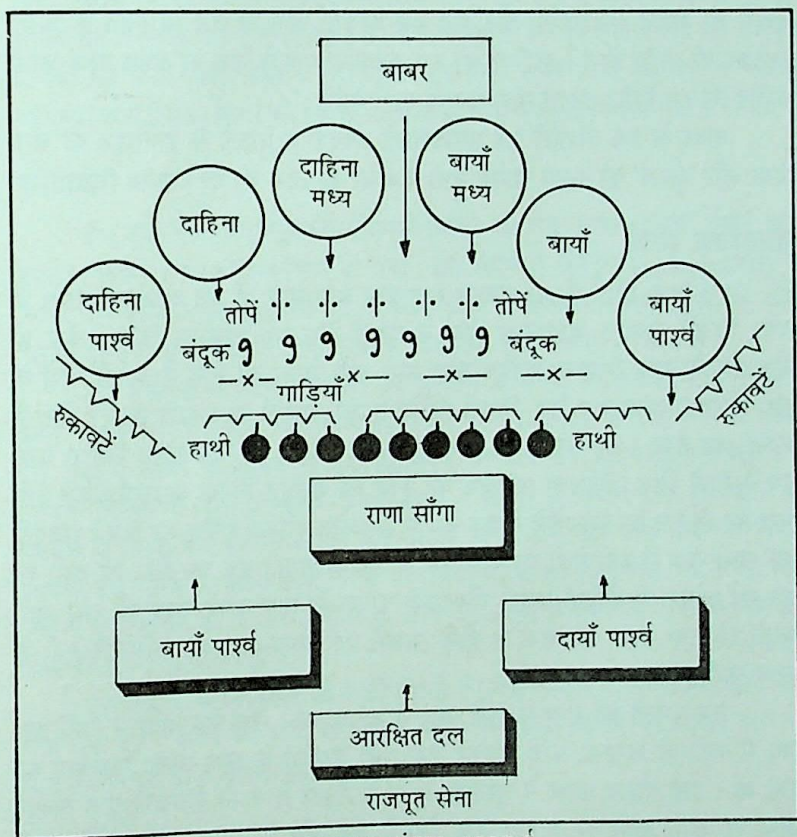
खानवा का संग्राम, 1527 ई.

वास्तविक युद्ध होने के पूर्व बाबर को एक विचित्र कठिनाई का सामना करना पड़ा। जब राजपूत योद्धाओं ने मुगलों के हरावल दस्ते को मार भगाया तो मुगल सैनिकों में भय व्याप्त हो गया। तत्कालीन ज्योतिषी ने राजपूतों की विजय की भविष्यवाणी करके मुगलों को अत्यंत हतोत्साहित कर दिया था। इन परिस्थितियों में बाबर ने अपनी कुशल सैन्य प्रतिभा का परिचय दिया और अपने सैनिकों में उत्साह एवं आत्मविश्वास

जाग्रत करने के लिए स्वयं कभी मदिरा न पीने की प्रतिज्ञा की तथा मदिरा के सभी बरतन व भंडार खत्म कर दिए। अपने सरदारों को संबोधित करते हुए उसने कहा, "मेरे साथी सरदारो ! प्रत्येक प्राणी जो संसार में आता है, उसका विनाश अवश्य होता है। केवल अल्लाह ही अविनाशी एवं अविचल है। जिसने जीवन के सुख एवं ऐश्वर्य का भोग किया है, उसे अंत में मृत्यु का स्वागत करना पड़ेगा। कलंकित नाम के साथ रहने की अपेक्षा शान के साथ प्राण दे देना अधिक अच्छी बात है। यदि हम इस रणक्षेत्र में मर जाएँगे तो शहीद कहलाएँगे और यदि हम विजयी होंगे तो उस परमात्मा के पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति होगी। इसलिए हमें उस सर्वशक्तिमान के नाम पर शपथ ग्रहण करनी चाहिए कि हम ऐसी शानदार मृत्यु से मुख नहीं मोड़ेंगे।"

बाबर के इस जोशीले एवं प्रभावशाली उपदेश ने मुगलों के हतोत्साह को जगा दिया और 'कुरान' की कसम खाकर सभी ने बाबर का साथ देने का निश्चय किया।

वास्तविक संघर्ष

17 मार्च, 1527 ई. को राजपूत सेना द्वारा प्रातः साढ़े नौ बजे आक्रमण आरंभ हो गया, जिसमें राजपूत अश्वारोही सेना ने मुगल सेना पर आक्रमण किया। जैसे ही जोर-शोर के साथ विशाल राजपूत सेना आगे बढ़ी, बाबर की सेना ने अपनी तोपों के द्वारा जोरदार फायर कर दिए, जिससे निकलनेवाला बिजली-सा प्रकाश राजपूत सेना ने पहली बार देखा। इस प्रकाश के साथ ही विशाल पत्थर का गरम गोला विनाश करते हुए तेजी से गिरा। जिसका परिणाम यह हुआ कि राजपूत सैनिक आश्चर्यचकित तथा भयभीत हो गए कि इस गोले ने एक बार में ही अनेक सैनिक शहीद कर दिए। राजपूतों की हाथी सेना में इन गोलों का बुरी तरह आतंक छा गया। एक बार सेना की कमर-सी टूट गई। फिर भी सैनिक अपनी गौरवमयी परंपरा के साथ अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते रहे तथा बाबर की सेना के दोनों पार्श्वों पर अपना आक्रमण अभियान तेजी के साथ जारी रखा।

जब मुगलों की सेना में दोनों ओर से दबाव बढ़ने लगा तब बाबर ने दोनों ओर नए सैनिकों को लगाया; परंतु राजपूत सेना बड़ी बहादुरी के साथ उनका मुकाबला कर रही थी। इसी दौरान बाबर ने मुस्तफा अली के नेतृत्व में अपने तोपखाने द्वारा राजपूत सेना पर फायर करने का आदेश दिया, जिससे युद्ध और भी भयंकर हो गया। बाबर ने स्वयं अपने अधीन सैनिकों सहित राजपूत सेना पर तेजी के साथ धावा बोल दिया तथा अपनी सेना की तोपों तथा दस्ती बंदूकों को भी आगे बढ़कर सामना करने के लिए लगाया। दूसरी ओर बाबर का सामना करने के लिए स्वयं राणा साँगा तेजी के साथ आगे बढ़े। तभी गोली की भाँति एक तीर (तीर-ए-तुफंग) राजपूत सेनानायक राणा साँगा को घायल कर गया, जिससे वे वहीं मूर्च्छित हो गए। राजपूत सैनिकों ने अपने धैर्य एवं साहस का सही परिचय दिया तथा राणा साँगा को युद्धक्षेत्र से हटा लिया; ताकि उनका

इलाज किया जा सके। राणा साँगा के गंभीर रूप से घायल होने के कारण अब राजपूत सेना की बागडोर सरदार झाला के हाथों में आ गई। जब इस बात का पता राजपूत सेना को लगा तो वे और भी अधिक हतोत्साहित हो गए। इसके बावजूद अपने प्राणों की बाजी लगाकर शत्रु का सामना करते रहे; परंतु इस समाचार के साथ ही राजपूत सेना तितर-बितर भी होने लगी।

अंत में बाबर की सेना ने आगे बढ़कर राजपूत सैनिकों पर अपना प्रहार तीव्र कर दिया, जिससे राजपूत सैनिक पीछे हटने के लिए मजबूर हो गए। सूरज ढलते-ढलते राजपूत सैनिक हताश होकर भागने लगे। बाबर की सेना ने बयानी, अलवर तथा मेवाड़ तक राजपूत सैनिकों का पीछा किया तथा 5 किलोमीटर दूर स्थित राणा साँगा के कैंप पर अपना अधिकार जमा लिया। बाबर की इस सफलता के साथ ही यह युद्ध निर्णयात्मक हो गया।

परिणाम

इस युद्ध के परिणामस्वरूप राजपूत शक्ति को एक गहरा आघात लगा तथा उसका विशाल संगठन छिन्न-भिन्न हो गया। इस संदर्भ में लेनपूल (Lanepoole) ने लिखा है, "खानवा का युद्ध राजपूतों के लिए इतना विनाशकारी सिद्ध हुआ कि कोई विरली ही ऐसी राजपूत जाति होगी; जिसके योद्धा इस युद्ध में काम न आए हों।"

इस सफलता के साथ ही बाबर को पूर्णरूप से उत्तरी भारत की ओर से प्रसार करने का अवसर मिल गया, क्योंकि राजपूतों की पराजय से उसे स्थिरता प्राप्त हो गई। इस युद्ध से बाबर के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय का आरंभ हुआ। इसीलिए रशब्रुक विलियम्ज (Rushbrook Williams) ने लिखा है, "अब भाग्य की खोज में भटकने के उसके दिन समाप्त हो गए थे। उसका भाग्य जाग उठा था। अब उसे अपने आपको इस भाग्य के योग्य सिद्ध करना था। यद्यपि उसे कई और युद्ध लड़ने थे; परंतु अब ये युद्ध शक्ति के विस्तार, शत्रुओं के दमन तथा राज्य में व्यवस्था लाने के लिए थे, सिंहासन-प्राप्ति के लिए नहीं।"

इस युद्ध के कारण बाबर की गतिविधियों का केंद्र काबुल के स्थान पर भारत बन गया तथा उसने अपने नए राज्य को सुदृढ़ बनाने के प्रयास आरंभ कर दिए। इसी के साथ ही राजपूत सैन्य-शक्ति का ह्रास हो गया।

सैन्य शिक्षाएँ

इस महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. युद्ध में कुशल नेतृत्व का प्रभाव सफलता का सच्चा सहयोगी रहा है। इस युद्ध में बाबर ने अपनी कुशल नेतृत्व प्रतिभा के बल पर ही सैनिकों में उत्साह एवं बलिदान की भावना भरकर विशाल राजपूत सेना पर विजय

हासिल कर ली थी।

2. युद्ध में कूटनीतिक चालें सदैव महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इस युद्ध में बाबर ने इन्हीं चालों के सहारे सिलहदी नाम के राजपूत सरदार को अपने पक्ष में मिला लिया था, जिसके कारण ही राणा साँगा की समरतांत्रिक योजना अस्त-व्यस्त हो गई और राजपूतों की पराजय तथा बाबर की विजय हो गई।
3. युद्ध में नया हथियार भी शत्रु को आश्चर्यचकित करके उसे हतोत्साहित कर देता है; जैसाकि इस युद्ध में बाबर की तोपों एवं दस्ती बंदूकों के फायर ने राजपूत सेना को कर दिया था, जिसके कारण राजपूत सैनिक हतोत्साहित हो गए और बाबर को समरतांत्रिक सफलता प्राप्त हुई।
4. युद्ध में नवीन प्रकार की सामरिकी भी सफलता की मुख्य भूमिका निभाती है, जैसे इस युद्ध में बाबर की सेना ने 'तौलगमा संक्रिया' अथवा टर्निंग मूवमेंट कार्यवाही अपनाकर राजपूत सेना को आश्चर्य में डाल दिया तथा उसकी योजना को विफल कर दिया।
5. युद्ध में गतिशीलता का सिद्धांत भी सफलता का सूचक माना जाता है; जैसाकि इस युद्ध में बाबर की श्रेष्ठ एवं गतिशील अश्वारोही सेना ने तेजी के साथ परिवर्तन करके शत्रु का मुकाबला किया और राजपूत सेना को हैरत में डाल दिया।
6. युद्ध में सैनिकों को धर्म एवं जाति के नाम पर जोश दिलाकर कार्य करवाने में भी सफलता के अवसर बढ़ जाते हैं, जैसाकि बाबर ने अपने सैनिकों में त्याग एवं बलिदान की भावना भरने के लिए 'जेहाद' (धर्मयुद्ध) का नारा लगाकर उनको अत्यंत उत्साहित किया और सफलता प्राप्त की।
7. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में योधन संभार का प्रभाव साहस और शौर्य से अधिक होता है, जैसाकि बाबर की तोपों एवं बंदूकों का सामना राजपूती शौर्य एवं पराक्रम नहीं कर सका। अंततः बाबर को सफलता प्राप्त हुई।
8. सेना का सही संगठन भी सफलता का आधार माना गया है, जैसाकि इस युद्ध में बाबर की सेना का सैन्य संगठन राजपूत सेना की तुलना में कहीं अधिक सुसंगठित था। उसने सुरक्षात्मक स्थिति अपनाते हुए आक्रामक पहल करके राजपूत सेना के पराक्रम को भी विफल करने में कामयाबी प्राप्त की।
9. बाबर की सेनाओं का आपसी सहयोग उच्च कोटि का था, जिसके आधार पर ही उसने तोपों द्वारा फायर करके तथा अश्वारोही सेना द्वारा दबाव डालकर राजपूत सेना को पराजित कर दिया।

10. बाबर की सामरिकी बहुत लचीली थी, जिसके कारण वह अपनी आवश्यकता के अनुसार तुरंत ही व्यूह परिवर्तित कर लेता था। इस युद्ध में उसने अनुभव किया कि उसका बायाँ पक्ष शत्रु के साथ भिड़ा हुआ है, तो अन्य भागों की सेना को भी उस पक्ष में लगाकर अपनी सेना का संतुलन बनाए रखे। उसने ऐसा किया भी। फलतः उसे विजय प्राप्त हुई तथा इसी सिद्धांत के आधार पर उसने युद्ध के प्रायः सभी साधनों का सफलतापूर्वक उपयोग किया।
11. बाबर ने अपनी सेना में शक्ति की मितव्ययता के सिद्धांत को अपनाकर ही सेनाओं का वर्गीकरण किया और समस्त शक्ति का अधिक-से-अधिक लाभ उठाया, जबकि राजपूत सेना ने अपनी विशाल शक्ति का भी लाभ नहीं उठाया और उसे पराजित होना पड़ा।
12. बाबर ने अपनी सेना को सुरक्षात्मक स्थिति प्रदान करके शत्रु को जोरदार चुनौती दी। उसने अपनी बँधी गाड़ियों, चल तिपाइयों तथा पार्श्व पर खाइयाँ खोदकर एक सुरक्षात्मक किलेबंदी की, जिससे राजपूत सेना आगे नहीं बढ़ सकी। बाबर की योजना के अनुसार मजबूरन उसे लड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। अंततः राजपूत सेना की पराजय हुई।
13. राजपूत सेना के हाथी, जिन्हें सुरक्षा दीवार के रूप में प्रयोग किया जाता था, लाभकारी सिद्ध होने के बजाय तोपों के फायर से आतंकित होकर उपद्रवकारी सिद्ध हुए। उन्होंने ही सेनाओं के संगठन को भंग करके पराजय के अवसर अधिक बढ़ा दिए।

पानीपत का द्वितीय संग्राम

(1556 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम शेरशाह सूरी के वंशज मुहम्मद आदिलशाह के मुख्य सेनापति हेमू तथा बाबर के वंशज अकबर व उसके मुख्य संरक्षक बैरम खाँ के मध्य नवंबर 1556 ई. में लड़ा गया। शेरशाह सूरी ने बाबर के पुत्र हुमायूँ को भारत के बाहर खदेड़ दिया था, किंतु उसकी मृत्यु के बाद पारिवारिक झगड़ों के कारण उसके वंशजों के हाथ से यह साम्राज्य जाता रहा। शेरशाह सूरी वंश का अंतिम शासक आदिलशाह था, जिसने अपना जीवन भी सुखों में व्यतीत करना सीखा था; परंतु योग्य सेनापति हेमू ने अपनी अनन्य सैन्य प्रतिभा के द्वारा अफगानों को एक बार पुनः उन्नति शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया, जिसके लिए उसे लगभग 22 लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं तथा सभी में सफलता प्राप्त की। जिस समय हुमायूँ ने परशिया से वापस आकर दिल्ली तथा आगरा को अपने अधिकार में कर लिया, उसी समय हेमू अपनी सेना सहित हुमायूँ का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। इसी दौरान 26 जनवरी, 1556 ई. को दिल्ली में हुमायूँ की मृत्यु हो गई। जब हेमू के आगरा की ओर बढ़ने का समाचार हुमायूँ के सूबेदार को मिला तो उसने तुरंत ही आगरा शहर को खाली कर दिया तथा दिल्ली की ओर भाग खड़ा हुआ। जिस समय हेमू वहाँ पहुँचा तो उसने भी पीछा करना जारी रखा और दिल्ली के निकट तुगलकाबाद पहुँचा तों वहाँ पर दिल्ली के सूबेदार तारदीबेग तथा हेमू के मध्य जोरदार संघर्ष हुआ। इस लड़ाई में हेमू ने अपनी कूटनीतिक तथा समरतांत्रिक व्यवस्था के द्वारा मुगल सेना पर आक्रमण करके उसको भागने के लिए मजबूर कर दिया।

हुमायूँ की मृत्यु जिस समय हुई थी उस समय उसका बेटा अकबर राजधानी में नहीं था। वह बैरम खाँ के साथ किसी राज्य कार्य के लिए पंजाब की ओर गया हुआ था। उसे बादशाह की मृत्यु की सूचना कलानौर (गुरदासपुर) में प्राप्त हुई। जिससे अकबर को आघात लगना स्वाभाविक ही था; परंतु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बैरम खाँ ने शोकसभा के साथ ही शहजादा अकबर को विधिपूर्वक दिल्ली दरबार का बादशाह नियुक्त कर दिया। इस समय अकबर की उम्र मात्र 13 वर्ष की ही थी, जिसके संरक्षक का कार्य बैरम खाँ ने स्वयं सँभालने का संकल्प किया। जब बैरम खाँ को यह समाचार मिला कि हेमू अपनी सेना सहित दिल्ली आ पहुँचा है तो उसका सामना करने के लिए पंजाब से आकर दिल्ली के निकट पानीपत (हरियाणा) के मैदान की ओर आगे आ गया। हेमू ने रास्ते से अपने तोपखाने की अधिकांश टुकड़ी के साथ हरावल (अग्रिम

टुकड़ी) को सामना करने के लिए पानीपत भेजा। अकबर की सेना की अग्रिम टुकड़ी का नेतृत्व अली कुली खाँ शायबानी ने किया। इस आरंभिक मुठभेड़ में अकबर की सेना ने हेमू की इस टुकड़ी को कूटनीतिक चालों एवं साहसिक योजना के द्वारा पराजित कर दिया; जिसके परिणामस्वरूप हेमू के सैनिक अपनी तोपों को छोड़कर ही मैदान से भाग खड़े हुए।

जब हेमू को इस बात का पता लगा तो उसने अपनी प्रतिभा एवं धैर्य के साथ अपनी सेना को एकत्रित किया तथा युद्ध का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। किंतु हेमू की सेना के हाथ से तोपखाना छिन चुका था। इस प्रमुख हथियार के हाथ से निकल जाने के कारण ही हेमू को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी। 5 नवंबर, 1556 ई. के इस ऐतिहासिक युद्ध का श्रीगणेश अफगान एवं मुगलों की प्रतिष्ठा का प्रतीक था।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस ऐतिहासिक युद्ध में अकबर की सेना की तुलना में हेमू की सैनिक संख्या कई गुना अधिक थी। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

भारतीय सेनापति हेमू की सेना में कुल सैनिक 1,00,000 थे। जिसमें 30,000 राजपूत सैनिक तथा शेष अफगान पैदल तथा अश्वारोही सैनिक थे। इसी के साथ ही लगभग 1,500 हाथी भी थे, जिन पर सवार योद्धा धनुर्धारी तथा बंदूकधारी थे। हाथी भी सुरक्षा कवच धारण किए हुए थे।

मुगल सेनापति अकबर की सेना में कुल 20,000 अश्वारोही सैनिक ही थे। साथ ही अफगानों द्वारा विजित मैदानी तोपें भी थीं।

अकबर ने अपनी सेना का समरतांत्रिक फैलाव इस प्रकार से किया था—

दायाँ भाग	सिकंदर खाँ उजबेक के नेतृत्व में,
बायाँ भाग	अब्दुल्ला खाँ उजबेक के नेतृत्व में,
मध्य भाग	अली कुली खाँ के नेतृत्व में,
अग्रिम भाग	हुसैन कुली खाँ तथा शाहकुली महाराम के नेतृत्व में (इसके साथ बैरम खाँ की तुर्की टुकड़ी भी थी)।

हेमू ने अपनी सेना का समरतांत्रिक फैलाव इस प्रकार से किया था—

दायाँ भाग	शाही खाँ काकर के नेतृत्व में,
बायाँ भाग	राम्या के नेतृत्व में,
मध्य भाग	स्वयं (हेमू) के नेतृत्व में।

वास्तविक संघर्ष

5 नवंबर को हेमू ने आक्रमण की पहल कर दी। सर्वप्रथम अपनी हाथी सेना के द्वारा मुगलों की सेना के दोनों पार्श्वों पर हमला बोल दिया, जिससे मुगल सेना एक बार बुरी तरह भयभीत हो गई और स्थिति को ध्यान में रखते हुए बड़े धैर्यपूर्वक तेजी के साथ पीछे हट गई; ताकि हाथियों के हमले से बचाव किया जा सके। अकबर की सेना की गतिशील अश्वारोही सेना ने सामने से भिड़ने के बजाय दोनों पार्श्वों पर अपनी गतिविधि तेज कर दी तथा अपने कुशल धनुर्धारी अश्वारोही सेना के द्वारा हेमू के सैनिकों को घायल करना ही शुरू नहीं किया; बल्कि उन्हें बुरी तरह से परेशान भी कर दिया। जब हेमू की सेना इधर-उधर हटने लगी तो मुगल सैनिकों ने उनके पार्श्व से तथा पीछे से घुसकर अपना आक्रमण जारी रखा। मुगल अश्वारोही धनुर्धारियों ने अपने तेज तीरों से हेमू की सेना के हाथियों के पैरों तथा महावतों को हताहत करना शुरू कर दिया। मुगल सैनिकों की इस कार्यवाही से हेमू के सैनिक तंग होने लगे।

मुगल सेना के मध्य भाग ने अपनी प्रतिरक्षात्मक स्थिति बना रखी थी, जिसके कारण हेमू की सेना के ऊपर दूर से ही धनुष-बाण का प्रयोग करते रहे तथा हेमू की सेना के हाथी व अश्वारोही भी मुगल सेना के मध्य भाग पर आक्रमण नहीं कर पा रहे थे। इसी दौरान मुगल सेनापति अली कुली खाँ ने अपने तोपखाने को मध्य भाग के मोरचे से निकालकर हेमू की सेना के मध्य भाग में पीछे से आक्रमण कर दिया। इसी समय हेमू अपनी सेना का निरीक्षण कर रहा था। जब उसे इस आक्रमण की जानकारी मिली तो उसने अपनी जोरदार सैन्य-शक्ति के साथ मुगल सेना के इस आक्रमण को विफल करने का प्रयास किया।

इस जोरदार संघर्ष के दौरान हेमू ने अपने हाथियों एवं अश्वारोही सेना द्वारा मुगल सेना के मध्य भाग को कुचलने का जोरदार प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप उसे बहुत हानि उठानी पड़ी; क्योंकि मुगलों की तोपों के फायर से हाथी भड़क गए तथा सेना भी अपनी शक्ति का सही प्रदर्शन नहीं कर पा रही थी। इसी समय हेमू की सेना के दाएँ भाग का नेतृत्व कर रहे शाही खाँ काकर तथा सहयोगी भगवानदास मौत का शिकार हो गए; जिससे हेमू को भारी धक्का लगा; परंतु अपने धैर्य एवं साहस का परिचय देते हुए युद्ध जारी रखा। दुर्भाग्यवश इसी समय एक तीर तेजी के साथ हेमू की आँख में आ लगा, जिससे वह बुरी तरह लहूलुहान हो गया। इस परिस्थिति में भी उसने वीरता एवं बलिदान की भावना से तीर निकालकर एक साफे के द्वारा आँख पर पट्टी बाँध ली तथा आक्रमण जारी रखा। किंतु घाव गहरा होने के कारण वह मूर्च्छित होकर अचानक हौदे पर गिर पड़ा। जैसे ही हेमू के गिरने की सूचना उसके सैनिकों को मिली, वे बुरी तरह से भयभीत होकर युद्धक्षेत्र से भाग खड़े हुए। इस प्रकार अकबर को एक निर्णयात्मक सफलता प्राप्त हो गई।

मुगल सैनिक, जिस हाथी पर हेमू मूर्च्छित था, उसको पकड़कर अकबर के समक्ष

ले गए तथा अपनी इस सफलता का प्रदर्शन किया। इसी समय क्रूर मुगल सेनापति बैरम खाँ ने मूर्च्छित अवस्था में ही हेमू का सिर काटकर अलग कर दिया। हेमू के सिर को तो काबुल भेजा गया; लेकिन उसके शव को दिल्ली के प्रमुख द्वार पर लटका दिया गया, जिससे अन्य राज्य-विरोधी शक्तियों को सिर उठाने का साहस न हो सके। इस प्रकार पानीपत के दूसरे युद्ध ने भारत में अकबर के पैर हमेशा के लिए जमा दिए।

परिणाम

इस युद्ध में हेमू की सेना के लगभग 10,000 से अधिक सैनिक मौत के घाट उतार दिए गए तथा लगभग 1,500 हाथियों को पकड़कर मुगलों ने अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार भारत के भाग्य का निर्णय दूसरी बार मुगलों के पक्ष में गया। इतिहासकार आर. सी. मजूमदार ने इस संदर्भ में लिखा है—"हेमू की मृत्यु हो जाने से भारत में हिंदू राज्य अथवा पठान राज्य स्थापित होने की संभावना बिलकुल समाप्त हो गई और भारत-निर्माण-कार्य मुगलों के सुपुर्द हो गया।"

इस सफलता के तुरंत बाद ही अकबर ने दिल्ली तथा आगरा को अपने अधिकार में कर लिया और अपने सेनापतियों को भेजकर हेमू की संपत्ति को जब्त करने का आदेश दिया तथा मुगलों का हेमू के नगर मेवात पर भी अधिकार हो गया। सूरवंश के अन्य सरदारों का दमन करके उन्हें अपने अधीन कर लिया तथा विशाल राज्य बनाने की ओर निरंतर कदम बढ़ाता रहा।

सैन्य शिक्षाएँ

इस ऐतिहासिक एवं निर्णयात्मक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. युद्ध में वही पक्ष सदैव सफल होता है, जो पक्ष अपने लक्ष्य के निर्धारण के अनुरूप उसका निर्वाह करता है। इस सिद्धांत की अवहेलना करने से पराजय के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं, जैसाकि हेमू ने शत्रु की योजना का मूल्यांकन किए बिना ही यह युद्ध लड़ा और अपनी तोपों को आरंभ में ही खो दिया था, जो उसकी पराजय का प्रमुख कारण बना। शत्रु ने इन्हीं की तोपों को इन्हीं के विरुद्ध प्रयोग किया।
2. किसी भी युद्ध में सफलता के लिए आवश्यक है कि यौद्धिक कार्यवाही एक नियोजित ढंग से की जानी चाहिए, अन्यथा पराजय के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं, जैसाकि इस युद्ध में विशाल सैन्य-शक्ति रखते हुए भी हेमू अकबर की सेना की कार्यवाही के बाद कार्यवाही करता रहा, जिससे उसे पराजित होना पड़ा।
3. युद्ध में गतिशीलता का सिद्धांत भी सफलता का प्रमुख सूचक माना जाता

है, जैसाकि इस युद्ध में अकबर की गतिशील अश्वारोही सेना ने तेजी के साथ अपनी संरचना में परिवर्तन करके हेमू की सेना के दाएँ, बाएँ तथा मध्य के पृष्ठ भाग पर आक्रमण करके उसको केवल परेशान ही नहीं किया, बल्कि विशाल सैन्य-शक्ति पर निर्णयात्मक सफलता भी प्राप्त कर ली।

4. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में सफलता पाने के लिए विशाल सैन्य-शक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं होती है, बल्कि श्रेष्ठ., सीमित एवं नियोजित सैनिक कार्यवाही के द्वारा कम सैन्य-शक्ति से भी बड़ी-से-बड़ी सफलता प्राप्त की जा सकती है।
5. यद्यपि हेमू को लगभग 22 लड़ाइयों का अनुभव प्राप्त था, परंतु उसकी एक छोटी-सी भूल के कारण ही उसे युद्ध में सफलता न प्राप्त हो सकी। यदि उसने अपने समस्त तोपखाने को पहले युद्ध में न खोया होता तो उसकी सफलता सुनिश्चित ही थी। अकबर की सेना को इस भूल का पूरा लाभ प्राप्त हुआ और अंततः सफल भी हुए।
6. युद्धों में भाग्य का भाग बहुत हद तक अपनी भूमिका अदा करता है, जैसाकि इस युद्ध में यदि आकस्मिक तीर हेमू की आँख में न लगा होता तो शायद परिस्थितियाँ कुछ और ही होतीं। क्योंकि अभी भी हेमू की सेना में युद्ध करने की पूरी शक्ति थी तथा वह आसानी के साथ मुगल सेना पर अधिकार जमा लेते; परंतु भाग्य को कौन जानता था?
7. मुगल सेना की सफलता का एक प्रमुख कारण उनकी गुणात्मक श्रेष्ठता भी थी, जिसके कारण ही उसने हेमू के संख्या में अधिक सैनिकों को इस ऐतिहासिक युद्ध में पराजित किया।
8. हेमू की पराजय का एक मुख्य कारण उसकी गुप्तचर व्यवस्था का दोषपूर्ण होना भी था, क्योंकि शत्रु की योजना को समझे बिना ही उसने अपने समस्त तोपखाने को अग्रिम दल के साथ भेजकर महान् भूल की थी।

तालीकोटा का युद्ध
(1565 ई.)

कृष्णदेव की मृत्यु (1529) के पश्चात् विजयनगर के हिंदू साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया। उसके दुर्बल उत्तराधिकारी राज्य को सुचारु रूप से संचालित कर पाने में सक्षम नहीं थे। षड्यंत्रों व युद्धों का कुछ ऐसा चक्कर चला कि आगामी कुछ ही वर्षों में कई प्रदेश साम्राज्य से अलग हो गए। इन्हीं परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर के मुसलमान शासकों ने एकत्रित होकर विजयनगर साम्राज्य को हड़पने की योजना बना ली। यही योजना तालीकोटा के युद्ध के रूप में 5 जनवरी, 1565 में परिणत हो गई। इस भयानक युद्ध में मुसलमानों की विजय हुई तथा उन्हें अपार धन और बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई। इस युद्ध में विजयनगर का शासक रामराय अपने अनेक सेनापतियों सहित मारा गया। यह युद्ध दक्षिण भारत का सर्वाधिक निर्णायक युद्ध माना जाता है, क्योंकि इस युद्ध से हिंदू साम्राज्य का पूर्ण पतन हो गया।

इस युद्ध के संदर्भ में डॉ. आर. सी. मजूमदार ने लिखा है, "तालीकोटा का युद्ध भारतीय इतिहास के निर्णायक युद्धों में से एक था। इसके परिणामस्वरूप दक्षिण में हिंदू शक्ति के पुनः स्थापित होने की संभावना आगामी एक शताब्दियों के लिए समाप्त हो गई। सत्रहवीं शताब्दी में जब मराठों का उत्थान हुआ तो हिंदू शक्ति पुनः दक्षिण में स्थापित हुई।"

जिस समय विजयनगर साम्राज्य का शासन रामराय के हाथों में था, सेना के संगठन, प्रशिक्षण, शस्त्रास्त्र तथा शक्ति आदि तत्त्वों की अवहेलना हो रही थी। विजयनगर साम्राज्य के सैनिकों में जहाँ अधिकांश सैनिक पैदल थे; वहाँ उनके शस्त्र भी निम्न स्तर के थे। अश्वारोही सेना के घोड़े प्रायः देशी नस्ल के टट्टू ही थे, जिससे उनमें गतिशीलता का पूर्ण अभाव था। इसके विपरीत विरोधी सेना, अर्थात् बहमनी सेनापतियों के पास अरबी घोड़े होते थे। उन पर सवार सैनिक बख्तरबंद तथा संयुक्त धनुष (सींग तथा लोहे की पत्ती द्वारा निर्मित) से युक्त होते थे। विजयनगर साम्राज्य के आग्नेय हथियारों का संचालन पुर्तगालियों, ईसाइयों के द्वारा किया गया था, जिसके परिणाम भी अच्छे नहीं निकले। इसी के साथ ही सम्राट् रामराय ने मुसलमान अश्वारोही सेना का एक विशेष दल भी संगठित किया, जिसमें लालची मुसलमानों को भरती किया गया था, जो अपने सुल्तानों से अधिक वेतन पाने के लालच में भरती हुए थे। परंतु ये सैनिक सुल्तानों की तूरानी-ईरानी अश्वारोही सैनिकों की तुलना में निम्न स्तर के थे।

विजयनगर की सेना का कार्यभार मुख्य रूप से तीन वयोवृद्ध सेनापतियों द्वारा सँभाला जा रहा था, जिसमें से मध्य या केंद्रीय कमान का नेतृत्व स्वयं रामराय, दाएँ पार्श्व का नेतृत्व वेंकटाद्री तथा बाएँ पार्श्व का नेतृत्व तीरूमल ने सँभाला था। ये तीनों ही सेनानायक 60 वर्ष से अधिक उम्र के थे, जबकि रामराय की उम्र 80 वर्ष से भी अधिक थी। यही कारण था कि इन सेनानायकों में जहाँ स्फूर्ति की कमी थी, वहाँ शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता का भी अभाव था। युद्ध में तेजी के साथ बदलती हुई परिस्थितियों के लिए ये सक्षम नहीं थे।

दूसरी ओर बहमनी सेनापतियों ने अहमदनगर के इखलाल खाँ, गोलकुंडा के मुस्तफा खाँ तथा बीजापुर के किशावर खाँ प्रमुख थे। निजामशाह अपनी सेना की केंद्रीय कमान का संचालक था। उसने अपनी तोपों का संचालन चेलेबी रूमी खाँ को सौंप रखा था, जो अपने समय का सर्वाधिक सुप्रसिद्ध तोपची था। दूसरी ओर हिंदू साम्राज्य में पैदल सेना ही प्रमुख सेना थी।
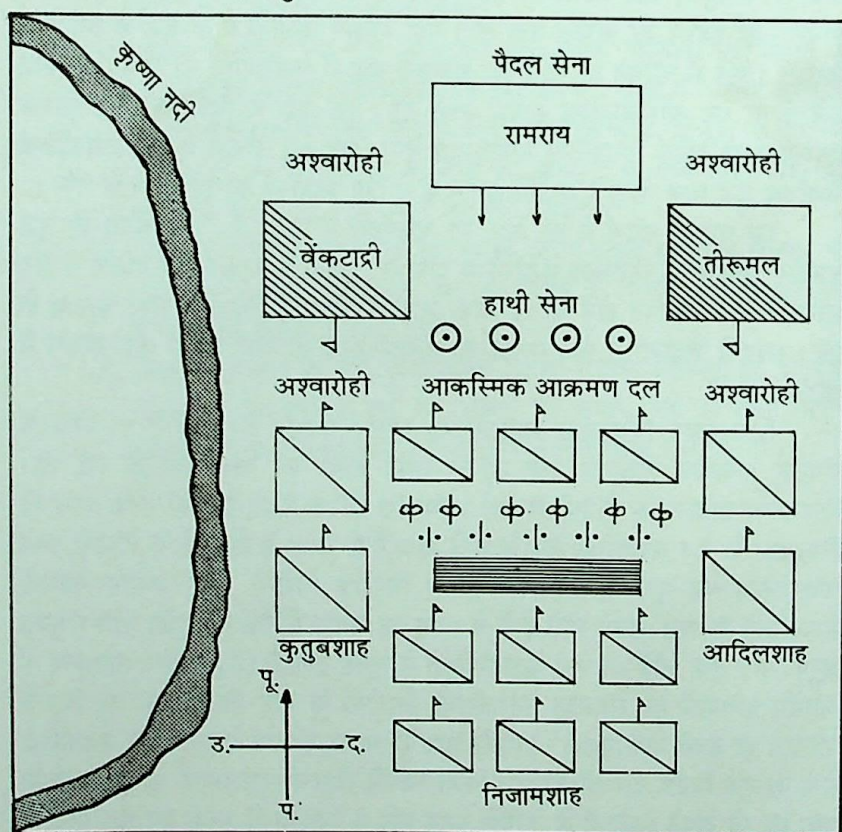
तालीकोटा का संग्राम—1565 ई.

इस युद्ध के आरंभ होने के पूर्व बहमनी सेना के मित्र पक्ष बीजापुर के बाहर मैदान में एकत्रित हुए तथा एक योजना निर्धारित करके, 24 दिसंबर, 1564 को कृष्णा नदी पार करके विजयनगर पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े, परंतु जब विजयनगर के शासक रामराय को इस बात का पता लगा तो उसने नदी पार करने से रोकने हेतु दक्षिणी तट पर खाइयाँ खुदवाकर बड़ी तोपें मोरचे पर लगा दीं। परंतु बहमनी सुल्तानों ने इस मोरचे-बंदी के विपरीत चुपके-चुपके नदी पार करने का रास्ता ढूँढ़ निकाला, जैसाकि सिकंदर की सेना ने झेलम के युद्ध में किया था तथा विजयनगर की सेना को धोखे में रखा।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस युद्ध में बहमनी सुल्तानों की तुलना में विजयनगर साम्राज्य के शासकों की सैनिक संख्या कहीं अधिक थी। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

विजयनगर के राजा रामराय के अधीन लगभग 2,00,000 सैनिक रहे होंगे; किंतु कुछ इतिहासकारों ने इसकी संख्या 10,00,000 तक बताई, जो अतिशयोक्ति-सी लगती है। सैनिक संख्या इस प्रकार रही—

पैदल सैनिक—1,00,000,
अश्वारोही सैनिक—60,000,
हाथी सेना—1,000,
मुसलिम पेशेवर अश्वारोही धनुर्धारी सैनिक—2,000।

बहमनी राज्यों की संयुक्त सेना में विजयनगर साम्राज्य की सेना की तुलना में बहुत कम सैनिक थे, किंतु श्रेष्ठ हथियारों से सज्जित एवं कुशल अश्वारोही धनुर्धारी अवश्य थे। सैनिक संख्या इस प्रकार थी—

पैदल सैनिक—3,000,
अश्वारोही सैनिक—50,000,
खुरासानी तथा तुर्की अश्वारोही सैनिक—8,000।

इसके साथ ही दस्ती बंदूकें तथा बड़ी तोपें भी थीं, जिनकी संख्या भी लगभग 600 थी। सामान ढोने के लिए हाथी भी थे।

कृष्णा नदी के दक्षिण की ओर दोनों सेनाओं ने पूर्व व पश्चिम की दिशा में अपनी मोरचेबंदी कर ली थी। विजयनगर साम्राज्य की सेना का सैन्य फैलाव इस प्रकार था—

मध्य या केंद्रीय कमान—रामराय के नेतृत्व में,
दाईं ओर की कमान—वेंकटाद्री के नेतृत्व में,
बाईं ओर की कमान—तीरूमल के नेतृत्व में,
मुसलिम सेना का सैन्य फैलाव इस प्रकार किया गया था—
मध्य या केंद्रीय कमान—निजामशाह के नेतृत्व में,

दाईं ओर की कमान—आदिलशाह के नेतृत्व में,
बाईं ओर की कमान—कुतुबशाह के नेतृत्व में,
मध्य भाग के सामने—रूमी खाँ के नेतृत्व में तोपखाना,
मध्य भाग में सबसे आगे—आकस्मिक आक्रमण के लिए तैनात अश्वारोही सैनिक।

वास्तविक संघर्ष

5 जनवरी, 1565 को दोपहर के समय तालीकोटा के मैदान में विजयनगर साम्राज्य के दाएँ पार्श्व तथा बहमनी राज्यों के बाएँ पार्श्व के मध्य युद्ध का आरंभ हुआ, जो दोनों ही पक्षों की सबसे कमजोर सेनाएँ थीं। इस संघर्ष में विजयनगर साम्राज्य के वेंकटाद्री को कुतुबशाह की सेना को पीछे खदेड़ने का एक अच्छा अवसर मिल गया; फिर भी उसने पूरी शक्ति के साथ शत्रु का पीछा करने का प्रयास नहीं किया, जिसके परिणामस्वरूप थोड़ी दूर के बाद तुर्की सैनिक तेजी के साथ पलट गए और अंत तक मैदान में शत्रु का सामना करते रहे।

इसी के साथ आदिलशाह के नेतृत्व में बहमनी सेना ने तीरूमल के नेतृत्ववाली विजयनगर की सेना पर भीषण आक्रमण आरंभ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप तीरूमल और उसका पुत्र रघुनाथ इस युद्ध में बुरी तरह से घायल हो गए तथा तीरूमल की आँख में गहरा तीर लगने से उसे युद्ध का मैदान मजबूर होकर छोड़ना पड़ गया। अंततः दोनों की ही मृत्यु हो गई। इस संघर्ष में वीर तीरूमल ने आरंभ में बहमनी सेना में एक बार तो अपना आतंक फैला दिया, परंतु जब शत्रु की सेना ने 'कजक' समरतंत्र अपनाया, जिसमें अश्वारोही सैनिक भागते हुए तीर चलाते थे, तो स्थिति एकदम बदल गई और विजयनगर की सेना का बायाँ पार्श्व अस्त-व्यस्त हो गया। इसी समय आदिलशाह ने अपनी सेना के 5,000 अश्वारोही सैनिकों को किशावर खाँ के नेतृत्व में अपने मध्य भाग (निजामशाह) की सहायता के लिए भेज दिया।

जिस समय दाएँ एवं बाएँ पार्श्व आपस में लड़ रहे थे; दोनों ही पक्षों के मध्य भाग युद्ध के रुख का इंतजार कर रहे थे। जिस समय किशावर खाँ के नेतृत्व में दाएँ पार्श्व के सैनिक सहायता के लिए आए, उसी समय हुसैन निजामशाह ने अपने अग्र भाग की आकस्मिक आक्रमण के लिए तैनात अश्वारोही सेना के द्वारा विजयनगर की सेना के मध्य भाग पर हमला कर दिया। कुछ देर मुठभेड़ होने के पश्चात् ये अश्वारोही सैनिक अपनी योजनानुसार पीछे हट गए, जिससे विजयनगर की सेना के सैनिक जोश में आकर आगे की ओर बढ़ आए तथा शत्रु की तोपों के सामने आते ही बहमनी सेना के तोपखाने ने आग उगलनी शुरू कर दी, जिसके प्रहार से विजयनगर की सेना बुरी तरह से नष्ट हो गई। तोपों के आगेवाले मुसलिम अश्वारोही सैनिक तोपों के बीच में छोड़े गए रास्तों से तोपों के पीछे आ गए थे।

जब विजयनगर की सेना का मध्य भाग बिखरा तो उसकी सेना लड़खड़ा गई, परंतु विजयनगर के शासक रामराय (जो अत्यंत बुजुर्ग था और हाथी या घोड़े पर सवार भी नहीं हो सकता था) ने पालकी में बैठकर चारों ओर से अपने सैनिकों को एकत्रित किया तथा अपने बलिदानी तथा ओजस्वी विचारों से निराश बिखरी हुई सेना में पुनः साहस एवं बलिदान की भावना जाग्रत कर दी। अतः विजयनगर साम्राज्य के समस्त सैनिक पुनः तेजी के साथ शत्रु का सामना करने के लिए आगे बढ़े; परंतु जैसे ही यह विशाल सेना तोपों के सम्मुख आई, बहमनी तोपों ने भीषण बमबारी करके कहर ढा दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि विजयनगर साम्राज्य की सेना बुरी तरह से बिखर गई तथा कुचल दी गई। इसी दौरान आकस्मिक आक्रमण के लिए तैनात अश्वारोही सैनिक, जो मध्य भाग में आक्रामक पहल कर चुके थे, तोपों की आड़ से बाहर आ गए और बची हुई विजयनगर की सेना को अपने तेज तीरों के प्रहार से कुचल दिया तथा विजयनगर सम्राट् रामराय को भी मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार तालीकोटा के युद्ध का अंत हो गया।

इस भीषण युद्ध में विजयनगर साम्राज्य के लगभग 1,00,000 सैनिक हताहत हुए। इसके साथ ही विजयनगर साम्राज्य का अंत हो गया तथा वहाँ बहमनी सल्तनत का आधिपत्य हो गया। इस युद्ध को दक्षिण भारत का सर्वाधिक निर्णायक युद्ध माना जाता है। निर्णायक युद्ध में बहमनी सुल्तानों की सफलता का प्रमुख कारण उनकी श्रेष्ठ अश्वारोही सेना तथा सहयोग व कुशल नेतृत्व ही था, जिससे उन्होंने कम-से-कम संख्या द्वारा विशाल सैन्य-शक्ति पर विजय हासिल की।

सैन्य शिक्षाएँ

इस निर्णायक तथा ऐतिहासिक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में वही पक्ष सफल होता है, जो एक निश्चित लक्ष्य के आधार पर कार्यवाही करता है, जैसे संयुक्त बहमनी सेना ने योजना के अनुसार विजयनगर साम्राज्य की सेना पर कार्यवाही की और अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की। अपनी योजना के अनुसार ही उसने विजयनगर की सेना को लड़ने के लिए जहाँ मजबूर किया, वहाँ धोखा देकर आकस्मिक मुठभेड़ तथा मध्य भाग की तोपों द्वारा भीषण फायर करके उसको नष्ट कर दिया।
2. आकस्मिक आक्रमण की कार्यवाही भी सफलता की सूचक होती है, जैसे इस युद्ध में बहमनी सेना के दाएँ तथा बाएँ पार्श्व ने विजयनगर की सेना के समक्ष पीछे हटकर तथा एकदम स्थिति बदलकर आकस्मिक आक्रमण से उसको चकित कर दिया और सफलता प्राप्त कर ली।

3. मुसलिम सेना के विभिन्न अंगों; जैसे—अश्वारोही सेना के तोपखाने में आपसी सहयोग एवं समन्वय था, जिसके कारण एक निर्णायक सफलता प्राप्त हो सकी। आकस्मिक आक्रमण के लिए तैनात अश्वारोही सेना आक्रामक पहल करके वापस अपने तोपखाने के पीछे आ गई। जब विजयनगर की सेना आगे बढ़ी तो तोपखाने ने उसे बुरी तरह नष्ट कर दिया। इसी प्रकार आदिलशाह की सेना की एक टुकड़ी ने मध्य भाग को सहयोग प्रदान करके इस सिद्धांत का सही पालन किया।
4. इस युद्ध में बहमनी सेना ने शक्ति की मितव्ययता के सिद्धांत का सही प्रयोग किया, अर्थात् कम-से-कम शक्ति द्वारा अधिक-से-अधिक कार्यवाही करके एक महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। इसी सिद्धांत के आधार पर वह अपनी सेनाओं का विभाजन करके विजयनगर की विशाल सेना को पराजित करने में सफल हुई।
5. इस युद्ध में बहमनी सेनाओं द्वारा युद्ध के प्रमुख सिद्धांत—गतिशीलता—का सही अनुपालन किया गया। इसमें बहमनी अश्वारोही सेना ने तेजी के साथ अपनी व्यूह-रचना में परिवर्तन करके विजयनगर की सेना को अपनी योजना के अनुसार लड़ने के लिए बाध्य कर दिया। यही उसकी सफलता का सूचक सिद्ध हुआ।
6. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि किसी भी अभियान में सफल होने के लिए आवश्यक नहीं है कि शत्रु के मुकाबले बराबर की सेनाएँ हों। बहमनी सेना विजयनगर सेना की तुलना में बहुत कम थी; परंतु श्रेष्ठ, सीमित एवं नियोजित सैनिक कार्यवाही के द्वारा बड़ी-से-बड़ी सफलता प्राप्त कर ली।
7. जो पक्ष शत्रु से अपनी योजनाएँ छिपाकर कार्यवाही करता है उसे बहुत हद तक सफलता मिलती है। इस युद्ध में बहमनी सेना ने मध्य भाग में सबसे आगे हरावल अश्वारोही सेना खड़ी करके अपनी तोपों को छिपाकर रखा तथा आकस्मिक कार्यवाही से अश्वारोही सेना तोपों के पीछे आ गई और विजयनगर की सेना स्वयं ही तोपों के ठीक सामने आकर जाल में फँस गई और पराजित हुई।
8. श्रेष्ठ हथियार भी सफलता के सच्चे सहयोगी होते हैं, जैसे इस युद्ध में बहमनी सेना के धनुष-बाण, बंदूकें तथा तोपें विजयनगर की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ थीं। इसी कारण बहमनी सेना को सफलता प्राप्त हुई। जनरल फुलर ने इस संदर्भ में ठीक ही लिखा है, "युद्धों में 99% सफलता श्रेष्ठ हथियारों पर ही निर्भर करती है। अन्य तत्त्वों का महत्त्व केवल 1% ही होता है।"

9. जो राजा या सेनापति शत्रु की गतिविधियों के प्रति उदासीन रहता है वह हमेशा हानि उठाता है, जैसे इस युद्ध में बहमनी सेना ने कृष्णा नदी पार कर ली, परंतु विजयनगर की सेना को इस बात का सही अनुमान लगा ही नहीं, अंततः इसी भूल से उन्हें यह युद्ध ही नहीं खोना पड़ा; बल्कि विजयनगर साम्राज्य से भी हाथ धोना पड़ा।
10. श्रेष्ठ नेतृत्व भी सेना की सफलता का एक ठोस आधार होता है, क्योंकि कुशल सेनापति के द्वारा ही युद्ध की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार सैनिकों को विन्यस्त करने की क्षमता का पता लगता है; जैसे इस युद्ध में यह क्षमता बहमनी सेनापतियों में थी, जबकि विजयनगर की सेना के सेनापतियों में इसका अभाव था और यही उनकी पराजय का प्रमुख कारण भी बना।

हल्दीघाटी का युद्ध
(1576 ई.)

यह प्रसिद्ध युद्ध मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह तथा मुगल बादशाह अकबर के मध्य 1576 ई. में लड़ा गया। यह युद्ध 'हल्दीघाटी का युद्ध' के नाम से विख्यात है। पानीपत के द्वितीय युद्ध में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् अकबर ने अपने साम्राज्य-विस्तार के लिए प्रयास आरंभ कर दिए, जिसके परिणामस्वरूप उसने अपनी उदार नीति, कूटनीति, धार्मिक भावना, आर्थिक आधार तथा सैनिक शक्ति का खुलकर प्रयोग किया। अधिकांश शासकों व सरदारों ने अकबर की उदार नीति से प्रभावित होकर अपने आप को उसके अधीन कर दिया। कुछ सरदारों को सैनिक शक्ति तथा अन्य नीतियों के आधार पर अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा। सिसोदिया कुल के प्रमुख तथा राजपूतों में सर्वोच्च सम्मान प्राप्त मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह ने अपना स्वतंत्र शासन बनाए रखा तथा अकबर की अधीनता को अस्वीकार कर दिया। यही इस युद्ध के होने का प्रमुख कारण बना।

अकबर ने 1568 में चित्तौड़गढ़ जीता। इस अभियान में राजपूत सेनानायक जयमल्ल और पन्ना वीरगति को प्राप्त हुए। महाराणा उदयसिंह, प्रताप के पिता, पहले ही अरावली की पहाड़ियों में चले गए थे। जिस समय अकबर ने राजपूतों के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर चित्तौड़गढ़ पर अधिकार जमाया, उस समय उसने राणा प्रताप के राज्य के उपजाऊ तथा समृद्धिशाली पूर्वी प्रदेश भी अपने अधीन कर लिये। स्थिति की गंभीरता को समझते हुए महाराणा प्रताप ने अपने राज्य की पश्चिमी पहाड़ियों में स्थित कुंभलगढ़ के किले में शरण लेकर अपने अधिकार के लिए लड़ने का संकल्प लिया। इसके लिए उन्होंने उदयपुर से 16 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित गोगुंदनगर में अपना सैनिक केंद्र स्थापित किया। यह स्थान प्रतिरक्षात्मक दृष्टिकोण से उत्तम तो था ही, अकबर के लिए सबसे बड़ा अवरोधक भी था; क्योंकि अकबर गुजरात की ओर बढ़ना चाहता था और यह स्थान उसके मार्ग में था। अतः अकबर ने इस स्थिति से निबटने के लिए बड़ी कूटनीतिक प्रतिभा से काम लिया और महाराणा प्रताप के विरुद्ध राजपूत राजा मानसिंह को एक विशाल सेना का सेनापति बनाकर भेजा। राजपूत राजा मानसिंह अकबर की अधीनता पहले ही स्वीकार कर चुका था। उसका राणा प्रतापसिंह के साथ वंशानुगत वैर था। अतः इस वैर को भुनाने के लिए उसने जून 1576 ई. में हल्दीघाटी को चुना।

मुगल सेना के साथ मानसिंह ने मांडलगढ़ के सैनिक अड्डे पर पड़ाव डाला तथा सेना सहित गोगुंदनगर से 14 मील उत्तर में खाम्नौर गाँव की ओर बढ़ा। यह गाँव दोनों ओर से अरावली पर्वत शृंखला के मध्य स्थित था, जिसे हल्दीघाटी का क्षेत्र कहा जाता है। जब राणा प्रताप को मानसिंह के सेना सहित बढ़ने का समाचार मिला तो उन्होंने मुकाबला करने के लिए इस क्षेत्र के मैदान में 18 जून, 1576 ई. को अपनी सेना को व्यूहबद्ध कर दिया।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस निर्णायक युद्ध में उभयपक्षीय सेनाएँ इस प्रकार थीं—

महाराणा प्रतापसिंह की सेना मुगल सेना की तुलना में संख्या की दृष्टि से कम अवश्य थी; परंतु उसमें साहस एवं बलिदान की भावना अवश्य ही सशक्त थी। संख्या के आधार पर राणा प्रताप की सेना इस प्रकार थी—

अश्वारोही सैनिक—3,000,

पैदल सैनिक—400।

कुछ हाथी सेना।

अश्वारोही सेना में राजपूत तथा अफगानी सैनिकों की प्रमुखता थी, जबकि पैदल सेना में धनुर्धारी भील जाति के अधिक सैनिक थे, जो केवल आड़ की लड़ाई के अभ्यस्त थे, न कि खुली एवं निर्णायक लड़ाई के।

मुगल सेना में जहाँ अधिक सैनिक संख्या थी, वहाँ उसके हथियार भी राजपूत सेना की तुलना में कहीं अधिक व श्रेष्ठ थे। कुल सैनिक संख्या 10,000 थी।

इसमें 5,000 मुगल, 4,000 कछवाहा राजपूत तथा 1,000 हिंदू सैनिक सम्मिलित थे। इसमें हाथी सेना भी थी, परंतु निश्चित संख्या का उल्लेख नहीं मिलता। मुगल सेना के पास दस्ती बंदूकें तथा तोपें भी थीं।

राजपूत सेना के अगले भाग का नेतृत्व हाकिम खाँ सूर, देदिया के भीमसिंह, चित्तौड़गढ़ के शहीद जयमल्ल के पुत्र रामदास राठौर, चुंदौत आदि के द्वारा किया गया, जिसमें 800 अश्वारोही अफगानी तथा राजपूत सैनिक संगठित थे। दाएँ पार्श्व का नेतृत्व ग्वालियर के पूर्व नरेश रामशाह तँवर द्वारा किया गया, जिनके अधीन 500 अश्वारोही सैनिक थे। उनकी सहायता के लिए इस पूर्व नरेश के तीन बेटे तथा मंत्री भामाशाह अपने भाई ताराचंद के साथ तैनात थे। बाएँ बाजू का नेतृत्व मन्नासिंह तथा झालासिंह के द्वारा किया गया, जिनके अधीन लगभग 400 सैनिक थे। मध्य भाग का नेतृत्व स्वयं महाराणा प्रताप के द्वारा किया गया, जिनके अधीन लगभग 1,300 कुशल अश्वारोही राजपूत थे। पृष्ठ भाग में हाथी सेना व चारण के साथ ही लगभग 400 भील धनुर्धारी तैनात थे।

मुगल सेना में सबसे आगे बरहा के प्रसिद्ध सेनानी सैयद हशीम के नेतृत्व में गतिशील 85 अश्वारोही योद्धा तैनात थे। इसके बाद हरावल था जिसमें राजपूत तथा

मुगल सैनिक थे, जिनका नेतृत्व जगन्नाथ तथा ख्वाजा बख्शी अली आसफ खाँ कर रहे थे। अग्रिम आरक्षी सेना (इल्तमिश) के अंतर्गत अश्वारोही दल का नेतृत्व माधवसिंह कछवाहा कर रहा था। करावल तथा हरावल सैन्य दलों के बीच तोपों तथा बंदूकों को लगाया गया था। मध्य भाग का नेतृत्व स्वयं मानसिंह कर रहा था। मुगल सेना का सबसे शक्तिशाली दल दायाँ पार्श्व था, जिसका नेतृत्व सैयद खाँ के द्वारा किया जा रहा था। बायाँ पार्श्व मुल्ला गाजी खाँ तथा लोकरन के नेतृत्व में था तथा पृष्ठ भाग मेहतर खाँ के नेतृत्व में था। मुख्य सैन्य दल के पीछे बाईं ओर कुछ हाथी भी थे।

इस प्रकार मुगलों की तुलना में राणा प्रताप की सैनिक संख्या बहुत कम थी
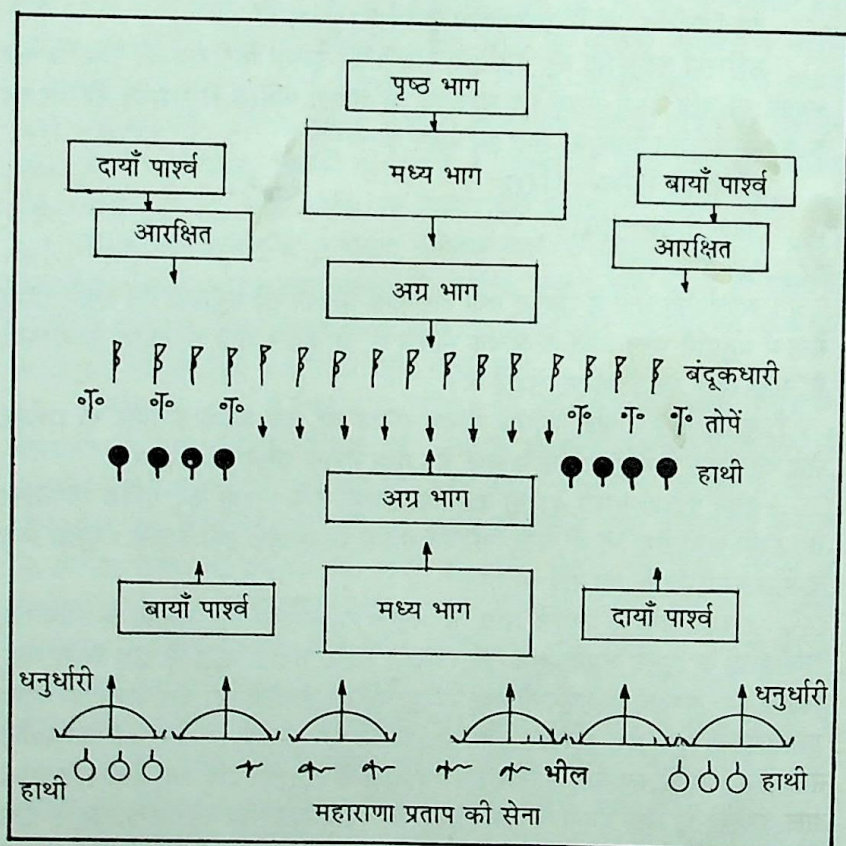
हल्दीघाटी का संग्राम, 1576 ई.

जिससे वे आरक्षित सेना के रूप में अपनी सेना नहीं रख सके और एक साथ ही उन्हें अपनी समस्त सेना को युद्ध में लगाना पड़ा।

वास्तविक संघर्ष

18 जून को प्रातः लगभग 9 बजे यह संग्राम शुरू हुआ। सबसे पहले घाटी के पश्चिमी मुहाने से हाकिम खाँ के नेतृत्व में अफगानी तथा रामदास राठौर के नेतृत्व में राजपूत सैनिक बड़ी तेज़ी के साथ मुगलों की धावक सेना पर टूट पड़े, जिसके कारण मुगलों के झड़प करनेवाले 85 अश्वारोही योद्धाओं का दल पीछे हटने पर मजबूर हो गया—जहाँ पर उनका अग्रिम दल (हरावल) तैनात था। जब अफगानों एवं राजपूतों का संयुक्त दल मुगलों के हरावल की ओर पहुँचा तो राजपूतों के प्रबल आक्रमण से मुगल सेना के पैर भी लड़खड़ाने लगे तथा मुगल अश्वारोही सैनिकों में हड़बड़ाहट फैल गई। मुगल अश्वारोही पंक्तिबद्ध होकर जवाबी हमला करने में असमर्थ थे। इसी समय राजपूतों के बाएँ पार्श्व ने भी मुगलों के दाहिने पार्श्व पर जोरदार आक्रमण कर दिया, जिससे मुगल सेना के साथ जमकर संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में नरमुंडों के ढेर से लग गए।

मुगल सेनापति मानसिंह ने स्थिति की गंभीरता को देखते हुए अग्रिम आरक्षित दल को भी युद्ध में लगा दिया तथा अपनी तोपों एवं बंदूकों को भी राजपूत सेना के विरुद्ध फायर का आदेश दे दिया, जिससे राजपूतों के प्रहार पर अंकुश लगाया जा सका। इस दौरान लड़ाई में उत्पन्न गत्यवरोध को समाप्त करने के लिए महाराणा प्रताप ने अपनी हाथी सेना को आगे लगाने का आदेश दिया। जब राजपूत सेना के हाथी आगे बढ़े तो मुगल सेना में आतंक फैल गया तथा इसी दौरान राणा प्रताप के दाएँ पार्श्व की सेना ने मुगलों के बाएँ पार्श्व पर आक्रमण कर दिया, जिससे मुगलों का बायाँ पार्श्व टूट गया। गाजी खाँ तथा राव लोकरन ने अपने दाहिने पार्श्व में शरण ली। वे बुरी तरह घायल भी हो गए।

जब महाराणा प्रताप की सेना के विशालकाय हाथी 'लोना' ने हमला आरंभ कर दिया तब उसके जवाब में मुगलों की ओर से 'गजमुक्ता' नामक हाथी लगाया गया। इन हाथियों की भिड़ंत एवं चिंघाड़ से युद्धक्षेत्र में पूरी तरह आतंक छा गया। इस युद्ध में 'गजमुक्ता' हाथी घायल हो गया। वह भागने वाला ही था कि एक गोली 'लोना' के महावत को लग गई, जिससे वह मारा गया। इस प्रकार दोनों पक्षों के मध्य हाथीयुद्ध शुरू हो गया। इस भीषण युद्ध में दोनों पक्षों के अनेक सेनापति शहीद हो गए। मुगल सेना के आरक्षी दल का नेतृत्व कर रहे माधवसिंह ने राणा प्रताप पर अपना दबाव डालना शुरू कर दिया। महाराणा प्रताप अकेले ही युद्ध कर रहे थे; क्योंकि उनके अधिकांश सरदार अपनी वीरता के कारण शहीद हो चुके थे। मुगल सेना ने राणा प्रताप को चारों ओर से घेरने का प्रयास किया तथा दबाव डालना आरंभ कर दिया। मुगल सेना की अग्रिम पंक्ति निरंतर आगे बढ़ती जा रही थी। इस दौरान राणा प्रताप भी तलवारों एवं तीरों के प्रहार से घायल हो चुके थे। जून की गरमी में लगातार छः घंटे तक युद्ध होने से राजपूत सैनिक भी थक चुके थे। राजपूत झाला सरदार विंदा ने जब देखा

कि राणा प्रताप बुरी तरह घायल हैं, तो वह तेजी के साथ राजक्षत्र (मुकुट) को अपने सिर पर रखकर शत्रु पर टूट पड़ा; जिससे शत्रुसेना का ध्यान इस ओर लग गया तथा राणा प्रताप पर दबाव कम हो गया। राजपूत सरदार भामाशाह ने राणा प्रताप को युद्ध से सुरक्षित निकाल लिया; परंतु उधर मुगल सेना ने झाला सरदार को राणा प्रताप समझकर घेर लिया तथा वह वीर अपनी अंतिम साँस तक मुगलों को धूल चटाता हुआ अंततः शहीद हो गया। साथ ही शेष बची राजपूत सेना पहाड़ियों के दर्रों से बचकर भाग निकली और इस युद्ध का निर्णय मुगलों के पक्ष में हो गया।

युद्ध का परिणाम

इस ऐतिहासिक युद्ध के परिणामस्वरूप मुगल सैनिकों का उत्साह बढ़ गया तथा आगे के लिए उनका मार्ग प्रशस्त हो गया। इस युद्ध में राजपूत सेना के लगभग 350 सैनिक मारे गए तथा लगभग 1,000 सैनिक बुरी तरह घायल हो गए, जबकि मुगल सेना के लगभग 150 सैनिक मारे गए तथा लगभग 350 सैनिक घायल हुए। इस सफलता के पश्चात् गोगुंदनगर के किले पर अकबर का अधिकार हो गया; परंतु वह राणा प्रताप को उत्तरी-पश्चिमी पहाड़ियों के मध्य स्थित कुंभलगढ़ व देवसूरी के किले से बाहर निकालने में समर्थ नहीं हो सका, जिसके परिणामस्वरूप मुगल सेना जैसे ही गोगुंदनगर के किले से बाहर निकली, राणा की सेना ने पश्चिमी हिस्से को पुनः अपने अधिकार में कर लिया। इसके बावजूद पूर्वी मेवाड़ तथा चित्तौड़गढ़ पर मुगलों का अधिकार बना रहा।

सैन्य शिक्षाएँ

इस ऐतिहासिक युद्ध से हमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के अभाव में कोई भी राष्ट्र अपने को लंबी अवधि तक सुरक्षित नहीं रख सकता; जैसे भारतीय राजपूत राजाओं के आपसी मतभेदों के कारण अकबर को एक अवसर मिला और उसने राजपूत मानसिंह को अपनी सेना का सेनापति बनाकर राणा प्रताप को पराजित किया।
2. युद्ध में गतिशीलता का सिद्धांत सफलता का सच्चा सहयोगी होता है। इस युद्ध में मुगलों की गतिशील अश्वारोही सेना ने तेजी के साथ बदलती हुई परिस्थितियों में परिवर्तन करके राजपूत सेना पर अपना दबाव बनाए रखा तथा अंत में आरक्षी सेना के दल पर विजय हासिल कर ली।
3. किसी भी युद्ध में सफलता पाने के लिए यह आवश्यक है कि अपनाई जानेवाली यौद्धिक कार्यवाही एक नियोजित ढंग से की जानी चाहिए, अन्यथा पराजय के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं। राजपूत सेना ने अचानक आक्रमण करके शत्रु को परेशान तो कर दिया; परंतु सफल नहीं हो सकी।

4. युद्ध में सैन्य-शक्ति एवं श्रेष्ठ हथियार अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इस युद्ध में मुगल सेना को बड़ी सैनिक संख्या तथा बंदूकों व तोपों के द्वारा युद्ध को अपने पक्ष में करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ तथा इसके अभाव में राजपूत सेना को पराजित होना पड़ा।
5. मुगलों की सफलता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उन्होंने राजपूत सेना के द्वारा ही राजपूत सेना के विरुद्ध कार्यवाही की, जो राजपूत सेना की कमजोरियों से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने अपनी मुगल सेना द्वारा केवल सहयोग प्रदान किया।
6. आरक्षित सेना का लाभ भी मुगल सेना को मिला; क्योंकि इनके द्वारा थके हुए राजपूत सैनिकों को कुचलने में सहायता मिली।
7. खुले युद्ध में छापामार कार्यवाही अपनाना भी राजपूत सेना की पराजय का एक प्रमुख कारण बना।

प्लासी का युद्ध
(1757 ई.)

सैनिक दृष्टि से यह युद्ध महान् युद्धों की श्रेणी में नहीं आता; परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से इसे भारत का निर्णयात्मक युद्ध कहा जा सकता है। इस वास्तविक युद्ध के पूर्व ही षड्यंत्र एवं विश्वासघात के माध्यम से युद्ध के निर्णय को अंग्रेजों द्वारा अपने पक्ष में किया जा चुका था। जिस समय कर्नाटक में फ्रांस तथा इंग्लैंड के मध्य सत्ता के लिए संघर्ष चल रहा था, यही स्थिति उस समय बंगाल की भी हो रही थी। बंगाल के सूबेदार अलीवर्दी खाँ तथा अंग्रेजों के साथ कलकत्ता में बिना नवाब की आज्ञा के किलेबंदी के प्रश्न पर मतभेद बढ़ गए। अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के पश्चात् 1756 ई. में सिराजुद्दौला बंगाल का सूबेदार बना। उसने इस प्रश्न को लेकर कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। कंपनी के कर्मचारियों को बंदी बना लिया तथा किले के कुछ सैनिक जलयान द्वारा हुगली नदी के मुहाने पर स्थित फाल्टा द्वीप में भाग गए। नवाब ने बंदी कर्मचारियों को एक काल कोठरी में बंद करवा दिया, जहाँ अधिकांश बंदी दम घुटने से मर गए। अंग्रेज इस अपमान का बदला लेने के लिए उतावले हो गए। इस घटना के बाद नवाब सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद लौट आया। उसने सोचा भी नहीं था कि समुद्र मार्ग से अंग्रेज कलकत्ता को पुनः हथिया लेंगे, इसी कारण उसने कलकत्ता की सुरक्षा व्यवस्था पर भी ध्यान नहीं दिया।

अंग्रेजों ने नवाब की इस कार्यवाही का जवाब देने के लिए मानिकचंद, ओमीचंद, जगत सेठ तथा नवाब के प्रमुख दरबारियों को अपने पक्ष में कर लिया। उसी दौरान नवाब के आक्रमण की सूचना मद्रास पहुँची तो मेजर किल पैट्रिक के नेतृत्व में 230 यूरोपियन सैनिक बंगाल की ओर भेज दिए गए; परंतु जब मद्रास प्रेसीडेंसी को यह सूचना मिली कि नवाब ने वहाँ अधिकार कर लिया तथा कंपनी के कर्मचारियों को काल कोठरी में मार डाला है तो कर्नल क्लाइव तथा नौसेना अधिकारी वाटसन के नेतृत्व में एक सेना तोपों सहित हुगली नदी में 16 नवंबर, 1756 को प्रवेश कर गई। नदी मार्ग से यह सेना 15 दिसंबर, 1756 को फाल्टा द्वीप पहुँची तथा वहीं पर मेजर किल पैट्रिक से भेंट हुई।

इस दौरान कलकत्ता के गवर्नर ड्रेक ने नवाब से संधिवार्त्ता शुरू कर दी, क्योंकि उन्हें अपनी इस सहायता का आभास नहीं था। नौसेनाधिकारी वाटसन ने 17 दिसंबर को पूर्व अधिकारों की प्राप्ति तथा मुआवजे के लिए नवाब को पत्र लिखा। इस पत्र का

क्या जवाब आया, ज्ञात नहीं हुआ; परंतु 1 जनवरी, 1757 को अंग्रेजों का जंगी बेड़ा कलकत्ता की ओर आगे बढ़ा तथा 2 जनवरी को बिना किसी बड़े संघर्ष के उसने कलकत्ता पर अपना पुनः अधिकार जमा लिया। क्लाइव ने इस सफलता के साथ ही बंगाल प्रांत के संपन्न हुगली बंदरगाह पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। जब
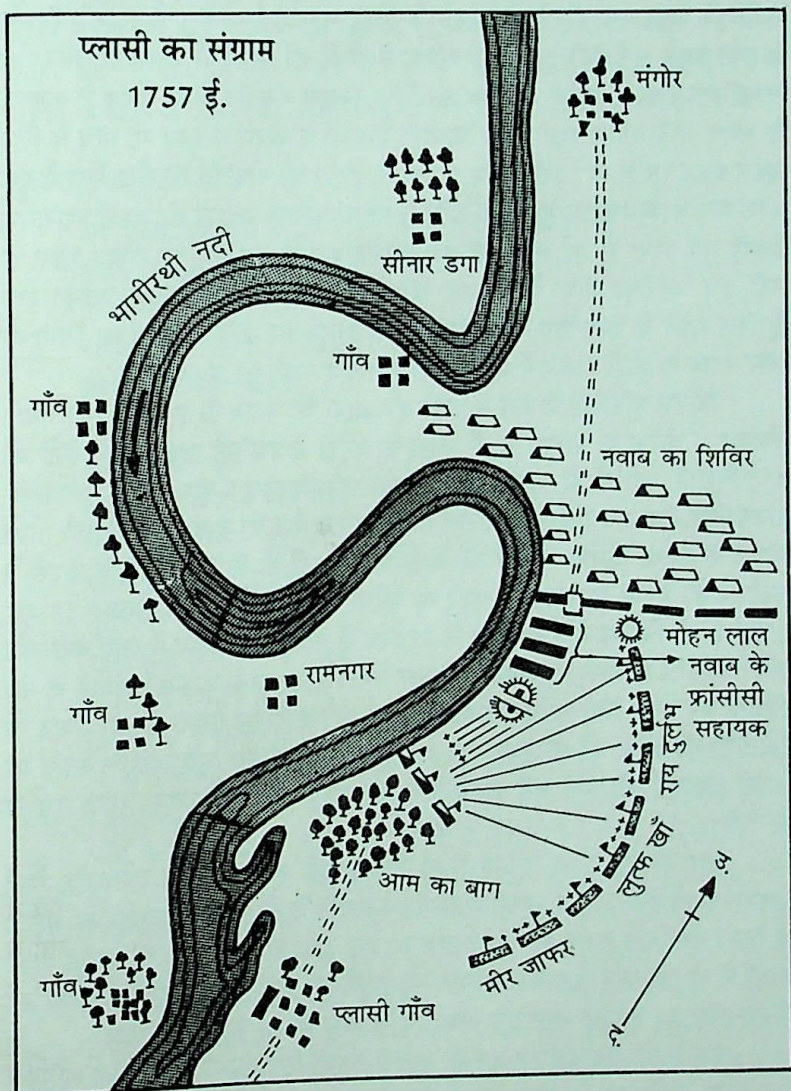
नवाब को इस बात का पता लगा तो अंग्रेजों को सबक सिखाने के लिए वह इस ओर पुनः आगे आ गया।

जिस समय आक्रमण के उद्देश्य से नवाब सिराजुद्दौला कलकत्ता की ओर आगे बढ़ रहा था, तभी इस बात का पता अंग्रेज सेनापति क्लाइव को लग गया। अतः उसने नवाब के आक्रमण को विफल करने के लिए महत्त्वपूर्ण योजना तैयार की, जिसके अंतर्गत उसने 5 फरवरी, 1757 को प्रातःकाल कोहरे की स्थिति में नवाब के शिविर पर आकस्मिक तथा गतिशील आक्रमण कर दिया, जिससे भयभीत होकर नवाब ने क्लाइव के समक्ष संधि-प्रस्ताव रखा। इधर फ्रांसीसी सेनाओं के कारण क्लाइव भी संधि के लिए प्रबल इच्छा रखता था। इसी कारण 9 फरवरी, 1757 को दोनों के मध्य अलीपुर में एक संधि-प्रस्ताव पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि के परिणामस्वरूप अंग्रेजों को अपनी व्यापारिक स्थिति पुनः प्राप्त हो गई तथा उन्हें मुआवजे के रूप में धन भी मिल गया। इतना ही नहीं, इस 'अलीपुर संधि' के अनुसार अंग्रेजों ने कलकत्ता के किले को मजबूत तथा सुरक्षित रखने के साथ-साथ अपना सिक्का भी ढालने का अधिकार प्राप्त कर लिया था और नवाब के शाही दरबार में एक ब्रिटिश प्रतिनिधि रखने का अवसर भी।

ब्रिटिश प्रतिनिधि के रूप में वाट्स (Watts) को नवाब के दरबार में रखा गया। क्लाइव ने वाट्स के माध्यम से ही नवाब के प्रमुख सेनापतियों तथा सूबे के सेठों को राष्ट्र-विरोधी शरारतों में जुटा दिया। इसके परिणामस्वरूप मीर जाफर, मानिकचंद, राजबल्लभ तथा राय दुर्लभराम लालच में आकर राष्ट्रहित को ताक पर रखने लगे। जब नवाब के प्रमुख दरबारी अंग्रेजों की चाल में फँस गए तो ब्रिटिश प्रतिनिधि वाट्स ने क्लाइव को नवाब पर आक्रमण करने का संदेश भेजा, जिसके परिणामस्वरूप 13 जून, 1757 ई. को ब्रिटिश सेना आक्रमण के उद्देश्य से क्लाइव के नेतृत्व में आगे बढ़ी और उसने चंद्रनगर के किले पर अपना अधिकार जमा लिया। इससे फ्रांसीसी अंग्रेजों के घोर विरोधी बन गए। जिस समय क्लाइव ने अपनी समस्त सैनिक तैयारी कर ली, नवाब पर 'अलीपुर की संधि' को भंग करने का आरोप लगाया तथा यह शर्त रखी कि नवाब को हमारी (क्लाइव की) सभी शर्तें माननी होंगी, अन्यथा हमारी सेनाएँ इसका जवाब युद्धक्षेत्र में देंगी।

जब नवाब को यह सूचना मिली तो वह बड़े आवेश में आ गया और उसने इसका जवाब देने के लिए अपनी सेनाओं को प्लासी के मैदान में तैनात होने के आदेश दे दिए। इधर जब नवाब को मीर जाफर पर शक हुआ तो उसने सेना की कमांड अपने हाथों में ले ली; परंतु युद्ध की गंभीरता को देखते हुए पुनः मीर जाफर से समझौता कर लिया। वह 21 जून को प्लासी के निकट पहुँचा तथा अपना पड़ाव डाल दिया।

दूसरी ओर क्लाइव 17 जून को पाटली पहुँचा और कटवा के किले पर अधिकार कर लिया, ताकि हार के समय सुरक्षात्मक स्थिति अपनाई जा सके। 19 जून को जब क्लाइव की सारी सेना कटवा में एकत्रित हुई, तो स्थिति यह थी कि वर्षा के कारण

भागीरथी नदी में बाढ़ आने वाली थी। उसने सोचा कि वह तुरंत नदी पार कर लेगा तो हारने पर वापस नदी पार करना उसके लिए संभव नहीं होगा; क्योंकि तब तक नदी में बाढ़ आ चुकी होगी; और यदि यहीं रहेगा तो फिर उसे पार करना कठिन होगा। इधर मीर जाफर का कोई गुप्त समाचार भी प्राप्त नहीं हुआ था। अतः उसने तुरंत मीर जाफर को पत्र लिखा तथा दूसरी ओर वर्धमान से अश्वारोही सैनिक माँगे। इसी समय मीर जाफर के दो पत्र मिले, जिनसे यह निश्चय हो गया कि मीर जाफर नवाब को धोखा देगा। अतः 22 जून को सायं 5 बजे क्लाइव ने नदी पार कर ली और आधी रात को प्लासी के मैदान में पहुँच गया। उसने बड़े आम के बाग में अपनी मोरचेबंदी कर ली।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस ऐतिहासिक युद्ध में दोनों पक्षों की सैन्य-शक्ति इस प्रकार थी—

नवाब सिराजुद्दौला की सेना में सैन्य बल—

पैदल सैनिक—35,000,

अश्वारोही सैनिक—15,000,

फ्रांसीसी सैनिक—40-50,

भारी तोपें—53,

हलकी तोपें—4।

क्लाइव की सेना में सैन्य बल—

यूरोपियन सैनिक—900,
भारतीय सैनिक—2,100, } कुल 3,000,

यूरोपियन तोपची—100,

शाही सेना के नौसैनिक—50,

6 पौंड गोलावाली तोपें—6,

हाउविट्ज़र श्रेणी की तोपें—21।

नवाब ने अपनी सेना को तीन मील के अर्धचंद्राकार घेरे में आम के बाग से 800 गज दूरी पर (जहाँ क्लाइव की सेना थी) 200 गज की सैन्य गहराई में व्यूहबद्ध किया। प्लासी गाँव के निकट सबसे पहले मीर जाफर के नेतृत्व में 5,000 सैनिक, फिर यार लुफ्त खाँ तथा राय दुर्लभ के नेतृत्व में 5,000-5,000 सैनिक संगठित करके अपना समरतांत्रिक फैलाव किया। अपने शिविर के आगे मीरुद्दीन तथा मदनलाल के नेतृत्व में 7,000 अश्वारोही तथा 5,000 पैदल सैनिक तैनात किए। क्लाइव की सेना तथा अपनी आगे की सेना के पहले नदी के किनारे फ्रांसीसी सैनिकों को लगाया। आम के बाग के आगे नवाब की सेना की तरफ एक छोटा व एक बड़ा तालाब तथा ईंटों का एक भट्ठा भी स्थित था। इन्हीं के साथ तोपों को तैनात कर दिया गया। इस प्रकार सामने की ओर सबसे आगे तोपें लगा दी गईं।

क्लाइव ने अपनी सेना को तीन भागों में एक ही लाइन में व्यूहबद्ध किया। उनकी सेनाओं का सामना तालाब की ओर था। मध्य में चार टुकड़ियों में यूरोपियन सैनिक थे। इन टुकड़ियों के कमांडर मेजर किल पैट्रिक, मेजर ग्रांट, मेजर आयरकूटी तथा कैप्टन गॉप (Gop) थे। भारतीय सिपाही इन टुकड़ियों के दाईं तथा बाईं ओर तैनात किए गए। बाएँ पार्श्व में क्लाइव ने कुछ सिपाहियों को 4 तोपों के साथ अलग रखा।

वास्तविक संघर्ष

23 जून, 1757 को प्रातःकाल 8 बजे नवाब की ओर से फ्रांसीसी दल ने क्लाइव की सेना पर तोपों के गोले बरसाने शुरू कर दिए। क्लाइव की सेना ने भी इसके उत्तर के लिए अपनी तोपों से फायर किए; परंतु उसकी तोपों का नाल-मुख छोटा था, जिससे फायर अधिक प्रभावशाली प्रमाणित न हो सके। नवाब की सेना की तोपों के फायर अंग्रेजों की सेना के ऊपर से जा रहे थे, फिर भी ब्रिटिश सेना घायल होने लगी। जब क्लाइव ने अपने को इसके मुकाबले असमर्थ अनुभव किया तो अपनी सेना को बगीचे की दीवार की आड़ में पुनः हटा लिया। 30 मिनट के युद्ध में ही लगभग 30 ब्रिटिश सैनिक व अधिकारी मारे गए। फ्रांसीसी सेना ने अपनी तोपों के प्रहार से ब्रिटिश सेना को 11 बजे तक पूरी तरह दबाए रखा, जबकि उन्हें नवाब की अन्य सेनाओं का सहयोग भी प्राप्त नहीं हो रहा था।

इधर आम के बाग की चारदीवारी की आड़ में ब्रिटिश सेना फ्रांसीसी तोपों के फायर से सुरक्षित भी थी। लगभग 12 बजे अचानक बरसात शुरू हो गई, जिससे नवाब की तोपें तथा गोले-बारूद भीग गए, क्योंकि उसके पास इनकी सुरक्षा के लिए तिरपाल आदि नहीं थे; परंतु अंग्रेजों ने अपने गोला-बारूद एवं तोपों को तिरपाल से ढक दिया। इस कारण जहाँ नवाब की सेना की तोपों का प्रयोग नहीं हो सका, वहाँ ब्रिटिश सेना की तोपों का सही उपयोग इस युद्ध में हुआ। इससे घबराकर नवाब की सेनाओं को अपनी खाइयों के पीछे हटना पड़ा।

लगभग 3 बजे क्लाइव भीगा हुआ आखेट गृह आया। उसका इरादा सायं तक सुरक्षात्मक रुख अपनाकर रात्रि के समय आकस्मिक आक्रमण करने का था। आखेट गृह से जाने के पूर्व क्लाइव अपने सहयोगी किल पैट्रिक को आदेश दे गया था कि यदि शत्रु सेनाएँ अब आगे बढ़ें तो उसे तुरंत सूचित किया जाए। लेकिन अचानक बिना क्लाइव की आज्ञा के ही किल पैट्रिक ने दो तोपों के साथ एक सैनिक टुकड़ी लेकर फ्रांसीसियों पर फिर से आक्रमण कर दिया। उधर मीरुद्दीन अपनी तोपों की भाँति ब्रिटिश तोपों को निष्फल समझकर अश्वारोही सेना के साथ आगे बढ़ा; परंतु ब्रिटिश सेना ने अपनी तोपों से फायर कर दिया, जिससे उसकी सेना को भारी हानि उठानी पड़ी। स्वयं मीरुद्दीन भी इस संघर्ष में मारा गया। मीरुद्दीन नवाब का सबसे वफादार सेनापति था। उसके मरते ही नवाब भयभीत हो गया। उसने मीर जाफर को अपनी वफादारी की याद दिलाई तथा

उसे अपना मुख्य सेनापति बनाकर अपनी पगड़ी की रक्षा के लिए याचना की।

क्लाइव ने मेजर ग्रांट को नवाब की अश्वारोही सेना पर निगरानी का आदेश देकर आगे बढ़ना प्रारंभ कर दिया तथा चकमा देकर नवाब के सेनापति मोहनलाल को मोरचेबंदी से बाहर निकालने में सफल हो गया। इसके पश्चात् उसने भीषण गोलाबारी करके मोहनलाल की सेना को तितर-बितर कर दिया। इस संघर्ष में क्लाइव ने देखा कि नवाब की सेना के बाईं ओर स्थित अश्वारोही युद्धक्षेत्र से हट रहे हैं तो उसने निश्चिंत होकर आयरकूटी को टीले पर तथा दूसरी टुकड़ी को नदी के निकट मोरचेबंदी पर आक्रमण करने का आदेश दिया। फ्रांसीसी सैनिकों के पीछे हट जाने के कारण टीले तथा मोरचेबंदी पर सरलता से अधिकार कर लिया। सायं 5 बजे जब क्लाइव की सेना नवाब के कैंप में पहुँची तो उस समय नवाब सिराजुद्दौला कैंप छोड़कर भाग चुका था।

नवाब के भागने का प्रमुख कारण यह था कि मीर जाफर ने उसके साथ सहयोग के बजाय गद्दारी की और क्लाइव को समस्त सूचनाएँ देता रहा। इसी समय राय दुर्लभ से नवाब ने सलाह ली तो उसने भी पीछे हटने की सलाह दी तथा अंग्रेजों की वीरता एवं बलिदान का आतंक बैठाकर भयभीत कर दिया। जिसका लाभ क्लाइव ने उठाया। जब नवाब को क्लाइव के लगातार आगे बढ़ने का समाचार मिला तो वह अपने 2,000 अश्वारोही सैनिकों के साथ अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद की ओर भाग गया। इस प्रकार सायं 5 बजे इस ऐतिहासिक युद्ध का निर्णय क्लाइव के पक्ष में सरलता के साथ हो गया।

परिणाम

युद्ध समाप्ति के दूसरे दिन क्लाइव तथा मीर जाफर की मुलाकात हुई और उसे क्लाइव ने बंगाल का सूबेदार कहकर सम्मानित किया। क्लाइव जब मुर्शिदाबाद पहुँचा तो उसे पता लगा कि नवाब वहाँ से भी भाग गया है, परंतु कुछ समय पश्चात् उसे कैद करने में सफलता मिल गई। बाद में उसका कत्ल कर दिया गया। मुर्शिदाबाद में अंग्रेजों को 1,07,66,000 रुपए मिले। इस धन से ब्रिटिश व्यापार तेजी के साथ विकसित हुआ तथा उनके प्रसार के लिए भारत में मार्ग प्रशस्त हो गया। इंग्लैंड के उद्योग भी इसके फलस्वरूप प्रगति कर सके। इसी कारण इंग्लैंड औद्योगिक क्रांति के समय यूरोप के सभी राष्ट्रों की तुलना में सबसे आगे बढ़ गया था।

इस युद्ध में क्लाइव की सेना के 17 यूरोपियन तथा 36 सिपाही मारे गए और 13 यूरोपियन तथा 36 सिपाही घायल हुए; जबकि नवाब की सेना के लगभग 500 सैनिक मरे तथा घायल हुए। कुल मिलाकर इस युद्ध में नवाब की सेना को भारी हानी उठानी पड़ी।

सैन्य शिक्षाएँ

इस युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में सफलता का आधार केवल सैनिक संख्या नहीं होती, बल्कि श्रेष्ठ सैन्य संगठन, राष्ट्रीय भावना तथा कुशल नेतृत्व सफलता की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं।
2. इस युद्ध ने यह भी प्रमाणित कर दिया कि शत्रु को धोखे में डालकर सफलता को सरल बनाया जा सकता है, जैसाकि क्लाइव ने नवाब के सेनापतियों को भ्रमित करके अपनी यौद्धिक कार्यवाही की।
3. युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि वास्तविक यौद्धिक कार्यवाही आरंभ होने के पूर्व ही युद्ध की विजय को अपने पक्ष में कर लिया जाए। जैसे क्लाइव ने यौद्धिक कार्यवाही के पूर्व सारी परिस्थितियाँ अपने पक्ष में करने का प्रयास कर लिया था।
4. यौद्धिक सफलता का आधार केवल श्रेष्ठ हथियार एवं सेना नहीं है, बल्कि कूटनीतिक चालों का प्रयोग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसे क्लाइव ने मीर जाफर तथा राय दुर्लभ आदि को मिलाकर नवाब को भारी शिकस्त दी।
5. युद्ध में प्राकृतिक प्रकोपों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। जैसे इस युद्ध में अचानक वर्षा हो जाने के कारण ही नवाब की तोपें व गोला-बारूद निष्फल सिद्ध हुए, जिसका पूरा लाभ क्लाइव की सेना को प्राप्त हो गया।
6. सेना में श्रेष्ठ नेतृत्व सदैव युद्ध के निर्णय को अपने पक्ष में करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। इस युद्ध में भी ब्रिटिश सेना का नेतृत्व कर रहे क्लाइव ने सामरिक परिस्थितियों के आधार पर अपनी सेना का संचालन किया और एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
7. राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को बनाए रखने के लिए जहाँ बाह्य शक्तियों से सावधान रहना चाहिए, वहाँ आंतरिक आधारों की भी चौकसी के साथ निगरानी आवश्यक है। इस युद्ध में नवाब के सेनापति ही शत्रु से मिल गए, जो कि उसकी पराजय का कारण बने। इसीलिए तो कहा गया है—'घर का भेदी लंका ढाए'।
8. युद्ध में मनोबल की विशेष भूमिका को नकारा नहीं जा सकता, जैसेकि केवल 40-50 फ्रांसीसी सैनिकों ने नवाब की सेना के सहयोग के बिना ही अंग्रेजों की सेना को एक लंबी अवधि तक आगे नहीं बढ़ने दिया था। लेकिन अंग्रेजों की सफलता के पीछे उनका षड्यंत्र प्रमुख भूमिका निभा रहा था, इससे उनका मनोबल भी बढ़ गया था।
9. युद्ध में सफलता सदैव उसी का साथ देती है, जो प्रत्येक परिस्थिति में अपने

को सजग रखकर शत्रु की गतिविधियों पर भी निगरानी रखता है। क्लाइव ने इसी तरह अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की।

10. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि मौसम, जलवायु, भू-स्थिति एवं बनावट आदि भौगोलिक तत्त्व भी युद्ध में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जहाँ उपर्युक्त तथ्य अंग्रेजों की विजय तथा नवाब की पराजय के लिए उत्तरदायी थे, वहाँ अंग्रेजों की वास्तविक विजय का कारण उनकी समरतांत्रिक संरचना न होकर, उनका षड्यंत्र एवं नवाब के सेनापतियों की स्वार्थभावना थी।

पानीपत का तृतीय संग्राम

(1761 ई.)

भारतीय सैन्य इतिहास में पानीपत का तृतीय संग्राम एक ऐसी घटना के रूप में उल्लिखित है, जहाँ से एक युग की समाप्ति हुई तथा दूसरे युग के आरंभ के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व स्थापित हो गया। यह प्रसिद्ध संग्राम मराठा सेनापति सदाशिव-राव भाऊ तथा अफगान सेनानायक अहमदशाह अब्दाली के मध्य 14 जनवरी, 1761 को पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में लड़ा गया। इस युद्ध का निर्णय अफगान सेना के पक्ष में हुआ और मराठों के शासन का सितारा भारतीय सैन्य इतिहास में धूमिल हो गया। उस समय भारत आपसी मतभेद एवं अस्थिरता के कारण विदेशी आक्रांताओं के लिए आकर्षण का केंद्र बना था। इसी का लाभ उठाते हुए फारस (ईरान) के नादिरशाह ने भारत पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण से उसे जो अपार संपत्ति प्राप्त हुई, उसे बटोरकर वह ईरान लौट गया। इसके पश्चात् उसके उत्तराधिकारी ने भी भारत की अपार संपदा को हथियाने के लिए बार-बार आक्रमण करते हुए इस युद्ध को जन्म दिया।

अहमदशाह अब्दाली 1747 ई. में नादिरशाह का उत्तराधिकारी बना। उसने 1748 ई. से भारत पर अपना आक्रमण अभियान जारी कर दिया। 1756 ई. में उसका भारत पर चौथा आक्रमण हुआ। 23 जनवरी, 1756 ई. को दिल्ली के मुगल बादशाह पर अपना आतंक फैलाकर उससे कश्मीर, पंजाब, सिंध तथा सरहिंद पर अधिकार कर लिया। अपने पुत्र तैमूरशाह को पंजाब का सूबेदार नियुक्त करके अप्रैल 1757 ई. में वह स्वदेश चला गया।

उस समय उत्तर भारत में सिक्ख तथा दक्षिण भारत में मराठों की शक्ति बढ़ रही थी। तैमूरशाह ने अपना आतंक बनाए रखने के लिए एक सम्मानित सिक्ख के साथ बुरा सलूक कर दिया। इससे अपमानित होकर जालंधर के सूबेदार ने मराठों के साथ मिलकर अप्रैल 1758 ई. में तैमूरशाह को भारत से खदेड़ दिया। जब अहमदशाह अब्दाली को पता लगा तो उसने इसका बदला लेने के लिए पाँचवीं बार आक्रमण करके पुनः पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया। मराठों ने अहमदशाह की इस विजय को अपना अपमान मानकर बदला लेने का संकल्प लिया। पंजाब पर अधिकार के बाद अहमदशाह दिल्ली की ओर बढ़ा। उस समय उसे रुहेला तथा अवध के नवाब का सहयोग भी प्राप्त था। अहमदशाह ने बरारघाट के पास दत्ताजी सिंधिया को 1 जनवरी, 1760 के दिन

पराजित करके उनका वध कर दिया। फिर मल्हार राव होल्कर व जनकोजी को भी 4 मार्च, 1760 को बुरी तरह पराजित किया।

जब मराठा सरदार पेशवा को इन पराजयों का समाचार मिला तब उसने मराठा प्रभाव को पुनः उत्तर की ओर स्थापित करने के लिए अपने विख्यात सेनापति सदाशिवराव भाऊ को तैनात किया तथा पुत्र विश्वासराव को प्रधान सेनापति नियुक्त किया। 14 मार्च, 1760 को अहमदशाह अब्दाली से बदला लेने के लिए सदाशिवराव भाऊ अपनी सेना सहित आगे बढ़ा। अन्य मराठा सरदारों ने भी सैन्य-शक्ति देकर उसे सहयोग दिया। 3 अगस्त, 1760 को सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में मराठा सेना ने दिल्ली के किले पर अपना अधिकार कर लिया तथा अपनी सेना का शिविर भी वहीं लगा लिया।

दूसरी ओर अहमदशाह अब्दाली का सैन्य शिविर अनूपशहर (बुलंदशहर) में लगा हुआ था। उसने अपनी दो सैन्य टुकड़ियों को शाहदरा के निकट कुंजपुर में तैनात कर रखा था। कुंजपुर में खाद्य सामग्री का पर्याप्त भंडार था। अतः मराठों ने अपनी खाद्य वस्तुओं की पूर्ति के लिए कुंजपुर पर भी आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया, जिससे आपूर्ति समस्या का समाधान भी उन्हें मिल गया। उस समय उत्तरी भारत की स्थानीय जनता भी मराठों से नाराज थी, क्योंकि वे लूटपाट मचाते थे। वे मराठी शासन के प्रति भी भयभीत थे। अहमदशाह अब्दाली ने बागपत के निकट यमुना नदी पार करके सोनीपत (हरियाणा) में अपना सैनिक पड़ाव डाला, जिससे मराठा सेना का दिल्ली से सीधा संपर्क समाप्त हो गया; क्योंकि उस समय मराठा सेना कुरुक्षेत्र में थी। जब मराठा सेना कुरुक्षेत्र से लौट रही थी तो रास्ते में उसे तरावड़ी (करनाल) में अब्दाली के सैन्य शिविर की सूचना मिल गई। अतः सदाशिवराव ने आगे बढ़कर पानीपत के ऐतिहासिक युद्धक्षेत्र में अपना सैन्य शिविर लगा दिया। मराठा भी अपनी मोरचेबंदी में जुट गए। पुराने आम के बाग के निकट चारों ओर खाई खोदकर मिट्टी की दीवार बनाकर अपनी तोपों को भी मोरचे पर लगा दिया। अहमदशाही अब्दाली ने भी मराठों की मोरचेबंदी से लगभग 8 मील दूर अपनी मोरचेबंदी की तथा उसकी सुरक्षा के लिए पेड़ों को कटवाकर डाल दिया। इस प्रकार दोनों पक्ष युद्ध के लिए पूरी तरह तैयार हो गए।

दोनों पक्ष एक-दूसरे की आपूर्ति-व्यवस्था को ठप्प करने में जुट गए; ताकि युद्ध के निर्णय को अपने पक्ष में किया जा सके। इस नाकेबंदी में अब्दाली को सफलता मिली। उसने मराठों की आपूर्ति-व्यवस्था पर अंकुश लगा दिया तथा मराठों की रसद सामग्री समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। इस दौरान वह अपने गुप्तचरों द्वारा मराठों की गतिविधियों पर भी निगरानी करता रहा। दोनों पक्षों के मध्य छोटी-छोटी मुठभेड़ें भी हुईं। जब कहीं मराठों की रसद सामग्री आती तो अब्दाली की सेना उसे रास्ते में ही लूट लेती, जिससे मराठा सेना व्याकुल होने लगी। सिक्ख सरदारों ने मराठा सेना को एक-दो
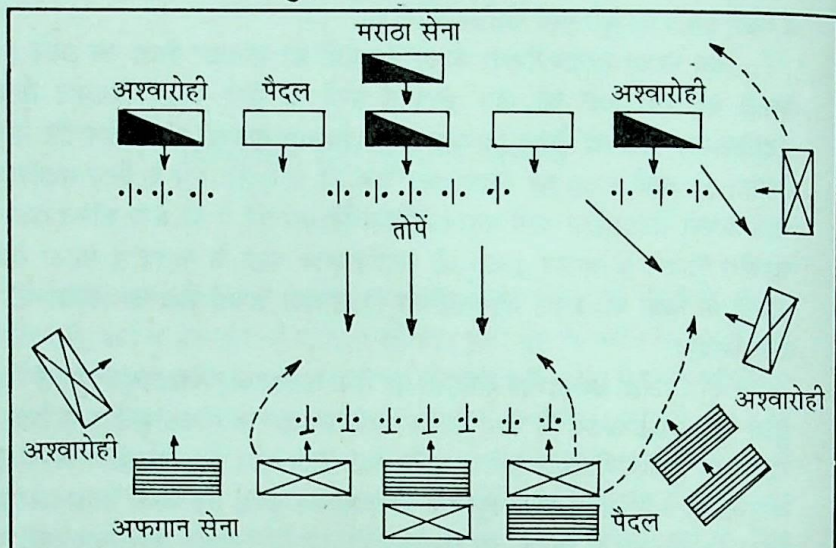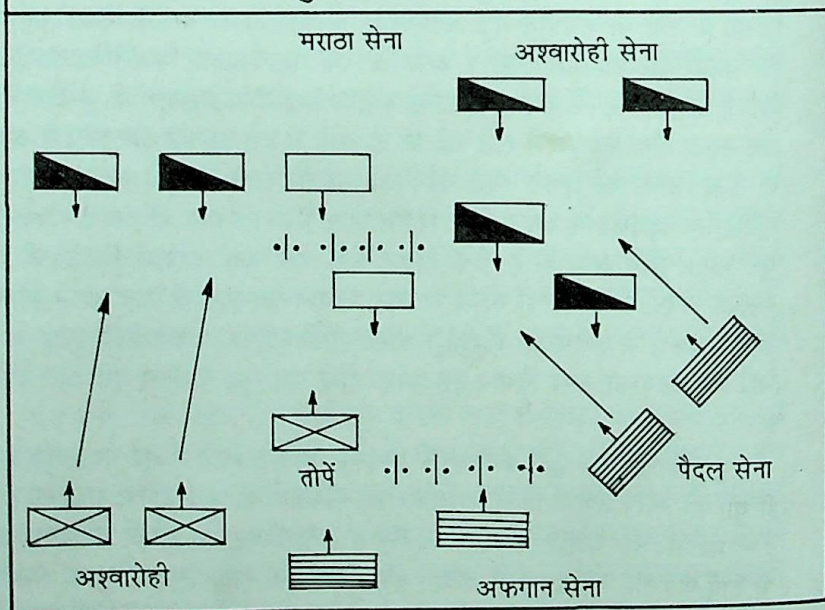
पानीपत का तृतीय युद्ध, 1761 ई.

बार रसद सामग्री भेजी; परंतु अब्दाली ने अपना एक छोटा दस्ता भेजकर उन्हें सामग्री भेजने के लिए मना कर दिया। 16 दिसंबर की एक मुठभेड़ में गोविंद पंत मारा गया तथा उसका सिर काटकर भाऊ के पास भेंटस्वरूप भेजा गया। अब निर्णायक संग्राम के अतिरिक्त मराठों के पास कोई उपाय नहीं बचा था।

अतः निराश एवं मजबूर मराठा सेना निर्णायक युद्ध के लिए 14 जनवरी, 1761 ई. को शिविर से बाहर निकल पड़ी।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

एक विद्वान् के अनुसार, मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ के नेतृत्व में सेना इस प्रकार थी—

पैदल सैनिक—15,000,
अश्वारोही सैनिक—55,000,
भारी तोपें—200।

इसके साथ ही इब्राहीम खाँ गर्दी के नेतृत्व में भी एक सैन्य टुकड़ी थी, जो फ्रांसीसी सेनापति बुशी द्वारा प्रशिक्षित थी, उसमें निम्न दल थे—

पैदल बंदूकधारी—9,000,
कुशल अश्वारोही—2,000,
हलकी तोपें—40।

अहमदशाह अब्दाली की सेना में कुल सैनिक संख्या इस प्रकार थी—

पैदल सैनिक—38,000,
अश्वारोही सैनिक—42,000,
भारी तोपें—80।

इसके साथ ही अब्दाली के पास उसके अपने नियंत्रण में कुछ आरक्षित सैनिक इस प्रकार से थे—

1,200-1,200 सैनिकों के दस्ते—24,
पैदल बंदूकधारी सैनिक—10,000,
ऊँट सवार सैनिक—2,000।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टिकोण से दोनों पक्षों की सैनिक संख्या में बहुत अंतर नहीं था; परंतु सैनिक गुणों की दृष्टि से अब्दाली की सेना मराठों की सेना से श्रेष्ठ थी।

मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ ने मध्य भाग की सेना को अपने अधीन रखा तथा दाएँ पार्श्व में जसवंत राव, शमशेर बहादुर, मल्हार राव होल्कर और जनकोजी के नेतृत्व में सेना तैनात की। बाएँ पार्श्व में शिवदेव पटेल, दामजी गायकवाड़ तथा इब्राहीम खाँ गर्दी के नेतृत्व में सेना लगाई। उसने मुख्य सैन्य दल के सामने, सबसे आगे की ओर अपनी भारी तोपों को लगाया। अपनी सेना के चारों ओर खाइयाँ खोदकर तथा

तोपों को लगाकर अपनी मोरचेबंदी को अत्यधिक सुदृढ़ बना रखा था।

अहमदशाह अब्दाली ने अपनी सेना की सामरिक संरचना अत्यधिक विस्तार से की थी, जिससे मराठा सेना पार्श्व से घेराबंदी न कर सके। उसकी सेना लगभग 7 मील की लंबाई तथा 2 मील की चौड़ाई में अर्धचंद्राकार खड़ी थी। सेना के केंद्रीय या मध्य भाग का नेतृत्व वजीर-ए-आला शाहवली खाँ के हाथ में था। दाएँ पार्श्व का नेतृत्व दुंदी खाँ, हाफिज रहमद खाँ, अहमद खाँ, बरखुर्दार खाँ तथा अमीर बेग के द्वारा किया जा रहा था; जबकि बाएँ पार्श्व का नेतृत्व नजीबउद्दौला, सुजाउद्दौला तथा शाहपसंद खाँ कर रहे थे। मुख्य दल के सामने तथा आगे तोपखाने को लगाया था तथा मुख्य सैन्य दल के पीछे आरक्षित सेना के रूप में हजार-हजार सैनिकों की तीन टुकड़ियाँ तैनात थीं। सबसे पीछे अहमदशाह का आरक्षित शिविर था।

वास्तविक संग्राम

14 जनवरी, 1761 ई. को प्रातःकाल लगभग 8 बजे मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ ने अपनी तोपों की गर्जना के साथ इस युद्ध का श्रीगणेश कर दिया। बाएँ पार्श्व का नेतृत्व कर रहे इब्राहीम खाँ गर्दी ने अपने अधीन 2 दलों को अब्दाली के दाएँ पार्श्व को उलझाए रखने के लिए लगा दिया तथा अन्य 7 दल लेकर आगे की ओर शत्रु के दाएँ पार्श्व से जा भिड़ा। इस हमले से उसने अब्दाली के दाएँ पार्श्व में कहर ढा दिया; परंतु इधर मराठा अश्वारोही न होने के कारण वह इसका पूरा लाभ नहीं उठा सका। इसके बावजूद उसने 3 घंटे के इस संघर्ष में अब्दाली सेना के लगभग 8,000 सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। साथ ही उसे अपने 6 दलों को भी खोना पड़ा। इसी समय अब्दाली के सेनापति बरखुर्दार खाँ ने अपनी अश्वारोही सेना का तीव्र आक्रमण करके इब्राहीम खाँ गर्दी को घायल कर दिया, जिससे अब्दाली की सेना पर बढ़ता दबाव समाप्त हो गया।

मराठा सेना का केंद्रीय या मध्य भाग सदाशिवराव, शिवदेव पटेल, होल्कर आदि के नेतृत्व में 'जयघोष' के साथ ही अफ़गान सेना के मध्य भाग पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा तो मध्य भाग में भी भीषण संघर्ष आरंभ हो गया। इस भयंकर लड़ाई में अफगान सेना के लगभग 3,000 दुर्रानी सैनिक भी मौत के घाट उतार दिए गए, जिससे अफगान सेना में एक बार आतंक-सा छा गया। यह देखकर अब्दाली के सेनापति नजीबउल्ला ने बंदूकों से फायर करके मराठा अश्वारोही सेना को परेशान ही नहीं किया, बल्कि अपनी अश्वारोही सेना शाहपसंद खाँ के नेतृत्व में भेजकर उसको बुरी तरह से कुचल दिया। यद्यपि इस संघर्ष में अफगानी सेना को जहाँ बड़ी हानि उठानी पड़ी वहाँ सेना भी एक बार विचलित हो उठी; परंतु अहमदशाह के अनुभव एवं धैर्य ने इस घड़ी में अपनी सैन्य प्रतिभा का सही परिचय दिया।

अहमदशाह ने जब देखा कि मराठा सैनिक बुरी तरह थक चुके हैं तथा भूख एवं

प्यास से व्याकुल हो उठे हैं तो उसने मौके का सही फायदा उठाने के लिए अपनी सेना के आरक्षित दलों व ऊँट सेना के द्वारा उन पर तीव्र प्रहार कर दिया, जिससे मराठा सेनापति विश्वासराव वीरगति को प्राप्त हुए तथा सदाशिवराव भाऊ की स्थिति भी डोल गई। उसने अपनी सेना के दाएँ पार्श्व को बुलाया; परंतु दाएँ पार्श्व का नेतृत्व कर रहे सिंधिया तथा होल्कर इस आक्रमण को देखकर ही इतने भयभीत हो गए थे कि उनकी हिम्मत टूट गई और वे मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। ऐसी स्थिति में इसी पार्श्व के अन्य सेनापति शमशेर बहादुर तथा जसवंत राव भी मूकदर्शक बने रहे, जिसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध का निर्णय अफगानों के पक्ष में स्पष्ट नजर आने लगा।

अतः मराठों की इस बड़ी कमजोरी का लाभ उठाते हुए अब्दाली ने अपनी शेष आरक्षित सेना को भी बुलाकर अंतिम आक्रमण का आदेश दे दिया, जिसके फलस्वरूप युद्धक्षेत्र में भीषण नर-संहार हुआ तथा चारों ओर से घिरी मराठा सेना के कुछ सैनिक तो भाग खड़े हुए तथा शेष को तुरंत ही कत्ल कर दिया गया। अब्दाली की सेना ने भागते हुए मराठा सैनिकों का लगभग 20 मील तक पीछा किया और उन्हें भी पकड़कर मार डाला। इसके साथ ही इस ऐतिहासिक युद्ध का निर्णय अफगान सेनापति अहमदशाह अब्दाली के पक्ष में हो गया।

परिणाम

इस ऐतिहासिक युद्ध के परिणामस्वरूप भारतीय इतिहास में जहाँ मराठों का एक अध्याय समाप्त हो गया वहाँ अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली का नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया। इसके परिणाम के संदर्भ में सिडनी ओवेन का कथन उल्लेखनीय है—"पानीपत के इस संग्राम के साथ-साथ भारतीय इतिहास के भारतीय युग का अंत हो गया। इतिहास का अध्ययन करनेवालों को इसके पश्चात् दूर पश्चिम से आए हुए व्यापारी शासकों की प्रगति मात्र से ही सरोकार रह जाता है।"

सैन्य शिक्षाएँ

इस निर्णायक एवं ऐतिहासिक युद्ध से हमें निम्नलिखित समरतांत्रिक शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. युद्ध में सफलता प्राप्ति के लिए निश्चित लक्ष्य का चयन तथा उसका निर्वाह करना एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जैसाकि इस युद्ध में अहमदशाह अब्दाली ने इस बात को ध्यान में रखकर किया और सफलता प्राप्त की; जबकि मराठों की सेना ने इसकी पूर्ण अवहेलना की, जिसका परिणाम उसे पराजय के रूप में स्वीकार करना पड़ा।
2. कुशल नेतृत्व भी युद्ध की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस युद्ध में अहमदशाह अब्दाली ने अपने प्रथम संघर्ष में हानि उठाने के बावजूद

बड़े धैर्य एवं साहस के साथ समय की प्रतीक्षा करके युद्ध की स्थिति को अपने पक्ष में कर लिया; परंतु दूसरी ओर मराठा सैनिक अपनी मध्य कमांड की डाँवाँडोल की स्थिति में सहायता देने के बजाय युद्ध का मैदान ही छोड़ गए।

3. शक्ति की मितव्ययता का सिद्धांत युद्ध की सफलता का सूचक माना गया है। इसी सिद्धांत को अपनाकर अहमदशाह अब्दाली ने अपनी सेना का उचित विभाजन क्यि और उसका समुचित उपयोग करके इस ऐतिहासिक युद्ध में सफलता प्राप्त की। इस सिद्धांत का अभिप्राय अपनी शक्ति के सही उपयोग से है, जो मराठा सेना नहीं कर सकी।
4. युद्ध में सफलता पाने में स्थानीय सहयोग एवं सहानुभूति भी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। अहमदशाह की सेना को नजीबउद्दौला और सुजाउद्दौला का सक्रिय सहयोग मिला; जबकि मराठा सेना के आतंक के कारण उन्हें स्थानीय सहयोग व सहानुभूति प्राप्त न हो सकी और अंततः उन्हें पराजित होना पड़ा।
5. युद्ध में सेनाओं का अनुशासन एवं मनोबल भी एक निर्णायक भूमिका निभाता है। इस युद्ध में अफगान सेना में श्रेष्ठ अनुशासन तथा उच्च मनोबल था; जबकि मराठा सेना में इन दोनों महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों का अभाव था।
6. युद्ध में सफलता का एक प्रमुख रहस्य यह भी है कि भौगोलिक संरचना के आधार पर ही अपना समरतंत्र अपनाना चाहिए, अन्यथा पराजय के अवसर बढ़ जाते हैं। मराठों ने इस युद्ध में सुरक्षात्मक स्थिति अपनाकर भी छापामार समरतंत्र नहीं अपनाया और उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा।
7. युद्ध में उचित अवसर पर उचित कार्यवाही हमेशा लाभदायक होती है। इस युद्ध में अब्दाली ने अपनी आरक्षित सेना के उचित प्रयोग का समय आने पर ही प्रयोग करके एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
8. आपूर्ति-व्यवस्था के अभाव में युद्ध में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। इस युद्ध में मराठा सेना की आपूर्ति-व्यवस्था टूट गई थी। उसका संबंध दिल्ली से समाप्त हो गया था, और उसे मजबूर तथा निराश होकर युद्ध का निर्णय करना पड़ा; जिससे अंततः पराजय ही मिली।
9. सुरक्षा का सिद्धांत युद्ध की सफलता का एक प्रमुख रहस्य है, अर्थात् अपनी योजनाओं को शत्रु से छिपाकर (गुप्त) रखना तथा शत्रु की योजनाओं की जानकारी करना सफलता का एक रहस्य है, जिसका पूरा लाभ अब्दाली ने मराठा सेना की प्रत्येक गतिविधि की निगरानी रखकर उठाया और एक निर्णायक सफलता प्राप्त की।

10. शत्रु को आश्चर्यचकित करके उसकी योजनाओं को विफल करना भी सफलता का सूचक है, जैसे इस युद्ध में अब्दाली की आरक्षित सेना ने आकस्मिक आक्रमण करके मराठा सेना को आश्चर्य में डाल दिया, उसकी योजनाओं को विफल कर दिया तथा इस ऐतिहासिक युद्ध के निर्णय को सरलता के साथ अपने पक्ष में कर लिया।

अस्साई का संग्राम
(1803 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम ब्रिटिश सेनापति जनरल वेलेजली तथा मराठा सेनापति सिंधिया व भोंसले के मध्य 23 सितंबर, 1803 ई. को अस्साई गाँव (औरंगाबाद) के निकट लड़ा गया। इस युद्ध में मराठों में आपसी मतभेद उत्पन्न करके ब्रिटिश सेनापति ने सामरिक लाभ उठाया और एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की। अंग्रेजों ने 'विभाजित करो तथा शासन करो' की नीति के आधार पर अपने साम्राज्य का विस्तार आरंभ कर दिया था। व्यापार के उद्देश्य से भारत में आए इन अंग्रेजों ने केवल ईस्ट इंडिया कंपनी का संचालन ही नहीं किया; बल्कि भारतीय राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर राजनीतिक दाँव-पेच आरंभ करके अपना विस्तार आरंभ कर दिया। जिस समय ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई उस समय बंगाल, मद्रास तथा बंबई में अपनी कंपनी की सुरक्षा के नाम पर सैनिक भरती शुरू की गई थी। इसके विस्तार में मराठा एवं सिक्ख समुदाय प्रमुख बाधक थे। अतः अंग्रेजों ने इन्हें अपनी नीति के आधार पर विभाजित करके अपने लिए मार्ग प्रशस्त कर लिया।

पानीपत के तृतीय युद्ध में अफगानों की विजय के साथ ही मराठों तथा फ्रांसीसियों का पतन होने लगा था। अब मराठा दक्षिण भारत में ही अपना अस्तित्व बनाए हुए थे। उनका उत्तर भारत में प्रभुत्व समाप्त हो गया था। अंग्रेजों के बढ़ते हुए साम्राज्य के प्रति सभी सियासतें चौकन्नी थीं; पर आपसी एकता के अभाव में मौन थीं। प्रसिद्ध मराठा माधवजी सिंधिया ने अंग्रेजों के विरुद्ध हैदरअली सहित भारत के अन्य शासकों को एकजुट किया। इसी एकता के बल पर निजाम-हैदराबाद, आगरा, अलीगढ़, दिल्ली तथा पूना तक को अपने अधीन कर लिया। किंतु माधवजी सिंधिया के आकस्मिक निधन से इसका उत्तरदायित्व दौलतराव सिंधिया को सौंपा गया। उत्तर भारत में सिक्ख सरदार रणजीतसिंह ने बागडोर सँभाली। अब उत्तर तथा दक्षिण दोनों ओर से अंग्रेजों के प्रसार में बाधा आ गई; किंतु 1802 ई. में मराठा पेशवा बाजीराव रघुनाथ के साथ अंग्रेजों ने 'बेसीन की संधि' कर ली। इसी के कुछ समय पश्चात् 1809 ई. में सिक्ख महाराजा रणजीतसिंह के साथ 'अमृतसर की संधि' कर ली। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिक सफलता प्राप्त की। 'बेसीन की संधि' ही अस्साई के संग्राम का प्रमुख कारण मानी जाती है।

31 दिसंबर, 1802 की 'बेसीन की संधि' के अनुसार पूना में मराठा पेशवा की

सुरक्षा के लिए अंग्रेज कमांडरों के अधीन कंपनी की 6 बटालियन सेना रखी गई, जिसका खर्च पेशवा बाजीराव को वहन करना था। इसके साथ ही भविष्य में होनेवाले सभी झगड़ों के निबटारे का उत्तरदायित्व भी ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथों में ले लिया था, जिसके परिणामस्वरूप पेशवा की उपस्थिति कठपुतली की भाँति रह गई, जिन्हें अंग्रेजों की मरजी से नचाया जाता था। इस संधि से अंग्रेजों के लिए मराठों के सम्मिलित आक्रमण का भय भी समाप्त हो गया। 'बेसीन की संधि' को मराठा हितों के विरुद्ध समझकर दौलतराव सिंधिया तथा भोंसले ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपनी सैनिक तैयारी शुरू कर दी। जब इस बात का पता ब्रिटिश सरकार को लगा तो उसने गवर्नर जनरल वेलेजली को उनकी गतिविधियों की निगरानी के लिए नियुक्त किया तथा सैनिक तैयारी के भी आदेश दे दिए। इस प्रकार जब दोनों पक्ष अपनी सैनिक तैयारी में जुट गए तो 6 अगस्त, 1803 को 'द्वितीय ब्रिटिश-मराठा युद्ध' की घोषणा हो गई। यह ऐतिहासिक युद्ध 23 सितंबर, 1803 को अस्साई नामक गाँव (औरंगाबाद) में लड़ा गया।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

दौलतराव सिंधिया तथा रघुजी भोंसले के अधीन मराठा सेना इस प्रकार थी—

कुल सैनिक संख्या—55,000,

नियमित ब्रिगेड—3,

अश्वारोही सैनिक—30,000,

तोपों की संख्या—100।

सैनिक संख्या की दृष्टि से मराठा सेना अंग्रेजों की तुलना में कहीं अधिक सुदृढ़ थी।

अंग्रेजों की सेना इस प्रकार थी—

कुल सेना—45,000,

मराठा अश्वारोही—5,000,

तोपखाना—2 टुकड़ियों में।

इसके साथ ही अंग्रेजों ने अपनी सैनिक टुकड़ियों को विभिन्न दलों में विभक्त करके मराठा शक्ति के विरुद्ध लगाया।

मराठा सेना ने अपना सैनिक शिविर 20 सितंबर, 1803 को जाफराबाद और बोकुर्दन गाँव के पास लगाया तथा अपनी सेना की मोरचेबंदी आरंभ कर दी। इस मोरचेबंदी का फैलाव लगभग 6 मील लंबा था। बोकुर्दन गाँव से अस्साई गाँव तक का क्षेत्र इसकी सामरिक संरचना में आता था। अस्साई गाँव के बाएँ पार्श्व की ओर मराठा पैदल सैनिक एवं तोपखाना तैनात किया गया था तथा दाएँ पार्श्व में बोकुर्दन गाँव की ओर अश्वारोही तथा उसके पीछे पैदल सेना की एक टुकड़ी भी तैनात थी। मराठा सेना ने कैथना तथा जूहा नदी के मध्य अपना सैन्य फैलाव किया था। अंग्रेजों के लिए कैथना

नदी पार करना कठिन था; क्योंकि वह एक गहरी नदी थी; इसी कारण अंग्रेज भी नदी पार मराठों की समरतांत्रिक स्थिति देखकर भयभीत थे, परंतु उन्हें भी पिंपल गाँव के निकट नदी पार करने के लिए एक घाट मिल गया। अंग्रेजों ने 23 सितंबर को नदी पार
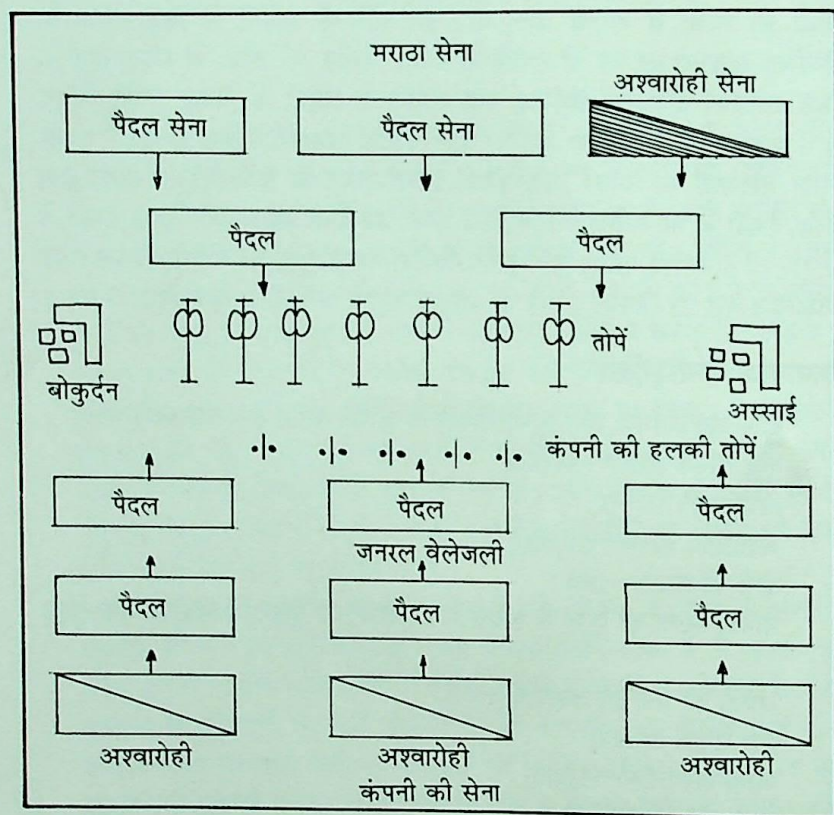
अस्साई का संग्राम, 1803 ई.

कर ली तथा अपनी सेना की भी सामरिक संरचना शुरू कर दी।

अंग्रेज सेना ने अपनी समरतांत्रिक संरचना जनरल वेलेजली के नेतृत्व में की। मराठा सेना के ठीक सामने दोनों नदियों के मध्य दाएँ पार्श्व में सबसे आगे की ओर अपने तोपखाने को तैनात किया। पैदल सेना को दाएँ, बाएँ तथा मध्य भाग की 3 टुकड़ियों में विभक्त करके दो भागों में आगे तथा पीछे तैनात किया। सबसे पीछे अपनी अश्वारोही सेना को लगाया।

जब मराठा सेना को अंग्रेजों की समरतांत्रिक स्थिति का पता चला तो उसने अपने बाएँ पार्श्व की सुरक्षा के लिए पूरे समरतंत्र को ही परिवर्तित कर दिया। इसके आधार पर मराठा तोपखाना सबसे आगे आ गया तथा अपना फैलाव उत्तर-दक्षिण दिशा की

तरफ कर लिया। अंग्रेजों को जब इनकी स्थिति का पता चला तो उन्होंने एक कूटनीतिक चाल चली तथा मराठा सेना के कुछ सेनापतियों को लालच देकर अपनी ओर मिलाने में सफल हो गए। इस प्रकार युद्ध होने से पहले ही अंग्रेजों ने यह लड़ाई अपने पक्ष में करने का सफल प्रयास किया।

वास्तविक संघर्ष

अंग्रेज जनरल वेलेजली ने अपनी पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार मराठा सेना के दाएँ पार्श्व पर आक्रमण करके इस युद्ध का आरंभ कर दिया; किंतु अंग्रेज सेना की दाएँ पार्श्व की सहायक टुकड़ी के रूप में उपस्थित 74वीं डिवीजन भी भूल से आगे बढ़ गई, जिससे ब्रिटिश सेना का दायाँ पार्श्व खाली हो गया। जब मराठा सेनाओं ने यह स्थिति देखी तो उन्होंने तुरंत ही मौके का लाभ उठाते हुए ब्रिटिश सेना के दाएँ पार्श्व में अपनी तोपों एवं अश्वारोही सैनिकों द्वारा जोरदार आक्रमण कर दिया, जिससे ब्रिटिश सेना को भारी हानि उठानी पड़ी और उसकी योजना विफल हो गई। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए ब्रिटिश सेना ने अपने पीछे खड़ी अश्वारोही सेना का सहयोग लिया; किंतु इस प्रथम संघर्ष में ब्रिटिश सेना अस्त-व्यस्त हो गई।

इस संकट की परिस्थिति में ब्रिटिश सेनापति जनरल वेलेजली ने अपनी नेतृत्व-प्रतिभा का परिचय देते हुए बड़े ही धैर्य एवं साहस से कार्य किया। जिस समय दाएँ पार्श्व में लड़ा जा रहा युद्ध कुछ धीमा हुआ, उसी समय उसने अपने बाएँ पार्श्व तथा मध्य भाग द्वारा मराठा सेना पर एक साथ तीव्र आक्रमण आरंभ कर दिया। जब दोनों पक्षों में जोरदार संघर्ष चल रहा था तब मराठा सेना का एक सेनापति 'डुपाँ' अपनी सेना की टुकड़ी सहित ब्रिटिश सेना के पक्ष में आ गया, जिसके परिणामस्वरूप युद्ध की स्थिति एकदम बदल गई और मराठा सेना में अव्यवस्था फैल गई। हतोत्साहित मराठे अंग्रेजों की इस कूटनीति से भयभीत भी हो गए तथा पीछे की ओर हटने के लिए मजबूर हो गए।

मराठा सेना की नाजुक स्थिति को नज़रअंदाज करते हुए ब्रिटिश सेनापति जनरल वेलेजली ने अपनी गतिशील अश्वारोही सेना द्वारा तीव्र प्रहार कर दिया। ब्रिटिश सेना के इस आक्रमण के समय मराठा तोपों के फायर बंद हो गए, जिससे उसे अस्साई गाँव में अधिकार जमाने का अवसर भी मिल गया। ब्रिटिश सेना ने मराठा सेना को नदी पार करने के लिए मजबूर कर दिया। नदी के उस पार मराठा पैदल सेना पुनः संगठित होने लगी; किंतु ब्रिटिश सेना ने बिना समय खोए अपनी गतिशील अश्वारोही सेना द्वारा नदी पार कर उस पर पीछे से आक्रमण कर दिया। विवश होकर मराठा सेना युद्ध के मैदान से भाग खड़ी हुई। इसी दौरान मराठा सेना की घायल तोपची सेना ने ब्रिटिश सेना पर उस समय फायर कर डाला जब वह नदी पार कर रही थी, जिससे ब्रिटिश सेना का एक सेनापति भी मारा गया। इस सबके बावजूद अंततः मराठा सेना को पराजित होना पड़ा

और इस ऐतिहासिक युद्ध का निर्णय ब्रिटिश सेना के पक्ष में हुआ।

इस युद्ध में दोनों ही पक्षों को भारी क्षति उठानी पड़ी; परंतु विजयी ब्रिटिश सेना ने भागती हुई मराठा सेना को भारी आघात पहुँचाया। लगभग 1,200 मराठा सैनिक मारे गए तथा बड़ी संख्या में घायल हुए। मराठा सेना की लगभग 98 तोपें भी अंग्रेजों के हाथ लगीं। ब्रिटिश सेना के 23 यूरोपियन अधिकारी, 175 यूरोपियन सैनिक तथा 230 भारतीय सिपाही मारे गए तथा 30 यूरोपियन अधिकारी, 412 यूरोपियन सिपाही तथा 696 भारतीय सैनिक घायल हुए।

परिणाम

यह संग्राम यद्यपि निर्णायक संग्राम था, परंतु इसे समरतांत्रिक दृष्टिकोण से महान् युद्ध नहीं कहा जा सकता है। इस युद्ध में अंग्रेजों ने अपनी सैन्य प्रतिभा के बजाय अपनी षड्यंत्रकारी योजनाओं के द्वारा सफलता प्राप्त की। इस युद्ध के 10 दिन के भीतर ही दौलतराव सिंधिया ने अंग्रेजों से संधि के लिए अनुरोध किया, जिसे नामंजूर कर दिया गया। इसके पश्चात् मराठा शक्ति टूट गई, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार को अपना प्रसार करने का एक अच्छा अवसर प्राप्त हो गया।

सैन्य शिक्षाएँ

इस निर्णायक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए केवल नैतिक एवं सैनिक शक्ति ही पर्याप्त नहीं है; बल्कि इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कूटनीतिक चालें। इस युद्ध में अंग्रेजों ने मराठों के विरुद्ध षड्यंत्रकारी योजनाओं को अपनाया और एक निर्णायक सफलता प्राप्त की।
2. किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा तथा एकता के लिए उस देश के नागरिकों का आपसी सहयोग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सहयोग के सिद्धांत के अभाव में कोई भी सेना सफल नहीं हो सकती। इस युद्ध में मराठों की पराजय का प्रमुख कारण उनके आपसी मतभेद थे, जिनका लाभ उठाकर अंग्रेजों ने सफलता प्राप्त की।
3. कुशल नेतृत्व सदैव निर्णायक भूमिका निभाता है। इस युद्ध में ब्रिटिश सेनापति जनरल वेलेजली के कुशल नेतृत्व के कारण ही इसका निर्णय कंपनी के पक्ष में हुआ। उसने अपनी योजनाबद्ध कार्यवाही, सूझ-बूझ तथा मनोबल के द्वारा ही सफलता प्राप्त की।
4. युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि यौद्धिक कार्यवाही आरंभ होने के पूर्व ही युद्ध के निर्णय को अपने पक्ष में कर लिया जाए। जैसे इस संग्राम में अंग्रेजों ने युद्ध के पूर्व ही मराठा एकता को समाप्त करके, कुछ

सेनापतियों को लालच देकर अपने पक्ष में कर लिया।

5. युद्ध में सफलता उसी पक्ष का साथ देती है जो पक्ष प्रत्येक परिस्थिति में अपने को सजग रखकर शत्रु की गतिविधियों पर भी निगरानी रखता है। इस सिद्धांत के द्वारा ही जनरल वेलेजली ने मराठा सेना पर एक निर्णायक सफलता प्राप्त की।

ट्राफलगर का संग्राम

(1805 ई.)

यह प्रसिद्ध सामुद्रिक संग्राम फ्रांस के सेनापति नेपोलियन तथा ब्रिटिश नौसेना के एडमिरल नेल्सन के मध्य 21 अक्टूबर, 1805 को भूमध्यसागर में जिब्राल्टर के निकट ट्राफलगर में लड़ा गया। इस युद्ध में नेपोलियन को पराजित होना पड़ा, जिसके परिणाम-स्वरूप नेपोलियन की यूरोप-विजेता बनने की इच्छा अधूरी ही रह गई। आस्ट्रिया को पराजित करने के पश्चात् नेपोलियन इंग्लैंड को अपने अधीन करने के प्रयत्न में लग गया। उसकी यह योजना थी कि इंग्लैंड की नौसेना को भुलावे में डालकर मिस्र की ओर से अपनी सेना इंग्लैंड में उतार दी जाए। परंतु इसी दौरान दोनों पक्षों में समझौता हो जाने के कारण युद्ध थोड़े समय के लिए टल गया। 18 मई, 1803 ई. को इंग्लैंड ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उस समय फ्रांसीसी नौसेना इंग्लैंड की नौसेना की अपेक्षा कमजोर थी। 1803 ई. में कोई युद्ध नहीं हुआ, परंतु दोनों पक्षों में जोरदार युद्ध की तैयारी होती रही। 2 दिसंबर, 1804 को नेपोलियन ने सम्राट् की पदवी ग्रहण की।

1803 ई. की सैनिक तैयारी के पश्चात् इंग्लैंड के सामने यह समस्या थी कि किस प्रकार विभिन्न बंदरगाहों में तैनात फ्रांसीसी जलयानों को वहीं रोका जाए तथा इंग्लिश चैनल की रक्षा की जाए! उनकी योजना यह थी कि यदि फ्रांसीसी जलयान बंदरगाहों से निकल जाएँ तो उसका बेड़ा इंग्लिश चैनल के पश्चिमी द्वार पर आ जाए। दूसरी ओर नेपोलियन ने अपने नौसेना कमांडरों को अवरोध तोड़कर वेस्टइंडीज पहुँचकर अंग्रेजों को हानि पहुँचाने का आदेश दिया। जब नेल्सन ने यह सुना कि विलेन्यू घेरा तोड़कर निकल गया है तो नेल्सन पीछा करते हुए अलिकजिंड्रिया पहुँचा। वहाँ पर भी शत्रु को न पाकर माल्टा पहुँचा और सारडीनिया के दक्षिण में शत्रु की प्रतीक्षा करने लगा। वहीं पर उसे विलेन्यू के वेस्टइंडीज जाने का समाचार मिला। नेपोलियन की यह योजना थी कि वह अवरोध तोड़कर मारटिनिक (Martinique) में एकत्रित हो और उसैंट पहुँचकर अंग्रेजी बेड़े पर आक्रमण करे।

इस युद्ध में फ्रांस की ओर से विलेन्यू तथा इंग्लैंड की ओर से नेल्सन मुख्य रूप से था। विलेन्यू नेल्सन से आयु में छोटा था। यद्यपि विलेन्यू एक योग्य सैनिक था, परंतु वह सेनापति के योग्य नहीं था। दूसरी ओर नेल्सन बहुत ही साहसी एवं योग्य सेनापति था। विलेन्यू में सबसे बड़ा दोष यह था कि वह नेल्सन से आतंकित था। इसी कारण

जब वह कैडिज पहुँचा तो स्पेन के बेड़े को बिना साथ लिये ही पश्चिम की ओर चल दिया। जब नेल्सन को यह समाचार मिला तो वह विलेन्यू के पीछे लग गया। उसका यह कार्य नेपोलियन की योजना के पक्ष में था। जब नेल्सन वेस्टइंडीज पहुँचा तो उसके आने का समाचार पाकर विलेन्यू यूरोप की ओर भाग खड़ा हुआ, यद्यपि उसे यह आदेश थे कि वह वहाँ 35 दिन रुककर फिराल पहुँचे और वहाँ से 15 जलयानों व ब्रेस्ट के 21 अवरुद्ध जलयानों सहित इंग्लिश चैनल पहुँचे। इधर नेल्सन भी 19 जुलाई को जिब्राल्टर पहुँचा। वहाँ से 3 अगस्त को उसे उसैंट पहुँचने का आदेश मिला।

जब इंग्लैंड की नौसेना को यह पता चला कि विलेन्यू विस्के (Wiscay) की ओर भाग आया है, तो उसने इंग्लिश चैनल की सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत किया तथा अवरोध करनेवाले जलयानों को वापस बुला लिया। इधर विलेन्यू की ब्रेस्ट जानेवाले मार्ग पर अंग्रेजों की नौसैनिक टुकड़ी से मुठभेड़ हो गई, जिसमें विलेन्यू को काफी हानि उठानी पड़ी। इसके बाद वह 1 अगस्त, 1805 ई. को फिराल पहुँचा। वहाँ उसे नेपोलियन का यह आदेश प्राप्त हुआ कि वह ब्रेस्ट अथवा राकफोर्ट की नौसैनिक टुकड़ी के साथ आयरलैंड और स्काटलैंड का चक्कर लगाकर डच स्क्वैडर्न से मिले तथा स्टेट ऑफ डोबर पर अपना अधिकार जमा ले। यदि इस कार्य में सफलता न मिले तो कैडिज आ जाए। 17 जुलाई को एलीमंड (Allemond) राकफोर्ट से विलेन्यू को मिलने के लिए चल दिया था, परंतु विलेन्यू को इसकी सूचना नहीं दी गई।

जब विलेन्यू ने एलीमंड के जलयानों को आते हुए देखा तो उन्हें शत्रु के जलयान जानकर वह दक्षिण की ओर बढ़ने लगा। यदि इसी समय वह अपने इस बेड़े से भी मिल जाता तो शायद युद्ध की परिस्थिति दूसरी ही होती।

विलेन्यू जब कैडिज पहुँचा तो वहाँ उसके जलयानों को रोक दिया गया। उधर नेपोलियन यह सोच रहा था कि विलेन्यू अपनी निर्धारित योजना के अनुसार कार्यवाही कर रहा है। इसलिए वह आस्ट्रिया और रूस पर आक्रमण की योजना बना रहा था। जब इंग्लैंड में यह समाचार पहुँचा कि विलेन्यू कैडिज पहुँच गया है तो नेल्सन ने कलिंगवुड के बेड़े से मिलकर नेतृत्व सँभाला तथा उनके अधिकारियों को एकत्रित किया और आक्रमण की नई योजना से उन्हें अवगत कराया। यह योजना इस मान्यता पर आधारित थी कि युद्ध के समय नेल्सन के पास 40 जलयान होंगे और विलेन्यू के पास 46 जलयान। नेल्सन ने अपने जलयानों की 16-16 जलयानों की दो पंक्तियाँ बनाईं तथा शेष 8 जलयानों को आरक्षित दल के रूप में लगाया। दोनों टुकड़ियों को स्वतंत्र रूप से कार्य करना था। एक टुकड़ी का नेतृत्व स्वयं नेल्सन ने सँभाला तथा दूसरी टुकड़ी की बागडोर कलिंगवुड को सौंपी।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस सामुद्रिक संग्राम में इंग्लैंड के पास कुल मिलाकर लगभग 40 जलयान थे,

जिन्हें इस प्रकार विभक्त किया गया था—

प्रथम पंक्ति स्वयं नेल्सन के नेतृत्व में—16 जलयान,
द्वितीय पंक्ति कलिंगवुड के नेतृत्व में—16 जलयान,
आरक्षित पंक्ति के रूप में—8 जलयान।

फ्रांसीसी सेना के पास इस युद्ध के समय केवल 33 जलयान ही शेष रह गए थे, जिन्हें उसने भी दो पंक्तियों में विभक्त कर रखा था—

प्रथम पंक्ति स्वयं विलेन्यू के नेतृत्व में—21 जलयान,
द्वितीय पंक्ति ग्रेविना (Gravina) के नेतृत्व में—12 जलयान।

तुलनात्मक दृष्टिकोण से ब्रिटिश नौसेना की स्थिति सुदृढ़ थी।

सामरिक स्थिति

विलेन्यू की कैडिज में इस समय स्थिति अच्छी नहीं थी, क्योंकि इस समय उसके पास न तो धन ही था और न ही आवश्यक सामग्री। साथ ही सीमित सैनिक संख्या होते हुए भी फ्रांसीसी तथा स्पेन के सैनिक अधिकारियों में भी निरंतर झगड़े होते रहते थे। इसके बावजूद विलेन्यू ने 24 सितंबर, 1805 को कूच की तैयारी की। उसी दौरान नेपोलियन ने इंग्लैंड पर आक्रमण करने का इरादा बदल दिया और विलेन्यू को भूमध्यसागर की ओर हटने का आदेश दिया। एडमिरल रोसली 10 अक्टूबर को मैड्रिक पहुँचा; परंतु विलेन्यू को इसकी सूचना नहीं मिली। इधर विलेन्यू ने 8 अक्टूबर को एक सभा बुलाई और शत्रु की बिलकुल सही-सही योजना का वर्णन किया; परंतु यह नहीं बताया कि शत्रु की योजनाओं को कैसे विफल करना है।

नेल्सन ने अपनी योजना इस प्रकार निर्धारित की कि हर परिस्थिति में शत्रु को पराजित करना है। उसने शत्रु के पृष्ठ भाग पर आक्रमण करने का इसलिए निश्चय किया कि आगे के जलयान उसकी सहायता करने में असमर्थ रहें। किसी निश्चित व्यूह-रचना को न अपनाने का उद्देश्य शत्रु को चकित करना था। उसी समय विलेन्यू ने कैडिज छोड़ने का निश्चय करके 19 अक्टूबर, 1805 को कूच का आदेश दिया। जब नेल्सन को इसका समाचार मिला तो उसने भी अपने बेड़े तैयार करने आरंभ कर दिए। 21 अक्टूबर को प्रातःकाल नेल्सन को शत्रु के जिब्राल्टर की ओर बढ़ने की सूचना मिली तो उसने तुरंत दो टुकड़ियों में बेड़े को बढ़ने का आदेश दिया। यह देखकर विलेन्यू ने अपने बेड़े को इस प्रकार घूमने का आदेश दिया कि कैडिज उसके पृष्ठ भाग में हो जाए। इस कार्य में विलेन्यू के सैनिक हतोत्साहित अवश्य हो गए।

नेल्सन व कलिंगवुड दो दलों में आगे-पीछे शत्रु की ओर बढ़े। नेल्सन शत्रु के अग्र भाग के मध्य की ओर और कलिंगवुड शत्रु के पृष्ठ भाग के अग्र भाग की ओर था। योजना में इस परिवर्तन का कारण यह था कि नेल्सन ने यह समझा कि शत्रु कैडिज वापस जा रहा है।

वास्तविक संघर्ष

21 अक्टूबर, 1805 की सुबह लगभग 11.45 बजे पहला फायर ब्रिटिश जलयान द्वारा आरंभ करके युद्ध का श्रीगणेश हो गया। कलिंगवुड ने रॉयल सोवरन नामक जलयान को विलेन्यू की पंक्ति में प्रवेश करा दिया, जिससे शत्रु को भारी आघात हुआ; परंतु वह शत्रु के बीच में घिर गया। इसके बाद एक के बाद दूसरे ब्रिटिश जलयान
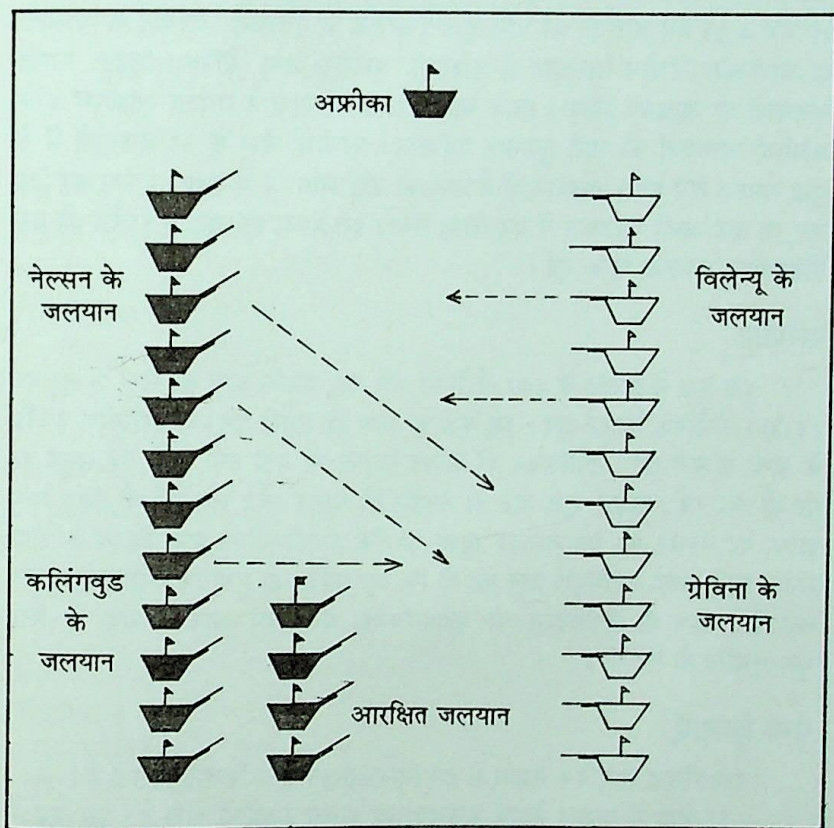
ट्राफलगर का संग्राम—1805 ई.

फ्रांसीसी जलयानों के बेड़े में प्रवेश करने लगे तथा दोनों के मध्य जोरदार संघर्ष शुरू हो गया था। इसी के साथ दोपहर बाद लगभग 3 बजे फ्रांसीसी सेना के 15 में से 10 जलयान पकड़कर नष्ट कर दिए गए। कुल 5 जलयान बचने में सफल हो सके थे।

कलिंगवुड के आक्रमण के लगभग 20 मिनट पश्चात् नेल्सन ने शत्रु पर आक्रमण किया तथा विलेन्यू की तलाश में शत्रु के सबसे बड़े जलयान की ओर रुख किया। उसी

समय इस बड़े जलयान में विलेन्यू का झंडा लगा हुआ दिखाई दिया। उसी दौरान उसके दो जलयानों ने 'व्यूसेंटा' पर आक्रमण किया तो नेल्सन ने 'रिडाउटेबल' नामक जलयान पर अपना प्रत्याक्रमण किया। दोनों जलयान एक-दूसरे के साथ बुरी तरह गुँथ गए, जिससे दोनों पक्षों के सैनिकों ने एक-दूसरे के जलयान में चढ़ने का प्रयास किया। इसी समय इंग्लैंड के 'विक्टरी' नामक जलयान की गोलाबारी से घबराकर फ्रांसीसी सैनिक असफल हो गए। इसी बीच नेल्सन को घातक रूप से गोली लगी, जिससे वह सायं लगभग 4.30 बजे वीरगति को प्राप्त हुआ। इंग्लैंड के 'विक्टरी' जलयान के आक्रमण के साथ-साथ 'टेमरेन' जलयान ने फ्रांसीसी 'बुसेंटोर' तथा 'सेंटिस्मा ड्रिंडल' नामक जलयानों पर आक्रमण किया। इसके बाद ब्रिटिश जलयानों ने जोरदार आक्रमण करके फ्रांसीसी जलयानों को भारी नुकसान पहुँचाया। फ्रांसीसी सेना के 33 जलयानों में से युद्ध समाप्त होने पर 9 जलयान तो कैडिज की ओर भाग रहे थे तथा शेष नष्ट कर दिए गए, या उन्हें अपने अधिकार में कर लिया गया। इस प्रकार इस युद्ध में इंग्लैंड को एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हूई।

परिणाम

इस युद्ध में इंग्लैंड के 449 नौसैनिक मारे गए; जबकि फ्रांस की सेना के लगभग 14,000 नौसैनिक हताहत हुए। इस युद्ध के साथ ही समुद्री प्रभुसत्ता पूर्णरूपेण इंग्लैंड के हाथों में बनी रही। नेपोलियन की शक्ति कितनी भी बड़ी क्यों न हो, वह समुद्र-तट पर ही रुक गई। लड़ाई शुरू होते ही नेल्सन को घातक चोट लग गई थी, किंतु मृत्यु शय्या पर नेल्सन को यह जानकर खुशी थी कि उसकी जीवन-यात्रा विजय के साथ संपन्न हुई। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि यह साबित हो गया कि नेपोलियन अजेय नहीं है। साथ ही नेपोलियन की यूरोप-विजेता बनने की आकांक्षा सदा के लिए धूल-धूसरित हो गई थी।

सैन्य शिक्षाएँ

इस प्रसिद्ध सामुद्रिक संग्राम से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं।

1. युद्ध में कुशल नेतृत्व सफलता का सच्चा सहयोगी होता है। इस युद्ध में नेल्सन के कुशल नेतृत्व के बल पर ही इंग्लैंड को महत्त्वपूर्ण सफलता मिली। विलेन्यू नेल्सन के नाम से ही भयभीत था, जिससे उसे पराजित होना पड़ा।
2. आक्रामक पहल हमेशा युद्ध में सफलता के लिए सहायक होती है; क्योंकि इसके द्वारा जहाँ स्थान, समय तथा उत्साह का लाभ मिलता है वहाँ इच्छित कार्यवाही की भी पूरी छूट रहती है। ब्रिटिश सेना ने इसी सिद्धांत को अपनाकर ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।

3. युद्ध में योजना इस प्रकार से निर्धारित की जानी चाहिए कि युद्ध की परिस्थितियों के अनुरूप उसमें तुरंत ही परिवर्तन किया जा सके; जैसे नेल्सन ने शत्रु की स्थिति को देखकर अपनी योजना में परिवर्तन करके महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की।
4. युद्धों में मनोबल का विशेष योगदान होता है, जैसे ब्रिटिश सेना का मनोबल फ्रांस की सेना की तुलना में कहीं अधिक था। उच्च मनोबल स्वयं सुरक्षा की गारंटी देता है।
5. सहयोग का सिद्धांत अपनाकर ब्रिटिश जलयानों ने फ्रांसीसी सेना को भागने एवं हारने के लिए मजबूर कर दिया।

लिपजिग का संग्राम

(1813 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम अक्टूबर 1813 ई. में नेपोलियन के नेतृत्व में फ्रांस द्वारा प्रशा, रूस तथा आस्ट्रिया आदि देशों के मध्य हुआ; जिसमें नेपोलियन की पराजय हुई। जिस समय नेपोलियन मास्को से वापस आया उस समय यूरोप का वातावरण पूर्णतया परिवर्तित हो चुका था। लोगों में राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो चुकी थी; परंतु नेपोलियन को इस तथ्य का पता नहीं था, क्योंकि फ्रांस की जन-शक्ति उसके साथ थी। इसके साथ ही यूरोप के अधिकांश राज्य उसके अधिकार में थे। नेपोलियन ने वापस आते ही आस्ट्रिया से बातचीत आरंभ की; परंतु उसकी प्रशा की सेना के एक भाग के रूसियों से मिल जाने के कारण रूस एवं प्रशा के मध्य समझौता हो गया। इस कारण प्रशा राज्य की जनता में भी जोश आ गया। दूसरी ओर रूसी सेना वारसा में प्रवेश कर गई, जिससे वहाँ स्थित फ्रांसीसी सेना को एलबे नदी की ओर हटना पड़ा। उस समय नेपोलियन एक नई सेना संगठित करने में व्यस्त था।

अप्रैल 1813 ई. के मध्य तक सवा दो लाख से भी अधिक सैनिकों की सेना तथा 450 तोपें नेपोलियन के पास थीं। इतने थोड़े समय में इतनी बड़ी सेना संगठित करना और इतनी ही आरक्षित सेना के रूप में तैयार करना एक महान् कार्य था। इस सबके बावजूद केवल सेना ही बदलती हुई परिस्थितियों में विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं थी। नेपोलियन की इस सेना के विरुद्ध रूस की सेना में लगभग 1,10,000 सैनिक थे। जबकि इसमें 30,000 अश्वारोही सैनिक थे, इसके अतिरिक्त प्रशा के भी 80,000 सैनिक थे। नेपोलियन की योजना एलबे नदी पार करके 3,00,000 सैनिकों की सेना सहित स्केटिन पहुँचकर डेंजीक स्थित अपने सैनिकों को छुटकारा दिलाने की थी। इससे दो लाभ होते—प्रथम, युद्धक्षेत्र प्रशा में हो जाता तथा दूसरा, रूस एवं प्रशा की सेनाएँ आस्ट्रिया से दूर हो जातीं। परंतु यह योजना सैनिकों की कमी के कारण पूरी नहीं हो सकी।

दूसरा कारण यह था कि जर्मन जनता में भी राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो गई।

नेपोलियन की दूसरी योजना लिपजिग पहुँचकर ग्रेसडेंट जाने की थी, ताकि शत्रु एलबे नदी के पार खदेड़ा जा सके; परंतु अश्वारोही सैनिकों की कमी के कारण उसे नदी का सहारा लेना पड़ा।

इस अभियान के आरंभ में नेपोलियन की प्रथम मुठभेड़ ल्यूजेन तथा बाउजेन में

हुई तथा दोनों ही स्थानों में उसे सफलता प्राप्त हुई। परंतु यह सफलता निर्णायक नहीं थी। इसके बाद दोनों पक्षों के मध्य समझौता हो गया तथा युद्ध बंद कर दिया गया। जून में नेपोलियन ड्रेसडेन वापस आया तथा एलबे नदी को अपना आपूर्ति-आधार बनाने का निश्चय किया। इस दौरान मित्र राष्ट्र भी अपनी गतिविधियों में लगे रहे और उन्होंने आस्ट्रिया को मिलाने के बाद बर्नाडेट को भी अपनी ओर मिला लिया। इसके साथ ही सभी ने यह तय किया कि अकेले-अकेले कोई भी नेपोलियन से नहीं लड़ेगा, बल्कि सब मिलकर कार्यवाही करेंगे।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस ऐतिहासिक संग्राम में दोनों पक्षों में सैन्य-शक्ति इस प्रकार संगठित की गई थी—

नेपोलियन के पास उस समय तीन प्रकार की सेना थी—
पैदल सैनिक—4,00,000,
अश्वारोही सैनिक—40,000,
तोपों की संख्या—13,000।

मित्र राष्ट्रों के पास कुल मिलाकर सैनिक संख्या इस प्रकार थी—
पैदल सैनिक—5,00,000,
अश्वारोही सैनिक—50,000,
तोपों की संख्या—25,000।

मित्र राष्ट्रों ने अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त किया था—
(i) रक्वा जनवर्म के नेतृत्व में—होनिया की सेना,
(ii) ब्लूसर के नेतृत्व में—साइलेसिया की सेना,
(iii) बर्नाडेट के नेतृत्व में—उत्तर की सेना।

नेपोलियन को शत्रु की सैन्य-शक्ति का सही अनुमान नहीं था। इसीलिए उसने दक्षिण में ड्रेसडेन को आधार बनाकर प्रतिरक्षा की तथा हेमबर्ग की ओर से उत्तर में आक्रमण की योजना बनाई। इस आक्रमण के लिए सेना का एक भाग भी भेज दिया, जबकि उसके सेनापति इसके लिए सहमत नहीं थे। 15 अगस्त, 1813 को जब नेपोलियन को पता चला कि ड्रेसडेन खतरे में है तो उसने तुरंत ही मैकडोनेल को सेना की कमांड सौंपी और ब्लूसर के विरुद्ध कार्यवाही हेतु भेजा। इस जल्दबाजी में उससे एक भूल हो गई, जिसके कारण इस अभियान में वह पराजित हो गया। उसने अपने सेनापति को भी सेना के साथ स्टापलैंड पहुँचने का आदेश दिया। उसका विचार पहले आस्ट्रिया को कुचलने का था। जब वह स्टापलैंड पहुँचा तो पुनः समाचार मिला कि ड्रेसडेन खतरे में है। अतः अपनी अधिकांश सेना को भेजकर वह स्वयं भी वहाँ पहुँचा। उसकी दूसरी टुकड़ी दक्षिण की ओर बढ़ रही थी, यहीं उससे भूल हुई। वह अपनी एक

कोर को ड्रेसडेन की सहायता के लिए भेजकर स्वयं होइनिया की सेना नष्ट कर सकता था।

जब नेपोलियन ड्रेसडेन पहुँचा तो मित्र राष्ट्रों की सेना पीछे हटी; परंतु फ्रांस की उत्तर, दक्षिण तथा पूर्व में स्थित सेनाएँ मित्र राष्ट्रों द्वारा पराजित हो गईं, जिससे मित्र राष्ट्रों का उत्साह और भी बढ़ गया। इतना होने के बावजूद नेपोलियन बर्लिन पर अपना अधिकार करने की योजना के कार्यान्वयन का प्रयत्न करता रहा, किंतु सफलता नहीं मिली। क्योंकि उस समय उसकी सेना बिखर चुकी थी, जिसे एकत्रित करने में समय लगा। इधर मित्र राष्ट्रों का निरंतर दबाव बढ़ने लगा, परंतु विपक्षी सेना का कोई भी कमांडर नेपोलियन से जमकर सामना नहीं करता था।

5 सितंबर, 1813 को जब नेपोलियन पूर्व में ब्लूसर को ढकेलने में व्यस्त था तब स्कवाजनवर्ग पुनः लिपजिग की ओर बढ़ा; परंतु नेपोलियन के ड्रेसडेन वापस आने का समाचार पाकर पीछे हट गया। नेपोलियन ने उसका पीछा किया, परंतु उसकी दृढ़ प्रतिरक्षात्मक स्थिति के कारण उस पर आक्रमण नहीं कर सका। तब तक नेपोलियन को काफी क्षति पहुँच चुकी थी। नेपोलियन के लगभग 1,50,000 सैनिक मारे गए तथा लगभग 50,000 सैनिक बीमारी के शिकार हो गए।

फ्रांसीसी सेनानायक मार्शल नेय (Ney) ने यह समाचार भेजा कि बर्नट्रेंड एलबे नदी पार कर चुका है। यह समाचार सुनकर नेपोलियन ने पहले ब्लूसर और बर्नट्रेंड की सेनाओं को पराजित करने का निश्चय किया। इसी कारण उसने स्कवाजनवर्ग को आगे बढ़ने से रोकने के लिए न्यूरेट को लगाया और स्वयं उत्तर की ओर बढ़ा। परंतु तब तक ब्लूसर मैदान से खिसक गया था। 12 अक्टूबर को नेपोलियन ने लिपजिग पहुँचने का निश्चय किया, क्योंकि स्कवाजनवर्ग लिपजिग की ओर आगे बढ़ रहा था। 14 अक्टूबर को इसी उद्देश्य से उसने अपनी सेनाओं को लिपजिग के चारों ओर से संगठित किया।

विपक्षी सेनापतियों में ब्लूसर के अतिरिक्त बर्नट्रेंड तथा स्कवाजनवर्ग ही मुख्य रूप से थे। परंतु वे दोनों ही नेपोलियन का सामना करने में डर रहे थे। इसी कारण ब्लूसर सबसे आगे बढ़ा। जब 13 अक्टूबर, 1813 को ब्लूसर ने स्कवाजनवर्ग को यह समाचार भेजा कि तीनों सेनाओं द्वारा एक साथ आक्रमण हो सकता है तब स्कवाजनवर्ग ने रूस के जार के विवश करने पर अश्वारोही सैनिकों की एक टुकड़ी इसके निरीक्षण के लिए भेजी।

लिपजिग की स्थिति

अटलांटिक एवं भूमध्यसागर को मिलानेवाले जिब्राल्टर के निकट लिपजिग एक छोटा-सा नगर था, जिसका प्रतिरक्षात्मक प्रबंध प्राचीन ढंग का था। उसके आसपास छोटी-छोटी बस्तियाँ थीं। पश्चिम की ओर प्लेसी और एक्सटन नदियाँ बहती थीं,

जिनकी धाराओं का जाल-सा बिछा हुआ था। इसी कारण स्थान-स्थान पर पुल बने हुए थे। प्रमुख पुल लेनडिना पर बना हुआ था। उत्तर की ओर पार्था नदी थी तथा दक्षिण की ओर निचली पहाड़ियों की पंक्ति थी। मित्र राष्ट्रों की योजना यह थी कि ब्लूसर उत्तर-पश्चिम से आगे बढ़ेगा और तीन टुकड़ियाँ एक साथ दक्षिण तथा पश्चिम से आक्रमण करेंगी। इधर नेपोलियन ने यह अनुमान लगाया कि ब्लूसर 16 अक्टूबर तक आक्रमण नहीं करेगा। उसने ब्लूसर को समझने में भूल की थी। इस कारण उसकी योजनाएँ विफल हो गईं।

वास्तविक संघर्ष

इस संग्राम की प्रमुख मुठभेड़ें माकर, लिंडिना क्वाऊ और डालिज में हुईं। जैसे ही उत्तरी क्षेत्र में नेपोलियन के सैनिक आक्रमण के लिए आगे बढ़े, उन्हें ब्लूसर के अग्रिम दस्तों द्वारा पीछे खदेड़ दिया गया। मित्र राष्ट्रों का लिंडिना में काफी दबाव बढ़ गया था, जिससे नेपोलियन एवं उसके सेनापति नेय (Ney) ने बराबर अपने प्रयास जारी रखे। इसी उद्देश्य से उसने अपनी सेना के 2 डिवीजन लगातार इस ओर लगाए रखे। दक्षिण की ओर प्रातः लगभग 9 बजे मित्र राष्ट्रों ने चार चरणों में आक्रमण किया, परंतु उन्हें पीछे धकेल दिया गया। 11 बजे फ्रांसीसी सेना का अधिकार मार्कलेवरी पर हो गया। उस समय नेपोलियन की योजना थी कि शत्रु के केंद्र को तोड़कर उस पर पैदल सेना का आक्रमण किया जाए तथा दाहिनी ओर मैकडोनेल द्वारा हमला करके उसे नष्ट कर दिया जाए। किंतु नेपोलियन को वहाँ से हटना पड़ा, जिसके कारण उसकी पैदल सेना द्वारा तुरंत आक्रमण न किया जा सका। फलतः म्यूराट में शत्रु ने सहायता पाकर प्रत्याक्रमण किया और म्यूराट तथा लारेस्टन दोनों जगहों से नेपोलियन के तोपखाने को पीछे धकेल दिया इस अव्यवस्था के कारण फ्रांस की अन्य टुकड़ियों को भी पीछे हटना पड़ा।

16 अक्टूबर को जब युद्ध थम गया तो नेपोलियन को ज्ञात हुआ कि 'बवेरिया' प्रांत भी शत्रु राष्ट्रों से मिल गया है। साथ ही वह उसकी संचार-व्यवस्था को भी भंग करना चाहता है। यह सुनकर नेपोलियन ने वापस लौटने का निश्चय किया और समय पाने के लिए मोरवेल्ट को संदेश लेकर भेजा, जिसका कोई परिणाम नहीं निकला। तब नेपोलियन ने अपने एक सेनापति को आदेश दिया कि वह एक कोर सहित वापस लौटनेवाले मार्ग को साफ कर दे। अपनी जिद के कारण उसका इरादा 18 अक्टूबर से पहले हटने का नहीं था। यहाँ भी उससे भूल हो गई। अब भी उसके पास 1,60,000 सैनिकों की सेना थी। वह लौटकर फ्रांस के पूर्वी सीमांत पर सरलता से मोरचेबंदी कर सकता था।

17 अक्टूबर को दोनों पक्ष पुनः तैयारी में जुटे रहे। मित्र राष्ट्र बर्नाडेट की प्रतीक्षा करते रहे। उनकी योजना दूसरे दिन 18 अक्टूबर को छः तरफ से आक्रमण करने की थी। 8 बजे प्रातःकाल ही गोलाबारी शुरू हो गई तथा लिपजिग के चारों ओर जोरदार

आक्रमण आरंभ हो गए। इस अभियान में नेपोलियन के अग्रिम सैनिक दस्ते धीरे-धीरे पीछे हटते रहे। मित्र राष्ट्रों के सेनापति बर्नाडेट लगभग 3 बजे पहुँचे तो फ्रांस की सेना पर पुनः आक्रमण हुआ, जिसे नेपोलियन ने प्रत्याक्रमण करके पीछे धकेल दिया। उस समय फ्रांसीसी सेना दृढ़ता के साथ डटी हुई थी। जब उस दिन का युद्ध बंद हुआ तो रात्रि में नेपोलियन ने पीछे हटने के आदेश जारी किए। उधर जब ब्लूसर को बर्नाडेट के बारे में पता लगा तो उसने अपनी एक कोर मर्से तथा हार्न पर अधिकार करने के लिए भेज दी। नेपोलियन के लिए पश्चिम की ओर पीछे हटने का मार्ग अब भी खुला हुआ था। रात्रि के 2 बजे फ्रांसीसी सेनाएँ कानविज, प्राब्सथीटा और स्टाटिटिज खाली करके पीछे हटने लगीं। मैकडोनेल को 30,000 सैनिक लेकर लिपजिग में शत्रु का अवरोध करना था।

19 अक्टूबर को प्रातः लगभग 7 बजे पुनः मित्र राष्ट्रों का जोरदार आक्रमण आरंभ हो गया। जब नेपोलियन को यह पता लगा कि बर्नाडेट वेसेनफेल पहुँचकर, अपना मोरचा तैनात कर स्थिति ले चुका है, तो उसने लिंडिना के पुल की ओर बढ़ना शुरू किया। लगभग 11 बजे पुल पार करके वह वहीं रुक गया। मित्र राष्ट्र उस शहर को नष्ट नहीं करना चाहते थे। अतः वास्तविक संघर्ष 11 बजे के बाद ही प्रारंभ कर दिया। लगभग 1 बजे नेपोलियन की सारी सेना लिंडिना के पुल को पार करे, उससे पहले ही उसके पुल को तोड़ दिया गया। मैकडोनेल और पानियाटोस्की उसी पार रह गए। किसी तरह से मैकडोनेल तो नदी पार कर गया; परंतु पानियाटोस्की डूब गया।

20 अक्टूबर को नेपोलियन ने वेसेलर्फेस पर नदी पार की तथा रास्ते में बबेलिया की सेना को कुचलता हुआ 9 नवंबर को वापस पेरिस पहुँचा और इस युद्ध की समाप्ति हो गई।

परिणाम

इस युद्ध के साथ ही राइन के पूर्व में संपूर्ण यूरोप पर से उसकी सत्ता का अंत हो गया। इस संग्राम के बाद नेपोलियन के सामने यह समस्या थी कि वह अपनी सेना को कैसे संगठित करे। सैनिक संख्या कम न होने पर भी साज-सज्जा का अभाव अवश्य था। उसकी दूसरी कठिनाई यह थी कि उसके अधिकांश सेनानायक लुई अठारहवें से मिल गए थे, जिससे योग्य सेनानायकों की बहुत कमी हो गई थी। इस प्रकार इस युद्ध के परिणामस्वरूप नेपोलियन का यूरोप पर अधिकार का अभियान बिखर कर रह गया। साथ ही अपनी भूलों के कारण उसकी प्रतिष्ठा भी गिर गई।

सैन्य शिक्षाएँ

1. इस ऐतिहासिक युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि जो भी सेनानायक युद्ध के सिद्धांतों एवं युद्ध की परिस्थितियों का सर्वेक्षण किए बिना आक्रामक पहल

करेगा उसे निश्चित रूप से असफलता हाथ लगेगी, जैसाकि नेपोलियन के साथ हुआ।

2. नेपोलियन की पराजय का एक प्रमुख कारण उसकी नियंत्रण-व्यवस्था भी थी, क्योंकि उसके युद्धक्षेत्र तथा सैनिक संख्या में बहुत अधिक बढ़ोतरी होने के ही कारण उन पर से उसका नियंत्रण दूर हो गया था।
3. नेपोलियन के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्रों का एकीकरण हो जाने से उसकी संचार-व्यवस्था भी भंग हो गई थी, जिसके लिए एक विशाल सैन्य-शक्ति की आवश्यकता थी।
4. युद्ध के निर्णयों से जिस सेनापति ने शिक्षा नहीं ग्रहण की, उसे पराजित अवश्य होना पड़ता है; जैसे नेपोलियन ने अपनी पिछली विजयों-पराजयों से सबक नहीं सीखा और उसे इस युद्ध में पराजित होना पड़ा।
5. जो प्रधान सेनापति अपने सहायक सेनापतियों की सलाह एवं निर्णय क्षमता की अवहेलना करता है, वह केवल संकट का सामना ही नहीं करता है; बल्कि पराजय भी सुनिश्चित कर लेता है, जैसे नेपोलियन के सेनापतियों की आदत इसके कारण केवल आदेश-पालन करने की रह गई, उनमें अपने आप कोई कार्य करने की क्षमता का ह्रास हो गया।
6. युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए शत्रु की गतिविधियों पर निगरानी रखते हुए तदनुसार कार्यवाही करनी चाहिए।
7. युद्ध में लक्ष्य का चुनाव तथा उस पर स्थिर रहना यह महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। नेपोलियन ने इस सिद्धांत की लगातार अवहेलना की, जिसके कारण उसे पराजित होना पड़ा। नेपोलियन ने अपनी योजनाओं को लगातार परिवर्तित किया, जिसके कारण ही उसे सफलता नहीं मिली।
8. अपने शत्रु को कभी भी कमजोर नहीं समझना चाहिए; जैसे नेपोलियन अपने आगे तथा अपनी सफलताओं के कारण शत्रु को कुछ नहीं समझता था, जो उसकी भारी भूल थी। इसी के कारण ब्लूसर के सामने उसे पराजित होना पड़ा।
9. विपक्षी सेनाओं ने सहयोग के सिद्धांत को अपनाकर नेपोलियन के विरुद्ध संयुक्त कार्यवाही की, जिसके परिणामस्वरूप नेपोलियन को अपने लक्ष्य में सफलता नहीं मिल सकी।
10. किसी भी युद्ध में उस राष्ट्र के नागरिकों एवं उनकी भावना की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इस युद्ध से संबद्ध पश्चिमी राष्ट्रों में उस समय राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो चुकी थी; परंतु नेपोलियन को इस तथ्य का ज्ञान नहीं था, जिसके कारण अंततः नेपोलियन को पराजित होना पड़ा।

वाटरलू का संग्राम
(1815 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम महान् सेनानायक नेपोलियन तथा अंग्रेज सेनानायक वेलिंग्टन के मध्य 18 जून, 1815 ई. को लड़ा गया। वाटरलू बेल्जियम की राजधानी बुसेल्स के दक्षिण में स्थित है। इस संग्राम का विशेष महत्त्व इसलिए है कि जिस नेपोलियन का लगभग समस्त यूरोप पर अधिकार हो गया था, उसे इस संग्राम में अपनी ही भूल के कारण पराजित होना पड़ा। जिस महान् योद्धा के नाम से अनेक सेनापति भयभीत हो जाते थे, आखिर उसे ही इस संग्राम में पराजय स्वीकार करनी पड़ी। यह उसके जीवन का अंतिम अभियान था। इस संग्राम में पराजित होने के पश्चात् वह फिर कभी उठ नहीं सका। यह युद्ध आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ, क्योंकि इसके साथ ही फ्रांसीसी सैनिक प्रवृत्ति एवं अधिनायकवाद पर यूरोपीय राष्ट्रवाद की भावना प्रबल हो गई तथा ब्रिटिश पद्धति की श्रेष्ठता भी प्रमाणित हो गई। इस युद्ध के साथ ही नेपोलियन की विशाल साम्राज्य की इच्छा का भी पतन हो गया।

लिपजिग के संग्राम में पराजय के पश्चात् नेपोलियन के सामने यह समस्या थी कि वह अपनी सेना को किस प्रकार संगठित करे? यद्यपि सैनिक संख्या में कमी नहीं थी, परंतु उनकी साज-सज्जा का अभाव अवश्य हो गया था। इसी दौरान उसके अनेक योग्य सेनापति लुई अठारहवें (Louis XVIII) से मिल गए थे तथा उसे फ्रांस की गद्दी पर बैठा दिया गया था। इन समस्याओं के बावजूद उसमें सैनिक-क्रांति का चिराग जगमगाता रहा और उसने कई लाख सेना संगठित कर ली!

दूसरी ओर मित्र राष्ट्रों को जैसे ही यह पता लगा कि नेपोलियन लगभग दस महीने तक निर्वासित जीवन बिताने के बाद एल्बा द्वीप से भाग निकला और फ्रांस वापस आ गया है, तो उन्होंने आपसी मतभेदों को भुलाकर नेपोलियन के विरुद्ध 9 मार्च, 1914 को चाउमोंट में एक व्यापक संधि की। इस संधि का मुख्य लक्ष्य भविष्य में यूरोप को नेपोलियन के अधीन न होने देना था। फ्रांस एवं समस्त यूरोप में नेपोलियन के सैनिकवाद से लोग बुरी तरह से परेशान हो चुके थे। नेपोलियन ने फ्रांस की जनता को यह संदेश दिया कि वह उसकी रक्षा के लिए वापस आया है और क्रांति से जो जनता को लाभ हुआ था, वह संकट में पड़ गया है। अतः आप सभी का सक्रिय सहयोग अति आवश्यक है; परंतु इसका विशेष लाभ नहीं हुआ। साथ ही उसने यह भी कहा कि भविष्य में वह शांति का मार्ग अपनाएगा; किंतु मित्र राष्ट्रों को उसके भाषण पर विश्वास

नहीं था।

नेपोलियन ने मित्र राष्ट्रों की सैनिक तैयारी का अनुमान लगाकर अपनी तैयारी भी शुरू कर दी। किंतु उसे इस बात का सही अनुमान नहीं था कि मित्र राष्ट्र जुलाई से पूर्व ही संगठित होकर उसके विरुद्ध अपना अभियान आरंभ कर देंगे। उसकी यह योजना थी कि वह एक-एक करके सभी देशों को अपना शिकार बना लेगा। उसने पूरे देश में लगभग 3,00,000 सैनिकों को भरती करके प्रशिक्षित करना शुरू कर दिया। उसने अपनी मैदानी सेना के साथ सीमावर्ती सेना को भी तैनात किया।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस निर्णायक युद्ध में दोनों पक्षों की सेनाएँ इस प्रकार संगठित थीं—

ड्यूक ऑफ वेलिंग्टन के अधीन सेना—

पैदल सैनिक—49,608,

अश्वारोही सैनिक—12,402,

तोप सेना—5,645,

तोपें—156,

कुल सैनिक संख्या—67,655।

इसमें सिर्फ 24,000 ब्रिटिश सैनिक थे। साथ ही लगभग 6,000 जर्मन लीजन के सैनिक भी ड्यूक के साथ थे। ये प्राचीन जर्मन लीजन सैनिक अत्यंत वीर एवं बलिदानी थे तथा प्रत्येक परिस्थिति में डटकर मुकाबला कर सकते थे। ब्लूसर के नेतृत्व में प्रशा की सेना में लगभग 80,000 सैनिक थे।

वाटरलू के मैदान में नेपोलियन की सेना—

पैदल सैनिक—48,950,

अश्वारोही सैनिक—15,765,

तोप सेना—7,232,

तोपें—246,

कुल सैनिक संख्या—71,947।

नेपोलियन का अनुमान था कि विपक्षी सेना 1 जुलाई से पूर्व आगे नहीं बढ़ सकेगी, इसीलिए वह वेलिंग्टन को ब्लूसर के मिलने के पूर्व ही पराजित करने के लिए तैयार हो गया। जब ब्लूसर को नेपोलियन के इरादे का पता लगा तो वह सामप्रेफ की ओर आगे बढ़ा। 15 जून को नेपोलियन सांब्रे को पार करके लिग्नी नामक स्थान पर ब्लूसर की सेना को पराजित करने में सफल हो गया। इस प्रकार इस युद्ध का शुभारंभ हो गया। उधर वेलिंग्टन ने बड़ी चौकसी के साथ अपनी संचार-व्यवस्था को सुरक्षित रखते हुए सेना को संकेंद्रित करना आरंभ कर दिया। उस समय उसका शार्लेरोई पर अधिकार हो गया था।

जिस समय नेपोलियन शार्लेरोई पर अधिकार करके आगे बढ़ा तो वेलिंग्टन आश्चर्यचकित हो गया, क्योंकि उसे यह भ्रम हो गया था कि शायद उसने ब्लूसर की सेना से संपर्क पूर्णतः काट दिया है। नेपोलियन ने ब्लूसर की कुछ सैनिक चौकियों को ही पराजित करके अपनी सेना को आगे बढ़ा लिया था। नेपोलियन की यह योजना थी कि ब्लूसर के बाएँ पार्श्व को अपनी अश्वारोही सेना के द्वारा रोककर उसके मध्य तथा दाहिने पार्श्व को नष्ट कर दिया जाएगा। उसका इरादा सामने तथा पीछे दोनों ओर से एक साथ आक्रमण करने का था, जिससे शत्रु बाईं ओर स्थित लिग्नी की तरफ लौट जाए और उसकी मुलाकात वेलिंग्टन से न हो सके; परंतु दुर्भाग्यवश नेपोलियन की यह योजना सफल न हो सकी।

16 जून की इस कार्यवाही के दौरान पर्शियन सेनापति के बुरी तरह घायल हो जाने के कारण उसे वाव्रे (Wavre) ले जाया गया। वहाँ उसने वेलिंग्टन से मिलने का प्रयास किया। दूसरी ओर वेलिंग्टन को यह सूचना मिली की ब्लूसर वाव्रे की ओर पीछे हट रहा है। अतः उसने भी पीछे हटने का निश्चय किया तथा ब्लूसर को सूचना भेजी कि वह मांटसेंटजोन लौट रहा है। यदि उसे वहाँ पर ब्लूसर की सहायता मिली तो निश्चय ही युद्ध करेगा।

इधर फ्रांसीसी सेनापति नेय (Ney) की अकर्मण्यता के कारण ही वेलिंग्टन सुरक्षित पीछे की ओर हटने में कामयाब हो गया। लेकिन जब वहाँ नेपोलियन पहुँचा तो उसने वेलिंग्टन का पीछा किया, परंतु भीषण वर्षा एवं तूफान के कारण उसे भी सफलता नहीं मिली, जिससे नेपोलियन को विवश होकर वहीं रुकना पड़ा।

18 जून को दोपहर लगभग 2 बजे नेपोलियन को यह सूचना मिली कि ब्लूसर की सेना वाव्रे की ओर बढ़ रही है तो उसने तुरंत ही अपने सेनापति ग्राऊची को उसका पीछा करने का आदेश दिया, परंतु देरी के कारण ब्लूसर की सेना वाव्रे सुरक्षित पहुँच चुकी थी। पर्शियन सेना का केवल एक दल ही वाव्रे में रुका तथा शेष वाटरलू के मैदान की ओर बढ़ गए। फ्रांसीसी सेनापति ग्राऊची उसी दल के साथ उलझा रहा। यदि ग्राऊची उसी समय नेपोलियन की सहायता के लिए बढ़ जाता तो युद्ध की स्थिति कुछ और ही होती। उधर वेलिंग्टन एवं ब्लूसर की सेना एक साथ वाटरलू के मैदान में पहुँची।

नेपोलियन ने अपनी सेना के साथ वाटरलू के मैदान में पहुँचकर भूमि का निरीक्षण किया तो उसको सलाह दी गई कि इस समय भूमि गीली है, अतः तुरंत आक्रमण करना ठीक नहीं होगा। यही नेपोलियन की भारी भूल थी, क्योंकि उस समय वेलिंग्टन अकेले ही था, उसे अभी ब्लूसर की सेना का सहयोग नहीं मिला था। जो नेपोलियन यह कहता था कि "In future I can lose a battle, but not a single minute." (भविष्य में मैं एक युद्ध को दाँव में लगा सकता हूँ, किंतु एक मिनट का समय युद्ध के दौरान नहीं बरबाद करूँगा।) उसी नेपोलियन ने समय का

ध्यान नहीं रखा। यदि वह उसी क्षण आक्रमण कर देता तो ब्लूसर की सेना के आने के पूर्व ही वेलिंग्टन पराजित हो जाता।

वास्तविक संघर्ष

जिस समय संघर्ष आरंभ होना था उस समय वेलिंग्टन की सेना की स्थिति तथा नेपोलियन की सेना की स्थिति इस प्रकार से थी—वेलिंग्टन ने सबसे आगे अपनी पैदल सेना को लगा रखा था तथा दोनों पार्श्व व पृष्ठ भाग में अपनी अश्वारोही सेना को तैनात किया था। दूसरी ओर नेपोलियन ने अपनी सेना के अग्र भाग में तोपों को तैनात किया, उसके पीछे पैदल सेना व उसके दाएँ व बाएँ पार्श्व के साथ पृष्ठ भाग में भी अश्वारोही सेना को तैनात किया। वेलिंग्टन की प्रथम रक्षा-पंक्ति पहाड़ी के पीछे की ओर सुरक्षित थी।

वाटरलू का युद्ध, 1815 ई.
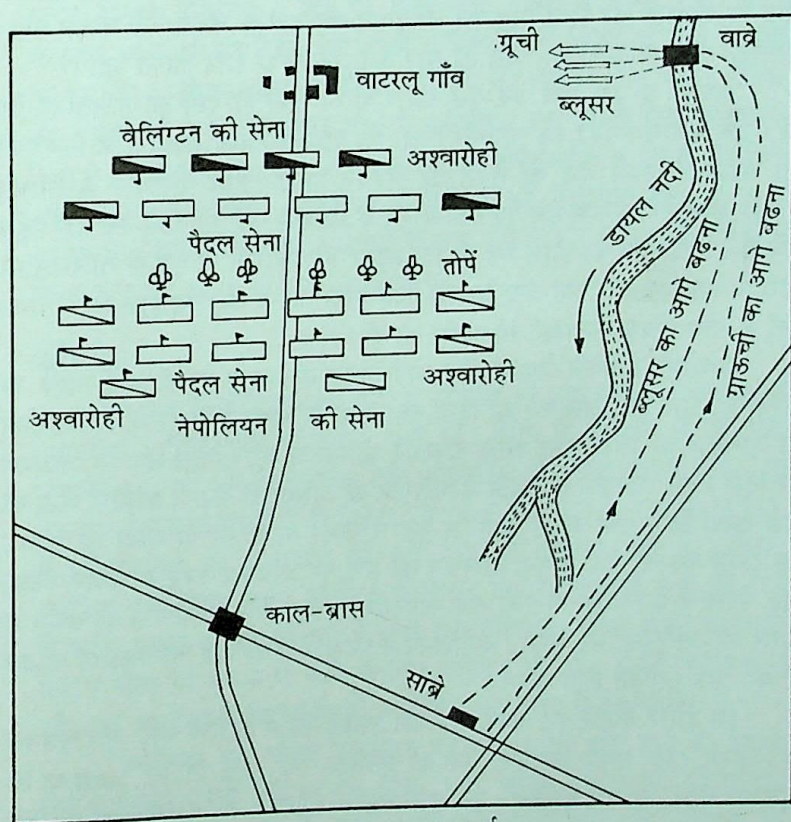
18 जून को प्रातः 11.30 बजे नेपोलियन की तोपों के फायर से संग्राम शुरू हो गया। नेपोलियन की योजना के अनुसार होमोमांट पर शत्रु की सेना के सामने मात्र प्रदर्शन करना था; परंतु उसी दौरान उसकी सेना ने अधिकार करने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया, जिससे युद्ध की स्थिति ही उलट गई। अब नेपोलियन ने वेलिंग्टन के मध्य भाग पर आक्रमण करने का निश्चय किया; किंतु उसे दाहिने पार्श्व से पर्शियन सेना के आने का समाचार मिला तो उसने इस परिस्थिति का सामना करने के लिए अपने सेनापति ग्राऊची को बुलवाया तथा अपनी एक टुकड़ी दाएँ पार्श्व की सुरक्षा के लिए लगा दी। अपने सेनापति नेय को भी तुरंत आक्रमण का आदेश दिया; परंतु दोषपूर्ण समरतंत्र के कारण फ्रांसीसी सेनापति डी-एरलान (D'Erlon) ने भी अपनी सेना को पहाड़ियों की ओर आगे बढ़ाया, परंतु चढ़ाई के कारण गति धीमी हो गई, अतः उसे भी मार खाकर पीछे हटना पड़ा। ब्रिटिश अश्वारोही सेना ने तेजी के साथ घाटी पार करके फ्रांसीसी सेना पर आक्रमण कर दिया, परंतु शत्रु का दबाव बढ़ जाने के कारण उसे लौटना पड़ा। वेलिंग्टन की सेना काफी आगे बढ़ गई थी। अतः उसे काफी हानि उठानी पड़ी।

लगभग 3 बजे सायं जब युद्ध थम गया तो दोनों ही पक्षों की हालत दयनीय थी। जब नेपोलियन को यह समाचार मिला कि ग्राऊची उसकी सहायता के लिए नहीं आ सकता तो उसने युद्ध को रोकने का निश्चय किया। उधर वेलिंग्टन के लगभग 2,500 अश्वारोही सैनिक मारे गए तथा ब्लूसर के एडवांस गार्ड भी अभी तक नहीं पहुँच पाए थे। नेपोलियन का इरादा यह था कि ब्लूसर की सहायता के पूर्व ही वेलिंग्टन पर जोरदार आक्रमण कर दिया जाए, जिसके लिए उसने अपनी व्यवस्था शुरू कर दी तथा इसी के साथ भीषण गोलाबारी भी आरंभ कर दी।

फ्रांसीसी सेनापति नेय ने बिना नेपोलियन की आज्ञा के ही बाएँ पार्श्व पर अश्वारोही सेना द्वारा आक्रमण कर दिया तथा जोश में आकर वेलिंग्टन के तोपखाने पर भी अधिकार कर लिया; परंतु उसके तोपखाने को नष्ट न करके पैदल सेना पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के जवाब में वेलिंग्टन की अश्वारोही सेना ने फ्रांसीसी सेना को पीछे खदेड़ दिया तथा अपनी तोपों पर पुनः अधिकार करके उस पर फायर कर दिया। इस दौरान नेय की सेना ने पुनः वेलिंग्टन की सेना पर अधिकार करने का प्रयास किया; परंतु पैदल व अश्वारोही सेनाओं तथा तोपखाने का एक साथ उपयोग न हो सकने के कारण वह आगे नहीं बढ़ पाया। नेपोलियन ने पैदल सेना को जब आगे बढ़ाया तो उसे भी बुरी तरह पराजित होना पड़ा।

इस दौरान नेपोलियन अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने के लिए चारों ओर घूम रहा था। उसने इसी समय सेनापति नेय को ला-हाए सेंटे (La Haya Sainte) पर अधिकार करने का आदेश दिया। इस कार्यवाही में सेनापति नेय को सफलता भी मिल गई, परंतु उसके सैनिक बुरी तरह से थक चुके थे। इसी कारण उसने नेपोलियन से तुरंत सहायता देने का अनुरोध किया; परंतु दुर्भाग्यवश नेपोलियन सहायता नहीं दे सका।

यदि नेय को नेपोलियन की सहायता मिल जाती तो निश्चय ही वेलिंग्टन पराजित हो जाता। स्थिति की गंभीरता का अध्ययन करके वेलिंग्टन ने स्वयं इस नाजुक मोरचे को आकर सँभाला, जो नेपोलियन के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुआ। यही नेपोलियन की दूसरी भारी भूल सिद्ध हुई।

नेपोलियन की स्थिति भी अत्यंत दयनीय थी। उसे दाहिने तथा पीछे दोनों ओर से शत्रु के आने का भय बना हुआ था। इसी कारण वह अपने सेनापति नेय को उस समय सहायता नहीं दे सका था। बाद में गार्ड की 8 बटालियनें नेय की सहायता के लिए भेजीं; परंतु तब तक युद्ध की परिस्थिति ही कुछ और हो चुकी थी, क्योंकि अगले अभियान में सेनापति नेय को कोई सफलता नहीं मिली, बल्कि भारी हानि उठानी पड़ी।

जिस समय फ्रांसीसी सेना का वेलिंग्टन पर अंतिम आक्रमण होने वाला था उसी समय वेलिंग्टन को सैनिक सहायता प्राप्त हो गई थी, जिससे उसने फ्रांसीसी दलों को खदेड़ दिया। वेलिंग्टन ने शत्रु को अस्त-व्यस्त देखा तो अपनी सेना को अंतिम आक्रमण का संकेत कर दिया तथा अपनी लगभग समस्त अश्वारोही सेना के साथ शत्रु पर टूट पड़ा। परिणामस्वरूप नेपोलियन की सेना को पराजित होना पड़ा। सैनिक पीछे की ओर भागने लगे। परंतु मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन तथा उसकी सेना को भागने नहीं दिया। 15 जुलाई, 1815 ई. को एक ब्रिटिश नौसेनापति के समक्ष नेपोलियन ने आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों ने नेपोलियन को सेंटहेलेना द्वीप पर 3 सैनिक अधिकारी, 1 चिकित्सक तथा 12 सेवकों के साथ बंदी के रूप में रखा, जहाँ लंबी बीमारी के कारण 5 मई, 1821 को उसकी मृत्यु हो गई।

परिणाम

इस युद्ध के परिणामस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य को जहाँ ख्याति प्राप्त हुई वहाँ उसे अत्यधिक आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी थी। यूरोप के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ गया और निरंकुशवाद तथा प्रजातांत्रिक प्रणालियाँ पनपने लगीं। यूरोप में एक बार सैनिक वातावरण में शिथिलता आ गई। नेपोलियन के पतन के पश्चात् यूरोप में प्रतिक्रियावाद का बोलबाला रहा और यूरोप के विभिन्न देशों में क्रांतियाँ हुईं। स्वीडिश, रूसी, स्विज, जर्मन, ऑस्ट्रिन, इटालियन, स्पेनिस, पुर्तगाली सभी, जो नेपोलियन के कठोर शासन से तंग आ गए थे, सभी देश सम्मिलित होकर अपने स्वाभिमान एवं राष्ट्रीय गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गए। सर्वत्र राष्ट्रीयता उत्तेजित हुई। एक आधुनिक जर्मन विकार की आलोचना इस प्रसंग में उल्लेखनीय है—

"नेपोलियन एक भीषण उल्कापात की तरह आया और लुप्त हो गया। उसने जितना बनाया उससे अधिक नष्ट किया, परंतु अंततः यह मानना पड़ेगा कि उसने अलसाए यूरोप को नींद से जगा दिया और राष्ट्रों की भावी एकता का मार्ग दिखाया।"

सैन्य शिक्षाएँ

इस ऐतिहासिक एवं निर्णायक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. नेपोलियन की महत्त्वाकांक्षा उसकी पराजय की एक प्रमुख कारण थी। नेपोलियन ने कभी दूसरे सेनापत्तियों की सलाह पर ध्यान नहीं दिया तथा अपने अधीन सैनिकों को केवल अनुपालक बनाया, जिससे उनकी निर्णायक क्षमता समाप्त हो गई थी। वे केवल आज्ञापालक सेनापति ही रह गए थे।
2. जो नेपोलियन समय का इतना अधिक पाबंद था वही इस युद्ध में समय की अवहेलना करता हुआ देखा गया, जिसके कारण उसे पराजित होना पड़ा। युद्धों में एक-एक क्षण अपना विशेष महत्त्व रखता है, इसको कभी नकारा नहीं जा सकता।
3. युद्ध में सेनाओं के साथ-साथ उस राष्ट्र की आंतरिक व्यवस्था भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसकी अवहेलना पर पराजय के अवसर बढ़ जाते हैं; जैसे नेपोलियन ने अपनी आंतरिक व्यवस्था पर ध्यान न देकर अपना लगातार विस्तार करना चाहा, जो उसकी पराजय का कारण बना।
4. युद्ध में सेनापतियों द्वारा की गई समरतांत्रिक भूलें सदैव पराजय के अधिक अवसर देती हैं; जैसे इस युद्ध में नेपोलियन की पराजय का प्रमुख कारण उसकी समरतांत्रिक भूलें ही थीं।
5. आपूर्ति-व्यवस्था युद्ध की संचालन-व्यवस्था का आधार है। इसके अभाव में सफलता की आशा करना व्यर्थ है। नेपोलियन की सेना का विस्तार हो जाने के कारण उसमें आपूर्ति-व्यवस्था का अभाव बना रहा।
6. नेपोलियन की सेना में गतिशीलता का अभाव रहा; जबकि यह युद्ध का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, जिसकी कभी भी अवहेलना नहीं की जा सकती है। अंग्रेजों ने इस सिद्धांत का विशेष रूप से ध्यान रखा।
7. युद्ध में आक्रामक पहल एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, जिसकी ओर नेपोलियन ने ध्यान नहीं दिया तथा उसे पराजित होना पड़ा।
8. नेपोलियन की सेना में उच्च कोटि के अनुशासन एवं मनोबल का नितांत अभाव था तथा सेनाओं में आपसी सहयोग का अभाव भी पराजय का एक प्रमुख कारण था।

रूस एवं जापान का संग्राम

(1904-05 ई.)

यह प्रसिद्ध सामुद्रिक युद्ध रूस एवं जापान के मध्य मुख्य रूप से दो कारणों से लड़ा गया। प्रथम कारण, जापान एशिया की शक्ति के रूप में तथा रूस यूरोपीय शक्ति के रूप में उभर रहा था। दूसरा, पश्चिमी देशों के प्रभुत्व को एशिया की शक्ति के रूप में जापान द्वारा चुनौती दी गई। दोनों के मध्य लड़ा जानेवाला यह युद्ध सीमित उद्देश्यवाला था। जापान यह चाहता था कि रूस को मंचूरिया से खदेड़कर उसे संधि के लिए मजबूर कर देगा; परंतु उसे इस बात का कतई आभास नहीं था कि वह रूस की शक्ति को ही विनष्ट करने में सफल हो जाएगा। मंचूरिया और जापान के मध्य अपनी संचार सेवाओं को बनाए रखने के लिए आवश्यकता थी कि प्रशांत महासागर पर जापान अपना नियंत्रण रखे। मंचूरिया की भूमि पहाड़ी थी तथा मैदानी क्षेत्र में कृषि भी होती थी। गरमियों में वहाँ का तापमान 50° से. हो जाता तथा सर्दियों में बहुत अधिक ठंड पड़ती। जुलाई, अगस्त तथा सितंबर में बहुत अधिक वर्षा होने के कारण कीचड़ एवं दलदल हो जाता, जिससे घोड़े आगे नहीं बढ़ पाते थे। इस सबके बावजूद सेना के लिए जलवायु अधिक बाधा नहीं थी, बल्कि संचार साधनों का अभाव ही मुख्य बाधा थी।

जापान के लिए पोर्ट आर्थर पर अधिकार सामरिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। यद्यपि 1894 में जापान ने पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया था, परंतु शक्ति की क्षीणता के कारण वह उस पर अधिकार को कायम नहीं रख सका। जापान के लिए पूर्ति का साधन समुद्री आवागमन था। अतः पोर्ट आर्थर पर आपूर्ति बनाए रखने के लिए समुद्र पर पूर्ण अधिकार होना आवश्यक था, जिससे मंचूरिया में रसद भेजना आसान ही नहीं, अपितु सुरक्षित भी हो जाता। यदि जापान की सेनाएँ मंचूरिया में पराजित भी हो जातीं तो सेनाओं को लौटाने के लिए कोरिया का क्षेत्र सुरक्षित रहता। इन्हीं कारणों से कोरिया पर अधिकार भी आवश्यक था। कोरिया के बाहर पोर्ट आर्थर था। अतः इस बंदरगाह पर जब तक रूसी नौसेना रहेगी तब तक कोरिया से पोर्ट आर्थर तक समुद्री मार्ग रूस के अधिकार में रहेगा।

किसी भी सैनिक कार्यवाही में आवागमन व्यवस्था की विशेष भूमिका रहती है। यही कारण था कि आवागमन के साधनों से रूस बहुत प्रभावित हुआ। मास्को से पोर्ट आर्थर तक 5,500 मील की दूरी रूस ने ट्रांस साइबेरियन रेलवे द्वारा तय की। यातायात एकतरफा (वन वे) था। मुकडन से पोर्ट आर्थर तक 262 मील लंबी सड़क थी तथा रेलवे

लाइन भी स्थायी नहीं थी। कमजोर होने के साथ ही युद्ध में काम आनेवाली समस्त सामग्री को पहुँचाने में भी रेलवे लाइन समर्थ नहीं थी। इसके अलावा एक बड़ी समस्या यह थी कि ट्रांस साइबेरियन रेलवे और पोर्ट आर्थर के मध्य 100 मील लंबी और 30 मील चौड़ी बेकाल झील भी पड़ती थी, जो नवंबर से अप्रैल तक जम जाती थी तथा इतनी सख्त होती थी कि उसके ऊपर से यातायात व्यवस्था आरंभ कर दी जाती थी। शेष दिनों में 100 मील का चक्कर लगाना पड़ता था। इस प्रकार मास्को से पोर्ट आर्थर तक एक बटालियन के पहुँचने में एक माह से अधिक समय लग जाता था।

इसके साथ ही युद्ध को प्रभावित करने के लिए कुछ तत्त्वों की भी विशेष भूमिका थी, जैसे—

(1) ट्रांस साइबेरियन रेलवे तथा पोर्ट आर्थर की रूसी नौसेना के मध्य संबंध-विच्छेद था। अतः रूस की रसदपूर्ति पोर्ट आर्थर के नौसैनिक अड्डे तक आसानी से नहीं पहुँच सकती थी।

(2) सर्दी में रूसी बंदरगाह व्लाडीवोस्टक बर्फ से जम जाता था, परंतु पोर्ट आर्थर बंदरगाह नहीं जमता था। इस प्रकार सर्दियों के पहले जापान पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लेता तो सर्दियों में व्लाडीवोस्टक पर स्थित जलयान-युद्ध बेड़ा पोर्ट आर्थर पर सहायता के लिए नहीं जा सकता था।

यदि जापान पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर ले और रूस का बाल्टिक बेड़ा वहाँ जाता तो वह भी रूसी सेना को सहायता नहीं दे सकता था, क्योंकि उस हालत में रूस के पास एक भी बर्फरहित बंदरगाह नहीं रहता। इस प्रकार रूस के पास समुद्री आक्रमण बाधाओं से रहित नहीं था, क्योंकि स्थल मार्ग से सेनाएँ भेजने से बेकाल झील मुख्य बाधा बन जाती थी।

जापान ने अपने सीमित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार योजना बनाई थी—रूस के अधिकार से पोर्ट आर्थर को छीनना और इसके लिए पोर्ट आर्थर पर स्थल मार्ग से आक्रमण करना। आक्रमण करनेवाली सेना की रक्षा के लिए पोर्ट आर्थर के उत्तर में एक संरक्षक सेना को उतारना होगा। जापान की दोनों सेनाएँ जापान में ही अपना आधार बनाए हुई थीं, अतः पीले सागर (Yellow Sea) पर जापानी अधिकार आवश्यक था।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस युद्ध में दोनों पक्षों की स्थल एवं नौसेना इस प्रकार थी—

(i) जापान के पास कुल नियमित सेना—4,00,000,
जापान के पास आरक्षित सेना का अभाव था।

(ii) रूस के पास कुल सक्रिय सेना—10,00,000,
रूस के पास कुल आरक्षित सेना—25,00,000।

नौसेना

जलयानों के प्रकार	जापान के पास	रूस के पास
प्रथम श्रेणी के जलयान	6	7
द्वितीय श्रेणी के जलयान	1	0
प्रथम श्रेणी के क्रूजर	8	9
द्वितीय श्रेणी के क्रूजर	12	0
तृतीय श्रेणी के क्रूजर	13	2
विध्वंसक	19	25
तारपीडो-युक्त नौकाएँ	85	17
तोप-युक्त जलपोत व नौकाएँ	16	12

रूस के 4 प्रथम श्रेणी के क्रूजर व्लाडीवोस्टक (Vladivostok) बंदरगाह पर खड़े थे तथा 1 क्रूजर चेमुलपो बंदरगाह (कोरिया) पर तैनात था। इसलिए रूस का जो शेष जहाजी बेड़ा पोर्ट आर्थर पर था वह जापान के जहाजी बेड़े की अपेक्षा कमजोर था। यदि रूस का बाल्टिक जहाजी बेड़ा पोर्ट आर्थर की सहायता के लिए आ जाता तो वह जापान के बेड़े की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो जाता। अतः जापान के लिए आवश्यक था कि बाल्टिक फ्लीट आने के पूर्व ही रूस के पोर्ट आर्थर के बेड़े को नष्ट कर दे, इसलिए जापान ने स्थल युद्ध की योजना बनाई।

दोनों राष्ट्रों के हथियारों में असमानता नहीं थी, परंतु उसके सैनिकों की कार्यविधि में असमानता अवश्य थी। एक ओर जहाँ जापानी सैनिकों में आत्मबलिदान, देश-प्रेम एवं वीरता की भावना थी वहाँ रूसी सैनिकों में इन गुणों का पूर्णतः अभाव था। जापानी सैनिक कर्मठ एवं अनुशासित थे। रूसी अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी एवं सैनिकों से डरते थे तथा सैनिक अधिकारी अपना निर्णय लेने में सक्षम नहीं थे। जापानी सेना जर्मन पद्धति से लड़ रही थी; जबकि रूसी सैनिक पुरानी पद्धतियों से लड़ रहे थे।

यौद्धिक योजनाएँ

वास्तविक युद्ध आरंभ होने के पूर्व रूस के सैनिक अधिकारियों के दो विरोधी विचार थे। प्रथम तो जनरल कुरोपाटकिन (Gen. Kuropatkin) स्थल युद्ध पर अधिक जोर दे रहे थे। दूसरे, रूसी एडमिरल एलेक्सीव (Admiral Alexiev) समुद्री युद्ध द्वारा सफलता प्राप्त करना चाहते थे। इस तरह रूस के पास दो विरोधी योजनाएँ थीं। इसी के फलस्वरूप कोई भी योजना पूर्णरूप से सफल नहीं हो पाई।

जापानी अधिकारियों ने विचार-विमर्श के पश्चात् यह निर्णय लिया कि युद्ध का परिणाम नौसेना द्वारा ही निर्धारित किया जा सकेगा, साथ ही रूसी सेना को मंचूरिया से

खदेड़ने के लिए स्थल सेना का आक्रमण भी आवश्यक होगा। इसी कारण उसने पोर्ट आर्थर पर त्वरित आक्रमण तथा घेराबंदी करके स्थल सेना के बल पर सफलता की योजना बनाई। कोरिया खाड़ी के उत्तरी किनारे पर तीन सैनिक टुकड़ियों को उतारने तथा उन्हें संरक्षण प्रदान करने के साथ ही चौथी सैनिक टुकड़ी द्वारा पोर्ट आर्थर पर आक्रमण करना था। जापान की सैनिक टुकड़ी को अधिकार करने के बाद तीनों सेनाओं की सहायता के लिए उत्तर की ओर बढ़ना तथा पुनः सभी टुकड़ियों द्वारा एक साथ रूसी सेना पर निर्णायक हमला करने की योजना बनी। जापानियों ने युद्ध की विधिवत् घोषणा का इंतजार नहीं किया। जैसे ही रूस के जापान से राजनीतिक संबंध टूटे, वैसे ही कार्यवाही शुरू कर दी।

वास्तविक संघर्ष

6 फरवरी, 1904 को जापानी जहाजी बेड़े ने वाइस एडमिरल टोगो के निर्देशन में पोर्ट आर्थर के रूसी जहाजी बेड़े पर आक्रमण के लिए आगे बढ़ना शुरू किया। 8 फरवरी, 1904 को प्रातः 6 बजे टोगो की नौसेना ने रूसी जलयानों पर तारपीडो द्वारा आक्रमण कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप 3 रूसी जलयानों को नष्ट कर दिया गया तथा शेष जलयानों को वापस बंदरगाह पर लौटा दिया। दूसरे दिन 9 फरवरी को रूसी जहाजी बेड़े ने भी आक्रामक कार्यवाही आरंभ कर दी। यह संघर्ष लगभग 40 मिनट तक चला, जिसमें जापानी नौसेना की श्रेष्ठता तथा रूसी नौसेना का गिरा हुआ स्तर सबको पता लग गया। यद्यपि यह लड़ाई अनिर्णीत रही थी।

12 फरवरी, 1904 को दूसरा आक्रमण आरंभ हुआ। तत्पश्चात् 3 मई, 1904 तक जापान ने लगातार बंदरगाह को घेरने और सुरंग बिछाने की कार्यवाही जारी रखी। इसी दौरान 12 अप्रैल को रूसी जलयान, जिसका नाम पेट्रो पॉलोवस्क था, एक जापानी सुरंग से टकराकर डूब गया। यह जलयान रूसी बेड़े का सबसे महत्त्वपूर्ण जलयान था। जिस समय यह नौसैनिक आक्रमण अभियान जारी था, 9 फरवरी, 1904 को चेमुलपो बंदरगाह पर जापानी प्रथम सेना को जनरल कुरोकी के नेतृत्व में उतारा गया। 27 फरवरी को इस टुकड़ी ने पेंगयांग पर अधिकार कर लिया तथा 15 दिन बाद अंजू पर भी उसका अधिकार हो गया था।

1 मई को इस अभियान की प्रथम जमीनी लड़ाई यालू नदी पर लड़ी गई, जिसमें जापानी सेनानायक जनरल कुरोकी तथा रूसी जनरल जासुलिक थे। इस संघर्ष में जनरल जासुलिक को पीछे लौटना पड़ा। यह जापानी सेना की महत्त्वपूर्ण सफलता थी, क्योंकि इस अभियान के साथ जहाँ संसार में जापान को ख्याति मिली वहाँ रूस का सम्मान गिर गया।

जापानी सेना का अगला कदम पोर्ट आर्थर पर अपना अधिकार करना था। इसी उद्देश्य से 5 मई, 1904 को जापान की द्वितीय स्थल सेना ने जनरल ओकू के नेतृत्व में

पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी तथा पाँचवीं डिवीजन को पी-जू-वो (Pi-tzu-wo) नामक स्थान में उतारनी शुरू कर दी। जनरल ओकू ने इस सेना को पोर्ट आर्थर पहुँचने की अनुमति दे दी। वहाँ पहुँचकर इस सेना के पाँचवें डिवीजन को पोर्ट आर्थर पर ही रुककर सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा का भार सौंपा तथा शेष सेना को किन-चाऊ नामक स्थान पर पहुँचने का आदेश दिया। यहीं पर जनरल ओकू का रूसी सेना से सामना हो गया। रूसी सेना नान-शान पर थी। इसी बीच 19 मई को जनरल कावामुरा का दसवाँ डिवीजन ताकू-शान नामक स्थान पर उतरा।

जापान की दूसरी सेना के आ जाने से रूसी सेना के जनरल स्टोसेल को बड़ा आश्चर्य हुआ। 14 अप्रैल को रूसी एडमिरल एलेक्सीव पोर्ट आर्थर की सुरक्षा के लिए आए थे; परंतु तेजी के साथ उत्तर की ओर बढ़ गए जिससे जनरल स्टोसेल पोर्ट आर्थर में अकेले रह गए। जनरल स्टोसेल में कुशल नेतृत्व एवं निर्णायक क्षमता का अभाव था, जिसका पूरा लाभ विपक्षी सेना (जापान) को प्राप्त हुआ। जनरल स्टोसेल (Stossel) के अधीन फोर्ट्रेस कमांडर जनरल स्मीर्नोव था, उसकी योग्यता के बावजूद स्टोसेल उसकी योजनाओं में रुकावटें डालता था। इसी समय जनरल स्टोसेल ने गड़बड़ी पैदा करके एक बड़ी विपत्ति बुला ली। जनरल ओकू नान-शान पर आक्रमण के लिए तैयार हो चुका था। आक्रमण के आदेश 24 मई को दे दिए गए। दूसरे दिन किन-चाऊ पर किया गया आक्रमण विफल हुआ। अतः पुनः आक्रमण किया गया। इस बार रूसी सेना के पास गोला-बारूद कम पड़ गया, जिससे रूस की सेना में आतंक छा गया; किंतु अधिकारियों ने अपनी प्रतिभा के बल पर स्थिति पर काबू पा लिया।

14-15 जून को जनरल ओकू की रूसी जनरल स्टेकलबर्ग से तेलीसू (Telissu) नामक स्थान पर मुठभेड़ हुई। जिसके परिणामस्वरूप रूसी सेना को पीछे हटना पड़ा। दूसरी ओर जापानी जनरल नाडजू (Nodzu) ने रक्षात्मक स्थिति अपनाई; जबकि उसकी सहायता के लिए 9 डिवीजन तथा अन्य सैनिक टुकड़ियाँ भी थीं। 26 जुलाई को जनरल नाडजू ने अपना प्रथम आक्रमण किया तथा भीषण संघर्ष के बाद उसने शी-मू (Hsi-Mu) पर अधिकार कर लिया। इन दो स्थानों के छिन जाने से रूस का प्रतिरोध समाप्त हो गया। अब रूस के पास पोर्ट आर्थर की स्थायी रक्षा-व्यवस्था की केवल दो बाह्य पंक्तियों के ता-कू-शान और शी-मू नामक क्षेत्र ही शेष रह गए। अब जापानियों ने एक माह तक पोर्ट आर्थर पर आक्रमण नहीं किया।

पोर्ट आर्थर की घेराबंदी के बाद उसका बाहरी राष्ट्रों से संपर्क समाप्त हो गया। उसे मुक्त कराने में रूसी जनरल कुरोपाटकिन अथवा यूरोप से सामुद्रिक मार्ग द्वारा मदद से ही सफलता मिल सकती थी। पोर्ट आर्थर में घिरे हुए रूसी जनरल स्टोसेल का केवल एक ही लक्ष्य था—जापानी सेना के समक्ष घुटने न टेकना। यह तीन बातों पर ही निर्भर था—

(1) सैनिक संख्या,
(2) खाद्य सामग्री,

(3) दुर्ग की रचना।

सैनिक संख्या—14 मई, 1904 को जनरल स्टोसेल के पास कुल 41,899 सैनिक तथा 506 तोपें थीं; जबकि जापान के पास उस समय लगभग 80,000-90,000 सैनिक थे।

खाद्य सामग्री—जनरल स्टोसेल के पास पर्याप्त खाद्य सामग्री नहीं थी। जुलाई के मध्य में गढ़ के लगभग 42,000 सैनिकों तथा 45,000 घोड़ों के लिए खाद्य-व्यवस्था इस प्रकार थी—

गेहूँ का आटा	180 दिन के लिए
जौ का आटा	37 दिन के लिए
गोश्त	18 दिन के लिए
अचार	15 दिन के लिए
शक्कर (चीनी)	190 दिन के लिए
चाय	320 दिन के लिए
घोड़ों का चारा	150 दिन के लिए

दुर्ग की रचना—किलेबंदी तीन पंक्तियों में मुख्य रूप से बँटी हुई थी।

(i) ओल्ड टाउन को घेरे हुए एक दुर्गम खाई थी जिसका सामरिक महत्त्व कम था।

(ii) चीन की दीवार के साथ-साथ कंक्रीट से बने हुए अनेक गढ़ थे, जो आपस में खाइयों एवं दीवारों द्वारा जुड़े हुए थे। ये गढ़ पश्चिम में थे। इस प्रकार न्यू टाउन और बंदरगाह की रक्षा कर रहे थे।

(iii) गढ़ की इस शृंखला से बाहर छोटी-छोटी पहाड़ियों द्वारा रक्षा-व्यवस्था की गई थी। टा-कू-शान पूर्व में तथा पश्चिम की ओर अनेक पहाड़ियाँ भी सुरक्षा प्रदान कर रही थीं।

जापानी जनरल नाडजू का प्रयत्न था कि पहाड़ियों पर अधिकार कर लिया जाए, ताकि समुद्र के अधिकार के लिए रास्ता खुल जाए। तत्पश्चात् उत्तर की ओर बढ़कर मार्शल ओयामा से मिलकर संयुक्त आक्रमण किया जाए। जनरल नाडजू ने टा-कू-शान तथा शीओ-कू-शान नामक पहाड़ियों पर अधिकार करने के लिए 7 अगस्त, 1904 को प्रातः 4.30 बजे बमबारी शुरू कर दी, जो सायं 7.30 बजे तक लगातार चलती रही। उसी दौरान पैदल सेना ने कूच किया, परंतु अँधेरे, बमबारी के धुएँ तथा वर्षा के कारण उसे पहाड़ियों पर चढ़ने में सफलता नहीं मिली। दूसरे दिन 8 अगस्त, 1904 को अपराह्न 3.30 बजे तक वर्षा होती रही। जापानी तोपों ने पुनः बमबारी शुरू कर दी, जो उनके लिए बड़ी ही लाभदायक सिद्ध हुई; क्योंकि इससे रूसी सैनिक खाइयों से निकलकर

भागने लगे। रात्रि के लगभग 8 बजे जापानियों का टा-कू-शान पहाड़ी पर अधिकार हो गया तथा 9 अगस्त को उन्होंने शीओ-कू-शान पहाड़ी पर भी अधिकार कर लिया।

रूस की इन दो महत्त्वपूर्ण पहाड़ियों के छिन जाने से रूसी नेता जार (Tsar) ने एडमिरल विटगेफ्ट (Vitgeft) को आदेश दिया कि पोर्ट आर्थर के जहाजी बेड़े को हटाकर व्लाडीवोस्टक बंदरगाह पर पहुँचे। 10 अगस्त, 1904 को प्रातः 8.30 बजे एडमिरल विटगेफ्ट 6 युद्धपोत, 5 क्रूजर तथा 8 विध्वंसक सहित आगे बढ़ा, परंतु 11.30 बजे जब जापानी जल बेड़े ने रूस के इस जल बेड़े को बढ़ते देखा तो उसने दिन में 12.30 बजे रूसी बेड़े पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में रूसी एडमिरल विटगेफ्ट मारा गया तथा उसके जलपोत को भी नष्ट कर दिया गया। इसके साथ ही रूस के 5 युद्धपोत, 1 क्रूजर व 3 विध्वंसक जलपोत वापस लौट गए और शेष जलयान रात्रि के अँधेरे में चीनी बंदरगाह तथा अन्य बंदरगाहों पर चले गए। एक जलपोत को डुबो दिया गया।

जापान की इस सफलता से निकटवर्ती समुद्र पर उसका पूर्ण अधिकार हो गया। रूस का जो बाल्टिक बेड़ा आने वाला था वह अभी तक वहाँ से चला ही नहीं था। अतः जनरल नाडजू ने पोर्ट आर्थर पर आक्रमण की योजना बनाई। उसका अनुमान था कि यदि वह पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर ले, तो कदाचित् रूस का बाल्टिक बेड़ा वहाँ से आए ही नहीं। इसी उद्देश्य से जनरल नाडजू ने पोर्ट आर्थर में घिरे रूसी जनरल स्टोसेल को आत्मसमर्पण का संदेश भेजा। परंतु उसने इसे ठुकरा दिया, अतः जनरल नाडजू ने 19 अगस्त, 1904 को आक्रमण कर दिया। परंतु इसमें सफल नहीं हो सका। उसी रात्रि को पुनः आक्रमण किया। यह आक्रमण भी असफल रहा। इस प्रकार जनरल नाडजू ने 24 अगस्त तक लगातार आक्रमण जारी रखे; परंतु किसी प्रकार की सफलता नहीं मिली। हाँ, इन आक्रमणों से 174 मीटर की एक पहाड़ी अवश्य ही अधिकार में आ गई। इस आक्रमण अभियान में 3,000 रूसी तथा 15,000 जापानी सैनिक मारे गए। इस भारी हानि के बाद भी जापानी जनरल नाडजू ने पोर्ट आर्थर को लगातार घेरे रखने का निर्णय लिया।

इधर जनरल ओयामा ने 25 अगस्त, 1904 को लिया-ओ-यांग की लड़ाई आरंभ कर दी। यदि जनरल नाडजू की सैनिक सहायता मिल जाती तो जापानी सेना निश्चित रूप से एक निर्णायक सफलता प्राप्त कर सकती थी, परंतु जनरल नाडजू के सहयोग के अभाव में आक्रमण कमजोर रहा, जिससे रूसी सेना उत्तर की तरफ बढ़ गई। इस अभियान में रूस के 16,500 तथा जापान के 23,615 सैनिक हताहत हुए। उधर जापानी जनरल नाडजू ने 19 सितंबर तक पोर्ट आर्थर पर कोई कार्यवाही नहीं की तथा घेरा बनाए रखते हुए अपने अधिकारियों से हाउविट्जर भेजने का अनुरोध किया जिससे स्थायी रक्षा-व्यवस्था को तोड़ा जा सके। अगले आक्रमण के लिए जनरल नाडजू ने दो प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किए—पूर्वी क्षेत्र में वाटरवर्क्स रिडाउट तथा पश्चिमी क्षेत्र में नमाकोयामा व 203 मीटर पहाड़ी।

आठ
जहाज
खाड़ी
चंग-लिन-त्जू
जापानी रेल हेड
जापानी लाइट रेलवे
हैडक्वार्टर
थर्ड आर्मी
जापानी लाइट रेलवे
लोयूसा खाड़ी
कु आ न-तुं ग
शुई-शिह-यन
चीन की दीवार
203 मीटर हिल
न्यूयार्क
चाइनीज
टाउन
पुराना शहर
पिगोन खाड़ी
हार्बर
रसिअन फोर्ट
बैट्रीज इन पिट्स
तार
जैपनीज वर्क
आर्टिलरी
ऑब्जर्वेशन बैलून
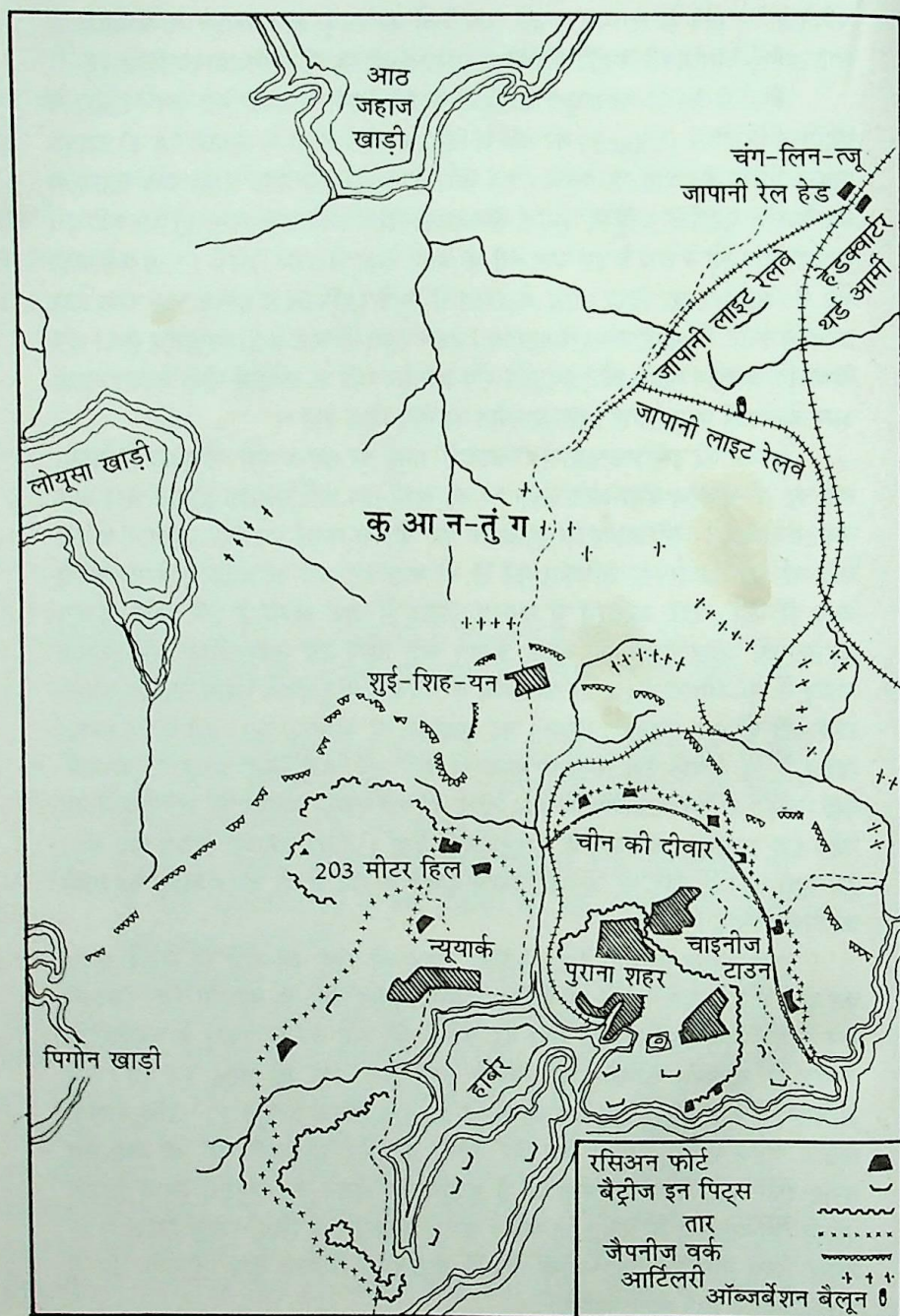
जैसे-जैसे घेराबंदी का समय बढ़ता गया, अन्न का अभाव भी निरंतर बढ़ता जा रहा था; जिससे रूसी अधिकारियों में वैमनस्य बढ़ने लगा तथा आपसी झगड़े भी शुरू हो गए थे। जापानी जनरल नाडजू ने 20 सितंबर, 1904 को जोरदार आक्रमण करके वाटरवर्क्स रिडाउट तथा नमाकोयामा पर अधिकार कर लिया; परंतु 203 मीटर पहाड़ी पर वे अधिकार नहीं कर सके। इस आक्रमण में जापानी सेना को अधिक हानि उठानी पड़ी। यदि वह लगातार घेराबंदी बनाए रखती तो कुछ दिनों बाद भुखमरी के कारण रूसी सैनिक स्वयं आत्मसमर्पण के लिए मजबूर हो जाते और जापान को इतनी हानि न उठानी पड़ती। इस आक्रमण की सफलता का एक प्रमुख कारण जापान की 6 से 8 इंच मोर्टार व हाउविट्ज़र का प्रयोग था। रूसी सैनिक घेराबंदी एवं खाद्य सामग्री के अभाव में हताश एवं मजबूर होते जा रहे थे।

15 अक्टूबर, 1904 को रूस का प्रसिद्ध बाल्टिक बेड़ा एडमिरल रोजेस्टवेंसकी (Rozhestvenski) के नेतृत्व में लिबाऊ (Libau) नामक स्थान से सुदूर पूर्व की ओर आगे बढ़ा। इस रूसी जहाजी बेड़े में 8 युद्धपोत, 12 क्रूजर तथा 9 विध्वंसक थे। जापानी अधिकारी इस प्रयास में थे कि यह बेड़ा पोर्ट आर्थर न पहुँच सके। अतः 203 मीटर पहाड़ी पर अधिकार आवश्यक समझकर 26 नवंबर, 1904 को पुनः आक्रमण का आदेश दिया। उस समय तक बाल्टिक बेड़ा हिंद महासागर में पहुँच चुका था। 27 नवंबर को सायं 5 बजे तक बमबारी चालू रही। 29 नवंबर को पुनः आक्रमण कर दिया गया। वह भी असफल रहा। 30 नवंबर को फिर आक्रमण किया, जो 4 दिसंबर तक चलता रहा। 15 दिसंबर को जनरल नाडजू ने अपनी तैयारी करके एक ब्रिगेड को 203 मीटर पहाड़ी तथा एक रेजीमेंट अकासाकायामा पर भेजा। लगभग 1.30 बजे अपराह्न जापानी सेना की एक कंपनी को 203 मीटर पहाड़ी पर पहुँचने में सफलता मिल गई, इस अभियान में दोनों देशों के सैनिक अत्यधिक संख्या में हताहत हुए।

इस सफलता से जापानी सेना 203 मीटर पहाड़ी से बंदरगाह (पोर्ट आर्थर) पर स्थित जलयानों पर नियंत्रण रख सकती थी। 6 दिसंबर, 1904 से उसने रूसी जलयानों पर बमबारी शुरू कर दी तथा बाद में कुछ दिनों पश्चात् उन्हें नष्ट कर दिया गया। इस सफलता से एडमिरल टोगो इतना स्वतंत्र हो गया कि बाल्टिक बेड़े से लड़ने की तैयारी कर सके; क्योंकि बाल्टिक फ्लीट मैडागास्कर पहुँचने वाला था। 4 जनवरी, 1905 तक पोर्ट आर्थर के सभी गढ़ जापानी सेना के अधीन हो चुके थे। इस अभियान में जापानियों को 546 तोपें, 82,000 गोले, 22,50,000 राइफल के कारतूस मिले। 878 रूसी अधिकारी तथा 23,481 सैनिकों ने दुर्ग से निकलकर जापानी सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इस सफलता से नाडजू स्वतंत्र हो गया। अब वह मार्शल ओयामा को सहायता दे सकता था, अतः सहायता के लिए उत्तर की ओर बढ़ा।

23 फरवरी, 1905 को यह सबसे बड़ी लड़ाई जनरल कुरोपाटकिन के 3,10,000 सैनिकों तथा मार्शल ओयामा के 3,00,000 सैनिकों के मध्य मुकडन नामक स्थान पर

लड़ी गई, जो 10 मार्च, 1905 तक चलती रही तथा 10 मार्च को जापान का मुकडन पर अधिकार हो गया। इस संघर्ष में रूस के 60,000 सैनिक मारे गए तथा घायल हुए। 25,000 सैनिक बंदी बनाए गए; जबकि जापान के 71,000 सैनिक हताहत हुए। 9 मई, 1905 को बाल्टिक फ्लीट ने चीनी समुद्र में प्रवेश किया तथा 27 मई, 1905 को एडमिरल टोगो ने इस बेड़े पर आक्रमण करके उसे क्षतिग्रस्त कर दिया। अब दोनों ही पक्ष युद्ध से थक चुके थे—जापानी शारीरिक रूप से और रूसी मानसिक रूप से। अंततः 10 जून, 1905 को अमेरिका के राष्ट्रपति ने हस्तक्षेप करते हुए संधि करवा दी तथा दोनों पक्षों ने निम्नलिखित शर्तें तय कीं—

(i) रूस मंचूरिया को छोड़ देगा।
(ii) रूस लियाओ-तुंग, पेनिन सुला, पोर्ट आर्थर, डीलांग तथा सघालीन द्वीप का आधा दक्षिणी भाग जापान को देगा।
(iii) रूस कोरिया में जापान के प्रभुत्व को मान्यता प्रदान करेगा।

परिणाम

संयुक्त राज्य अमेरिका के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप एशिया का यह प्रसिद्ध संग्राम एक संधि के साथ समाप्त हो गया। यह पोट्र्स माऊथ की संधि 29 अगस्त, 1905 को संपन्न हुई। जापान की सफलता के परिणामस्वरूप संसार के राष्ट्रों में उसका जहाँ मान-सम्मान बढ़ा, वहाँ इसके कारण रूस की प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचा। सोवियत रूस की क्रांति को जन्म भी इसी संग्राम ने दिया। एक छोटे से राष्ट्र ने विशाल देश को बुरी तरह से इस युद्ध में पराजित कर दिया। भारत पर भी जापान की इस विजय का महत्त्वपूर्ण प्रभाव हुआ।

सैन्य शिक्षाएँ

इस निर्णायक एवं ऐतिहासिक संग्राम से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. युद्ध में सदैव सफलता उसी पक्ष को मिलती है, जो आक्रामक पहल करता है। जैसे जापानी सेना ने सदैव आक्रामक पहल करके रूसी सेना पर अपना दबाव बनाए रखा और अंततः उसे एक निर्णायक सफलता प्राप्त हुई।
2. घेराबंदी के युद्ध में तोपखाने की भूमिका अत्यंत निर्णायक सिद्ध होती है, यह इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया।
3. इस युद्ध ने यह भी प्रमाणित कर दिया कि उस पक्ष की सदैव विजय होती है, जो अनुशासन, आज्ञापालन एवं स्वयं निर्णय की क्षमता आदि मनोवैज्ञानिक तत्त्वों को विशेष रूप से ध्यान में रखता है; जैसाकि जापानी सेना के द्वारा किया गया।

4. युद्ध में लक्ष्य का निर्धारण तथा उसी के अनुरूप कार्यवाही सदैव सफलता के अवसर देती है; जैसे इस युद्ध में जापानियों ने इस सिद्धांत को अपनाकर एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
5. जापानी सेना की सफलता का एक प्रमुख कारण उसका श्रेष्ठ नेतृत्व भी था, जिसकी योजना एवं क्रियान्वयन ठीक समय में किया जाता था तथा शत्रु को दबाव में रखा जाता था।
6. इस युद्ध ने घेराबंदी के युद्धों में तथा जलीय युद्धों में मशीनगन की उपयोगिता को विशेष महत्त्व प्रदान कर दिया।
7. सेना की सफलता के लिए संचार-व्यवस्था तथा आपूर्ति-व्यवस्था बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है, इसके अभाव में रूस की भाँति पराजय को ही स्वीकार करना पड़ता है।

प्रथम महायुद्ध
(1914 से 1918 ई. तक)

प्रथम महायुद्ध की नींव 1914 से पूर्व ही रख दी गई थी, जब यूरोप दो सैनिक दलों में विभक्त हुआ था। इसका प्रमुख कारण था यूरोपीय राष्ट्रों के मध्य गुप्त समझौता। 1879 ई. में जर्मनी ने हंगरी-आस्ट्रिया के साथ समझौता किया और 1882 में इटली भी इस समझौते में सम्मिलित हो गया, जिसे ट्रिपिल अलांटस के नाम से जाना गया। उस समय बिस्मार्क के प्रयासों के कारण रूस तथा फ्रांस में मतभेद बने रहे। किंतु बिस्मार्क के बाद 1894 में फ्रांस एवं रूस के मध्य समझौता हो गया। इस प्रकार यूरोपीय राष्ट्रों में आपसी हितों को ध्यान में रखते हुए गुप्त समझौतों की होड़ शुरू हो गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि समस्त यूरोप दो गुटों में बँट गया; क्योंकि इन गुप्त समझौतों से एक-दूसरे के प्रति घृणा एवं द्वेष की भावना बढ़ने लगी थी; जिससे यूरोप के राष्ट्र विशेष रूप से जल एवं थल पर युद्ध की तैयारी में जुट गए तथा उनमें एक-दूसरे के मुकाबले के लिए प्रतिस्पर्धा-सी छिड़ गई।

इस युद्ध में यूरोप के प्रमुख दो गुट भाग ले रहे थे, जिन्हें केंद्रीय शक्ति तथा मित्र राष्ट्रों के गुट के नाम से जाना जाता है। केंद्रीय शक्ति के रूप में आस्ट्रिया, हंगरी और जापान थे तथा मित्र राष्ट्रों के रूप में मुख्य रूप से ब्रिटेन, फ्रांस तथा रूस थे। बाद में मित्र राष्ट्रों के साथ इटली, जापान एवं अमेरिका भी शामिल हो गए।

इस प्रथम महायुद्ध के लिए समस्त यूरोप में तनाव, कटुता, गुटबंदी, शस्त्रास्त्रों की होड़, सामुद्रिक होड़ तथा आर्थिक होड़ की बारूद एकत्रित हो चुकी थी; किंतु इस बारूद के ढेर में चिनगारी उस समय लगी जब आस्ट्रिया के राजकुमार आचड्यूक फ्रैंज फर्डीनेंड की हत्या कर दी गई, जिसमें सर्बिया के नागरिक का हाथ था। इस प्रकार इस महायुद्ध की ज्वाला धधकने लगी, जिसका विकराल रूप जुलाई 1914 से नवंबर 1918 तक छाया रहा और सर्वाधिक धन एवं जन की हानि हुई।

संक्षेप में प्रथम महायुद्ध के कारणों का उल्लेख हम इस प्रकार कर सकते हैं—

(1) परस्पर गुप्त संधियाँ,

(2) परस्पर बढ़ती सैनिक तैयारियाँ,

(3) राष्ट्रीयता की बढ़ती प्रतिस्पर्धा,

(4) साम्राज्यवादी आर्थिक होड़,

(5) संचार साधनों द्वारा एक-दूसरे के प्रति द्वेष की बढ़ती भावना,

(6) जर्मन के सम्राट् कैसर विलियम द्वितीय की महत्त्वाकांक्षा,
(7) बढ़ती हुई अराजकता,
(8) कूटनीतिक चालों का बिछता हुआ जाल,
(9) फ्रांस एवं जर्मनी के मध्य भारी कटुता,
(10) अंतरराष्ट्रीय नैतिक नियमों का उल्लंघन,
(11) राष्ट्र के विकास के लिए युद्ध आवश्यक माना जाने लगा,
(12) बढ़ती हुई आपसी स्वार्थपरता,
(13) छोटे राष्ट्रों के बड़े-बड़े मतभेद,
(14) आस्ट्रिया-हंगरी और सर्बिया के मध्य ईर्ष्या,
(15) फर्डीनेंड की हत्या,
(16) साम्राज्य-विस्तार की बढ़ती होड़,
(17) रूस एवं फ्रांस की मित्रता,
(18) जर्मनी एवं फ्रांस का विरोध,
(19) रूस एवं आस्ट्रिया का वैमनस्य और
(20) जर्मनी एवं ब्रिटेन के मध्य बढ़ता हुआ तनाव।

28 जुलाई, 1914 को सर्बिया पर आस्ट्रिया के आक्रमण के साथ युद्ध का प्रारंभ हो गया। इधर जर्मनी ने योजना तय कर रखी थी कि वह अपनी 80 प्रतिशत सेनाओं के द्वारा फ्रांस पर आकस्मिक हमला कर देगा; किंतु बाद में फ्रांस की मजबूत किलेबंदी के कारण जर्मनी ने उस पर आक्रमण करना उचित नहीं समझा। अतः जर्मनी ने सोचा कि वह तटस्थ बेल्जियम के क्षेत्र से अपनी सर्वाधिक शक्तिशाली सेना को आगे बढ़ाएगा, जिसमें जर्मनी को सफलता भी मिल गई। 23 अगस्त को जर्मन सेनाओं ने आगे बढ़ते हुए मोंस पर स्थित फ्रांस की सेना पर जोरदार हमला कर दिया, जिससे फ्रांस तथा ब्रिटेन की सैनिक शक्ति को भारी आघात पहुँचा।

2 सितंबर, 1914 को जर्मनी की सेनाएँ पेरिस की ओर बड़ी तेजी के साथ बढ़ीं। पश्चिमी मोरचे की जर्मन सेनाओं का नेतृत्व जनरल वोनक्लक के द्वारा किया जा रहा था। उसने फ्रांसीसी सेना को घेरने के लिए दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़ना शुरू किया। इस कार्यवाही से फ्रांस के सेनानायक जनरल जोफी ने उस पर तुरंत आक्रमण कर दिया, जिससे जनरल वोनक्लक घबराकर रुक गया और जर्मन सेना पर ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी सैनिक टूट पड़े। मार्ने के संग्राम के इस 5 दिन के अभियान में जर्मन सेना को विवश होकर पीछे हटना पड़ा। 19 अक्टूबर से 14 नवंबर तक वाइप्रेस की प्रसिद्ध लड़ाई में जितना ब्रिटिश सेना का रक्त बहा, उतना विश्व के अन्य किसी स्थान पर इससे पहले नहीं बहा था। इस अभियान में ब्रिटिश सेना को जर्मन सेना के आगे झुकना पड़ा था। जर्मनी को सफलता तो मिली, पर फ्रांस को कुचलने का उसका स्वप्न पूरा न हो सका।

रूसी सेना जर्मनों द्वारा प्रत्याशित समय से पूर्व ही युद्धक्षेत्र में पहुँच गई थी। 20

अगस्त को टेननबर्ग के संग्राम में रूस को भी भारी नुकसान उठाना पड़ा। रूस की पराजय से फ्रांस को भारी आघात पहुँचा। 29 अक्टूबर को तुर्की ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। तुर्की द्वारा जर्मन सेना को सहयोग देने से मिस्र तथा स्वेज नहर को भी खतरा पैदा हो गया। स्वेज नहर ब्रिटिश व्यापार का प्रमुख केंद्र थी, अतः ब्रिटेन अब और भी अधिक संकट में फँस गया। उसी दौरान जर्मनी एवं ब्रिटेन के मध्य समुद्री युद्ध भी छिड़ गया और 1914 के अंत तक मित्र राष्ट्रों का समुद्र पर अधिकार हो गया। यद्यपि बाद में जर्मन पनडुब्बियों से खतरा पैदा हो गया; परंतु समुद्र के अधिकार ने मित्र राष्ट्रों के लिए विजय का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

वर्ष 1915 मित्र राष्ट्रों के लिए विपत्ति का वर्ष ही रहा था; क्योंकि जर्मनी के विरुद्ध उन्हें अनेक प्रयत्नों के बावजूद सफलता नहीं मिल सकी थी। अप्रैल 1915 की वाइप्रस की द्वितीय लड़ाई में जर्मन सेनाओं ने रासायनिक जहरीली गैस का प्रयोग करके न केवल ब्रिटेन व फ्रांस की सेनाओं को दम तोड़ने तथा युद्धक्षेत्र छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया, बल्कि समस्त संसार को भयानक अस्त्रों के प्रहार का परिचय करा दिया। इस सबके बावजूद मित्र राष्ट्रों ने अपनी हिम्मत से काम लिया और अंततः वाइप्रस की लड़ाई में टीकरी उन्हीं के अधिकार में रही। त्रिपक्षीय संधि संगठन के सदस्य होने के बावजूद जब इटली ने मित्र राष्ट्रों को सहयोग देने की घोषणा की, तो मित्र राष्ट्रों की आशा बढ़ गई और इटली की सेना ने आस्ट्रिया की सेना के आगे बढ़ने पर अंकुश लगा दिया।

जर्मन सेना ने पूर्वी मोरचे पर रूस पर अपना दबाव डालना शुरू कर दिया। रूसी सेना के पास पर्याप्त मात्रा में हथियार न होने के कारण जर्मन सेनाओं के द्वारा उन्हें मार खानी पड़ी। इस अभियान में अनेक रूसी सैनिक मारे गए तथा बंदी बना लिये गए। बंदियों से कृषि तथा उद्योगों में काम लिया जाने लगा। जर्मनी को वारसा सहित पोलैंड और लिथुआनिया में भी अधिकार करने का अवसर मिल गया। रूस को मित्र राष्ट्रों के पश्चिमी मोरचे से कोई सहायता प्राप्त नहीं हो पाई थी। ब्रिटेन ने रूस की रक्षा के लिए दर्रा दानियाल पर आक्रमण करने की योजना बनाई; परंतु वह भी कामयाब न हो सकी। अप्रैल 1915 में ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड की विशाल सेनाओं ने फ्रांस की छोटी-सी सेना के साथ जलीय व थलीय युद्ध शुरू कर दिया; किंतु जर्मन सेना को इसका पूर्व अनुमान था, अतः वह शत्रु से सजग हो गई थी। अक्टूबर 1915 को बुल्गारिया जर्मनी के साथ मिल गया तो आस्ट्रिया, जर्मनी तथा बुल्गारिया ने मिलकर सर्बिया पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। सर्बिया की बची शेष सेना को अल्वानिया के मार्ग से निकाला गया। इस वर्ष मित्र राष्ट्रों को कोई विशेष लाभ नहीं मिला, बल्कि जर्मनी ने दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका के बोथा और स्मट्स को अधिकार में कर लिया।

मई 1916 में जुटलैंड की लड़ाई में जर्मन बेड़े के विरुद्ध ब्रिटिश जलयान बेड़े को भारी सफलता मिली। जर्मनी ने फ्रांस में मित्र राष्ट्रों की रक्षा-पंक्ति को तोड़ने के लिए

पूरी शक्ति से हमला कर दिया, जिससे वे पूर्वी मोरचे से सेना न ला सके। इस आक्रमण के लिए वेरडुन को चुना गया। इस मोरचे में जमकर युद्ध हुआ; किंतु फ्रांसीसी सेनाएँ मोरचों पर लगातार डटी रहीं, जिससे जर्मन सेना को कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। मित्र राष्ट्रों के वेरडुन मोरचे के दबाव को कम करने के लिए इटली ने आस्ट्रिया के विरुद्ध आक्रमण करके 'गोरिजिया' पर अधिकार कर लिया। इसमें रूसी सेनाओं की सहायता भी इटली को मिली थी।

1 जुलाई, 1916 को जनरल सर डगलस हेग ने मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का नेतृत्व सँभाला। जिन्होंने 15 सितंबर, 1916 को सोम के संग्राम में पहली बार टैंक का प्रयोग किया। यह संग्राम एक लंबी अवधि तक चला। इस संग्राम के लिए 150 टैंक निर्धारित किए गए थे; परंतु फ्रांस के समुद्र-तट से सोम के युद्धक्षेत्र तक उन्हें जमीन पर चलाकर लाया गया था, जिससे अधिकांश टैंक पहुँचते-पहुँचते खराब हो गए थे। फिर भी इन टैंकों ने जर्मन सेना को भारी आघात पहुँचाया। इस संग्राम में मित्र राष्ट्रों को सफलता मिली और पहली बार जर्मन सेनाओं को अपनी हार नजर आने लगी। अगस्त 1916 में रूस की सफलता को देखकर रूमानिया ने भी मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में प्रवेश किया तथा ट्रांसिलवानिया पर आक्रमण कर दिया। जर्मनी तथा आस्ट्रिया की सेना ने ट्रांसिलवानिया पहुँचकर रूमानिया के सैनिकों को पीछे हटा दिया तथा रूमानिया का पतन भी इसी के साथ हो गया। 1916 ई. के अंत में पूर्व तथा पश्चिम—दोनों ओर से जर्मनी की स्थिति निराशाजनक नजर आने लगी तो उसने जान की बाजी लगाकर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। उधर मित्र राष्ट्रों की हालत भी अच्छी नहीं थी।

जर्मन सेना ने 31 जनवरी, 1917 को यह घोषणा की कि वह ब्रिटेन के द्वीप समूह की नाकाबंदी करने की स्थिति में है और यदि मित्र राष्ट्र अथवा तटस्थ राष्ट्र का कोई भी जलयान इस ओर दिखाई पड़ा तो उसे तुरंत नष्ट कर दिया जाएगा। जर्मन यह अनुभव करने लगे थे कि मित्र राष्ट्रों पर विजय पाने के लिए ब्रिटेन को शिकस्त देनी बेहद जरूरी होगी। इसी कारण सामुद्रिक नियमों को ताक में रखते हुए उसने अपनी पनडुब्बियों के द्वारा ब्रिटेन के जलयानों का सफाया शुरू कर दिया; ताकि आवश्यक सामग्री की आपूर्ति भंग हो जाए तथा ब्रिटिश सेना पंगु हो जाए। जर्मनी की इन पनडुब्बियों को शिकस्त देने के लिए 'यू-बोट्स' (U-Boats) का प्रयोग किया गया, जो अपनी तोपों के प्रहार से पनडुब्बियों को नष्ट कर देते थे।

अप्रैल 1917 में अमेरिका ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, जिससे मित्र राष्ट्रों को नैतिक एवं आर्थिक सहयोग मिला; क्योंकि आर्थिक स्थिति के कारण ब्रिटेन बुरी तरह से लड़खड़ा गया था। इसी वर्ष मार्च में रूस में क्राति हो गई। जिससे जार को गद्दी से हटा दिया गया। 20 दिसंबर, 1917 को कैंब्राई के संग्राम में टैंकों का दूसरी बार प्रयोग किया गया, जिसमें मित्र राष्ट्रों को निर्णायक सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार 1917 का वर्ष भी निराशा एवं निरुत्साह का ही वर्ष प्रमाणित हुआ; क्योंकि युद्ध

के इस अभियान को अंतिम रूप नहीं दिया जा सका था।

दूसरा टैंक-युद्ध 20 दिसंबर, 1917 को कैंब्राई में आरंभ हुआ, जिसमें मित्र राष्ट्रों ने लगभग 350 टैंक प्रयोग किए थे, जो लगभग 6 मील गहरी जर्मन रक्षा रेखा को भेदने में सफल हो गए थे। यहीं से मित्र राष्ट्रों की सेनाओं का मनोबल बढ़ने लगा था; जबकि दूसरी ओर जर्मनी की सेनाओं पर भारी मानसिक दबाव पड़ा था।

जब वर्ष 1918 ई. आरंभ हुआ तो जर्मन सेनापतियों ने यह निर्णय लिया कि यदि शीघ्र ही मित्र राष्ट्रों पर कार्यवाही नहीं की गई तो भविष्य में उनके लिए संकट उत्पन्न हो जाएगा। इसी कारण जर्मन सेना अंतिम युद्ध के लिए तैयार हो गई थी। जहाँ अमेरिका की सेनाएँ भी फ्रांस में इकट्ठी हो रही थीं, तुर्की का पतन स्पष्ट दिखाई दे रहा था तथा आस्ट्रिया के साम्राज्य पर जोरदार दबाव पड़ रहा था, वहाँ जर्मनी में भी असंतोष बढ़ता जा रहा था। साथ ही उसे नाकेबंदी के कारण भारी हानि उठानी पड़ रही थी। यदि इस प्रकार की सामरिक परिस्थितियों में जर्मनी द्वारा ब्रिटेन एवं फ्रांस के विरुद्ध त्वरित कार्यवाही नहीं की जाती तो जर्मनी का पतन शीघ्र ही होने वाला था। इधर पूर्वी मोरचे का प्रतिरोध समाप्त हो रहा था। अतः जर्मनी ने अपनी पूरी शक्ति के साथ अंतिम आक्रमण की तैयारी शुरू कर दी, जो उसकी उत्तरजीविता के लिए भी आवश्यक थी।

जर्मन सेना ने प्रथम आक्रमण मार्च 1918 में सेंट क्वेंटिन के निकट ब्रिटिश रक्षा-पंक्ति के दक्षिणी सिरे पर किया; किंतु मित्र राष्ट्रों की सेना ने बड़ी तत्परता के साथ आपूर्ति-व्यवस्था एवं सेना को जुटाकर जर्मनी के इस आक्रमण को सफल नहीं होने दिया।

अप्रैल 1918 में जर्मन सेनाओं ने दूसरा आक्रमण वाइप्रस की ऐतिहासिक टीकरी के सामने ब्रिटिश रक्षा-पंक्ति की उत्तरी पंक्ति पर किया, जिसे लीज का संग्राम भी कहा जाता है। इस आक्रमण में जर्मन सेनाओं ने ब्रिटिश सेनाओं को तोड़कर रख दिया; परंतु इसके बावजूद ब्रिटिश सेनाओं का वाइप्रस की टीकरी पर अधिकार बना रहा। आक्रमणों के इस अभियान में तीसरा आक्रमण फ्रांसीसी रक्षा-पंक्ति के विरुद्ध सायसंस (Soissions) तथा रीम्स (Rheims) पर किया गया, जिसमें जर्मन सेना को कामयाबी तो मिली; पर निर्णायक सफलता किसी भी आक्रमण में प्राप्त नहीं हो सकी थी। हाँ, जर्मनी को यह लाभ अवश्य मिला कि वह सामरिक महत्त्व के स्थान; जैसे—अमींस, पेरिस तथा चैनल (इंग्लिश) के बंदरगाह के निकट पहुँच गया था। इन लगातार आक्रमणों के कारण जहाँ जर्मनी की सेनाएँ थक चुकी थीं, वहाँ उनकी शक्ति भी क्षीण हो गई थी। अब मित्र राष्ट्रों ने अपनी असफलताओं से सबक सीखते हुए फ्रांसीसी सेनानायक मार्शल फॉच के सेनापतित्व में एकत्रित होकर जर्मनी के विरुद्ध जुलाई 1918 से कार्यवाही आरंभ कर दी, जो नवंबर तक लगातार चलती रही। इन मित्र राष्ट्रों के आक्रमण अभियान में धुरी राष्ट्रों की तो हालत ही बिगड़ गई और युद्ध की परिस्थितियाँ हीं विपरीत हो गईं। चारों ओर से मित्र राष्ट्रों का विजय अभियान का सिलसिला शुरू

हो गया था।

प्रथम महायुद्ध का अंतिम टैंक-युद्ध 'एमींस के संग्राम' में 8 अगस्त, 1918 को आरंभ हुआ, जिसमें हलके, मध्यम तथा भारी श्रेणी के टैंकों का प्रयोग किया गया। इन टैंकों ने मित्र राष्ट्रों को निर्णायक सफलता प्रदान की। जर्मन सेना के मुख्य सेनापति ल्यूडेनड्रोर्ट ने 8 अगस्त, 1918 को जर्मन सेना के लिए काला दिन बताया, क्योंकि टैंकों के द्वारा ही जर्मन सेनाओं को कुचला जा सका था तथा यही पराजय के प्रमुख कारण भी प्रमाणित हुए थे। वायुयान का प्रथम प्रयोग परीक्षण भी इस महायुद्ध में ही किया गया। नौसेना की पनडुब्बियों का प्रयोग भी उल्लेखनीय रहा।

11 नवंबर, 1918 ई. को ब्रिटिश सेनाएँ मोंस पहुँच गईं, जहाँ से इस महायुद्ध का अभियान आरंभ हुआ था। उसी दिन लगभग 11 बजे युद्ध स्थगित करने के आदेश प्रसारित कर दिए गए तथा धुरी राष्ट्रों की ओर से जर्मनी ने भी युद्ध विराम संधि पर अपने हस्ताक्षर कर दिए थे। उधर बुल्गारिया, तुर्की तथा आस्ट्रिया ने पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया था। केवल जर्मनी ने ही बाद में मजबूर होकर समझौते पर हस्ताक्षर किए थे।

परिणाम

इस युद्ध के परिणामस्वरूप मित्र राष्ट्रों तथा धुरी राष्ट्रों को अपार सैनिक एवं नागरिक हानि उठानी पड़ी। इस युद्ध के भीषण नर-संहार में 1,30,00,000 मौत के मुँह में चले गए तथा प्रति 3 सैनिकों में 1 सैनिक घायल हुआ। 4 वर्ष तथा 15 सप्ताह के इस भीषण युद्ध के पश्चात् जब शांति का शुभ संदेश 11 नवंबर, 1918 ई. को सुनने को मिला तो लोग हर्ष से झूम उठे थे। इस युद्ध के परिणामस्वरूप यूरोपीय राष्ट्रों में एक नवीन युग का सूत्रपात हो गया और राजवंश के स्थान पर लोकतंत्र की शुरुआत हो गई। फ्रांस की क्रांति ने इस लोकतंत्र की परंपरा को विशेष बल प्रदान किया। साथ ही संसार के देश यह अनुभव करने लगे कि महायुद्धों पर अंकुश लगाने के लिए सभी राष्ट्रों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगठित होना चाहिए। इसी उद्देश्य से पेरिस में शांति परिषद् का गठन हुआ, जिसमें राष्ट्रसंघ (League of Nations) नामक अंतरराष्ट्रीय संगठन की नींव रखी गई। यह तय किया गया कि राष्ट्रों के आपसी विवादों को इसी के माध्यम से हल किया जाए तथा पारस्परिक संबंध भी घनिष्ठ बने रहें।

इस महायुद्ध ने राष्ट्रीय भावना को विशेष रूप से बल प्रदान किया और अनेक राष्ट्रों का जन्म ही राष्ट्रीयता के आधार पर हुआ; जैसे—यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, हंगरी तथा लिथुआनिया आदि। इनके कारण यूरोप का मानचित्र ही बदल गया। इस युद्ध ने समाजवादी क्रांति को भी जन्म दिया। इस प्रकार इसके परिणामस्वरूप व्यवस्था में विशेष रूप से परिवर्तन हो गए।

इटली-अबीसीनिया संग्राम
(1935 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम इटली के शासक मुसोलिनी के राज्य-विस्तार की इच्छा के कारण लड़ा गया। वह अपने शासनकाल में देश के गौरव को बढ़ाने के लिए इस युद्ध के पूर्व कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर पाया था। अतः उसने परिस्थितियों का फायदा उठाते हुए अबीसीनिया को अपना लक्ष्य बनाया। अबीसीनिया उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका में स्थित एक छोटा राज्य है, जिसे अब इथोपिया के नाम से जाना जाता है। मुसोलिनी विकास के लिए युद्ध को एक महत्त्वपूर्ण पहलू मानता था। वह कहता था कि युद्ध मानव के लिए उतना ही आवश्यक है जितना स्त्री के लिए मातृत्व। इसी कारण जापान ने जिस प्रकार से मंचूरिया पर अधिकार कर लिया था उसी प्रकार मुसोलिनी ने अबीसीनिया पर अधिकार करने के लिए कूटनीतिक चालों का सहारा लिया। 1926 ई. में मुसोलिनी ने अपनी साम्राज्य-विस्तार की भावना को व्यक्त करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा था, "हम भूमि के भूखे हैं, क्योंकि हमारे राष्ट्र की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है और हम ऐसा चाहते भी हैं।"

इस युद्ध के पूर्व 1896 ई. में अबीसीनिया एवं इटली के मध्य अटोवा की लड़ाई हो चुकी थी। उसमें इटली को अपमानजनक पराजय स्वीकार करनी पड़ी थी। अतः इटली को अपने अपमान का बदला लेने के लिए अच्छा अवसर मिल गया था।

अबीसीनिया सामरिक दृष्टिकोण से एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसी कारण इटली सर्वप्रथम इस पर अपना अधिकार करना चाहता था। उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका में अबीसीनिया के प्रसिद्ध दो टापू—इरीट्रिया तथा सोमाली लैंड कुछ अलग से थे। मुसोलिनी ने भूमध्यसागर पर अधिकार करने के लिए अबीसीनिया को अपना आधार बनाया; क्योंकि इससे ब्रिटेन पर, सूडान पर आक्रमण करना भी सरल हो जाएगा। साथ ही स्वतंत्र राज्यों के खनिज पदार्थों का दोहन भी सरलता से हाथ लग जाएगा। उस समय राष्ट्रसंघ की दुर्बलता तथा यूरोप में हिटलर के बढ़ते कदम के कारण पश्चिमी राष्ट्र इटली के लिए बाधा उत्पन्न नहीं कर सकते थे। अतः मौके का फायदा उठाते हुए इटली ने 1925 में इंग्लैंड के साथ संधि करके अबीसीनिया राष्ट्र की कुछ रियासतों को प्राप्त कर लिया। अबीसीनिया उस समय राष्ट्रसंघ का सदस्य था। अतः उसने अपनी रियासत के विरोध में शिकायत राष्ट्रसंघ से की। मुसोलिनी ने 1928 ई. में अबीसीनिया के साथ संधि कर ली। उसका यह बहाना था कि वह

ब्रिटिश चंगुल से अफ्रीका के उपनिवेश इरीट्रिया तथा सोमाली लैंड को बचाना चाहता है। इसी बहाने उसने पूर्वी अफ्रीका में सेना भेजनी भी आरंभ कर दी। 1932 ई. में इटली के तत्कालीन विदेशमंत्री ग्रांदी महोदय ने यह घोषणा की थी, "उत्तरी अफ्रीका के क्षेत्र का नए सिरे से बँटवारा किया जाना अत्यंत आवश्यक है; क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् राष्ट्रसंघ के निरीक्षण में शासित होनेवाले प्रदेशों का बँटवारा करते हुए इटली की पूरी तरह से उपेक्षा की गई थी। अतः सभ्यता के प्रसार तथा औपनिवेशिक राज्यों के हित के लिए इटली को उपयोगी कार्य करना है।"

इटली के इस इरादे को कुचलना फ्रांस तथा ब्रिटेन के वश में नहीं था; क्योंकि हिटलर का दबाव इन दोनों देशों की ओर निरंतर बढ़ता जा रहा था। इसी कारण 1928 ई. में मोरक्को के पश्चिमी तट पर स्थित टैंजियर, जो भूमध्यसागर तथा अटलांटिक सागर को जोड़ता था, में इटली को भी अधिकार दिया गया। व्यापारिक एवं सामरिक दृष्टि से वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था। उसमें फ्रांस, इंग्लैंड तथा स्पेन का अधिकार था, अतः अंतरराष्ट्रीय सरकार में इटली भी सम्मिलित हो गया। इस क्षेत्र में इटली की विशेष रुचि थी। ब्रिटेन के जोर देने पर इजिप्ट (मिस्र) एवं लीबिया की सीमा का निर्धारण नए सिरे से किया गया, जिससे इटली को कुछ नया प्रदेश प्राप्त हो गया था। लीबिया इटली के अधीन था, परंतु नई सीमा के कारण उसके राज्य-क्षेत्र में वृद्धि हो गई।

अबीसीनिया और इटली संघर्ष की समस्या पर अभी राष्ट्रसंघ (league of Nations) ने विचार भी करना आरंभ नहीं किया था कि फ्रांस के लवाल ने रोम जाकर
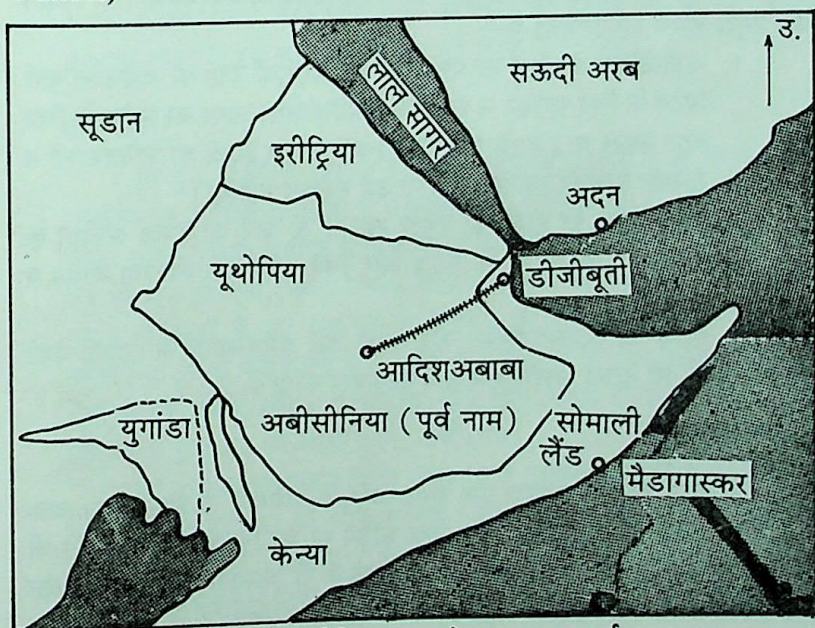
इटली–अबीसीनिया का संग्राम—1935 ई.

मुसोलिनी के साथ जनवरी 1935 ई. में एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए। फ्रांस उस समय जर्मनी के बढ़ते प्रभाव से भयभीत था। इसी कारण वह इटली के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ा रहा था।

दूसरी बात यह थी कि इटली जर्मनी एवं आस्ट्रिया के एकीकरण का विरोध कर रहा था। फ्रांस एवं इटली के मध्य समझौते को लवाल व मुसोलिनी के नाम से भी जाना जाता था। इस समझौते के अनुसार निम्नलिखित शर्तें तय की गई थीं—

1. फ्रांस ने पश्चिमी फ्रेंच अफ्रीका के अपने प्रदेश से 45,000 वर्ग मील भूखंड लीबिया को देना स्वीकार किया, जिससे इटली के उपनिवेश में वृद्धि हो सके।
2. इटली के अधीन इरीट्रिया को भी फ्रेंच सोमाली लैंड से मिला दिया गया, जिससे अदन की खाड़ी पर इटली को प्रभुत्व स्थापित करने का अवसर मिल सके।
3. अबीसीनिया की राजधानी आदिशअबाबा और जिबूती बंदरगाह को मिलानेवाली रेलवे लाइन में भी इटली को अधिकार दिया गया।
4. फ्रांस के अधीन ट्यूनेशिया में बड़ी संख्या में इटली के लोग रहते थे। उन्हें शिक्षा आदि के कुछ विशेष अधिकार भी दिए गए।
5. इसी के साथ एक गुप्त समझौता भी हुआ, जिसमें फ्रांस ने इटली को अबीसीनिया में अपना प्रसार करने का पूरा अवसर प्रदान किया था।

इटली के बढ़ते हुए राज्य-विस्तार के कारण ब्रिटेन अत्यंत भयभीत हो गया। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

1. अबीसीनिया में इटली का प्रभुत्व हो जाने पर पूर्वी देशों को जानेवाला मार्ग ब्रिटेन के लिए सुरक्षित न रह जाता; क्योंकि लाल सागर का ब्रिटेन के लिए बहुत महत्त्व था। उसके दक्षिणी-पश्चिमी तट पर इटली का शक्तिशाली व विशाल साम्राज्य स्थापित हो जाना उसे स्वीकार नहीं था।
2. अबीसीनिया पर इटली का प्रभुत्व स्थापित हो जाने का प्रभाव अफ्रीका के ब्रिटिश उपनिवेशों पर भी पड़ता और उनमें शांति और व्यवस्था कायम न हो सकती।
3. इटली की साम्राज्य-लिप्सा और बढ़ती तथा भूमध्यसागर के तटवर्ती देशों को भी अपनी अधीनता में लाने का प्रयत्न करता।

वास्तविक संघर्ष

इस समय इटली आधुनिक एवं उन्नत श्रेणी के हथियारों से संपन्न था। अतः अबीसीनिया का उसके सामने टिक पाना बहुत कठिन था; क्योंकि अब उसे ब्रिटेन से भी शस्त्रास्त्रों की आपूर्ति नहीं हो रही थी तथा अमेरिका ने भी तटस्थता की नीति अपनाकर युद्धरत देशों को हथियार देने बंद कर दिए थे। इन सभी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप

अबीसीनिया की प्रतिरक्षात्मक स्थिति बहुत नाजुक हो गई थी। मजबूरी के कारण ही उसे युद्ध स्वीकार करना पड़ा। 1935 में अबीसीनिया पर इटली ने आक्रमण कर दिया, जिससे आक्रमण के प्रथम अभियान में ही इटली के सैनिकों ने अपने श्रेष्ठ हथियारों एवं समरतंत्र के बल पर अबीसीनिया के सैनिकों को नहीं टिकने दिया। उसी दौरान राष्ट्रसंघ ने इटली को आक्रांता घोषित करके उसके विरुद्ध अनेक प्रतिबंध लगा दिए, जिनमें तेल को छोड़कर धन, कच्चा माल तथा शस्त्रास्त्र भी शामिल थे। ब्रिटेन उसके तेल निर्यात पर भी प्रतिबंध लगवाना चाहता था, परंतु फ्रांस और इटली की मित्रता के कारण यह संभव नहीं हुआ।

फ्रांस एवं ब्रिटेन के मध्य अबीसीनिया के मामले को लेकर एक गुप्त समझौता हुआ, परंतु वह समझौता सफल न हो सका, क्योंकि उस समझौते का पता सबको लग गया था। इस समझौते के आधार पर यह तय किया गया था कि अबीसीनिया का 2/3 भाग इटली को प्रदान कर दिया जाए। यदि यह समझौता सफल हो जाता तो इटली को बिना लड़े ही अबीसीनिया के 2/3 भाग पर कब्जा मिल जाता।

इधर इटली ने राष्ट्रसंघ के प्रतिबंधों के बावजूद अपना आक्रमण अभियान जारी रखा तथा इस युद्ध में विषाक्त रासायनिक गैसों और डमडम की बनी उन गोलियों का भी प्रयोग किया जिनका प्रयोग करना पूर्णरूप से वर्जित था। इन घातक एवं संहारक हथियारों के प्रयोग से अबीसीनिया की सेना इटली की सेना के आगे न ठहर सकी। अंततः मई 1936 ई. में अबीसीनिया की राजधानी आदिशअबाबा में भी इटली की सेना ने अपना झंडा फहरा दिया और अपने अधिकार की घोषणा भी कर दी। इस प्रकार अक्टूबर 1935 के इस आक्रमण का अंत मई 1936 में हो गया।

परिणाम

इस युद्ध के परिणामस्वरूप इटली का साम्राज्य-विस्तार तो हो ही गया, साथ ही सामरिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र अबीसीनिया भी पूर्णरूप से अधीन हो गया। 1930-32 की आर्थिक मंदी के कारण परेशान इटली को खनिज संपदा से संपन्न क्षेत्र भी प्राप्त हो गया, जिससे उसकी आर्थिक समस्या का समाधान एवं लाभ भी मिल गया। हाँ, इटली के इस आक्रमण से राष्ट्रसंघ की प्रतिष्ठा को भारी आघात अवश्य पहुँचा। जापान के बाद इटली ने राष्ट्रसंघ की मर्यादा को भंग कर दिया। अब छोटे-छोटे देशों में यह भावना उत्पन्न हो गई कि स्वयं शक्तिशाली होना आवश्यक है; क्योंकि राष्ट्रसंघ के द्वारा रक्षा की आशा करना व्यर्थ होगा।

इस युद्ध के फलस्वरूप ब्रिटेन एवं फ्रांस ने मुसोलिनी की नीति का विरोध किया; परंतु जर्मनी ने तटस्थता की नीति अपनाई। इससे जर्मनी एवं इटली में मित्रता स्थापित हो गई और दोनों में 26 अक्टूबर, 1936 में एक समझौता हो गया, जिसे रोम-बर्लिन धुरी (Axix) भी संबोधित किया गया। इस प्रकार पश्चिमी देशों में एक बार फिर नए सिरे

से गुटबंदी शुरू हो गई।

सैन्य शिक्षाएँ

इस युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं—

1. किसी भी युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि परिस्थितियों के आधार पर काम किया जाए; जैसाकि इटली ने मौके का लाभ उठाया तथा एक महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त करके अपने राष्ट्र को सशक्त बनाने में सफल हुआ।
2. युद्ध में श्रेष्ठ हथियार सदैव युद्ध के निर्णय को अपने पक्ष में करते हैं; जैसे इटली के रासायनिक हथियारों ने अबीसीनिया की सेना के सामने कहर ढा दिया, जिससे उसे मजबूर होकर पराजय स्वीकार करनी पड़ी।
3. श्रेष्ठ नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका सदैव रहती है। इस युद्ध में इटली के मुसोलिनी को दृढ़ इरादा एवं कुशल नेतृत्व प्रतिभा के कारण ही सफलता मिली। उसने राष्ट्रसंघ के प्रतिबंधों के बावजूद अपना अभियान जारी रखा और एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
4. आक्रामक कार्यवाही से अनेक लाभ मिलते हैं; जैसे समय एवं स्थान की सुविधा तथा उत्साह। इस युद्ध में इटली ने आक्रामक नीति का प्रयोग करके सभी परिस्थितियों का लाभ उठाया और सामरिक एवं आर्थिक महत्त्व के क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया।
5. किसी भी युद्ध में वही पक्ष विजयी होता है जो स्वयं की तैयारी पर निर्भर रहता है, जैसे इटली इस युद्ध में स्वयं तैयार था; जबकि अबीसीनिया ब्रिटेन एवं अमेरिका की सहायता पर निर्भर था। अंततः समय पर सहायता न मिल सकी और उसे अपना अस्तित्व खोना पड़ा।
6. लक्ष्य का चुनाव एवं उसका निर्वाह करना भी सफलता का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है; जैसे इस युद्ध में जनरल मुसोलिनी ने अपनी निर्धारित योजना के अनुसार कार्यवाही करके शत्रु को पराजित होने के लिए मजबूर कर दिया।
7. युद्ध में चकित करके शत्रु को निषिद्ध कर देना भी सफलता का एक प्रमुख रहस्य है; जैसे मुसोलिनी ने शत्रु के विरुद्ध रासायनिक हथियारों तथा डमडम की गोलियों का प्रयोग करके उसको आश्चर्य में डाल दिया और एक निर्णायक तथा ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।

सिद्दी बैरानी का संग्राम

(1940 ई.)

यह प्रसिद्ध संग्राम इटली तथा ब्रिटेन के मध्य 9 दिसंबर से 11 दिसंबर, 1940 में लड़ा गया। इस संग्राम में ब्रिटिश सेना का नेतृत्व जनरल वेवल तथा इटली की सेना का नेतृत्व जनरल ग्रेजियानी ने किया था। अपनी सामरिक विशेषताओं के परिणामस्वरूप ही ब्रिटेन को इस युद्ध में निर्णायक सफलता प्राप्त हुई थी। इटली के नायक मुसोलिनी ने अपने सेनापति जनरल ग्रेजियानी को 15 सितंबर, 1940 को मिस्र की सीमा पर स्थित सिद्दी बैरानी नामक स्थान पर पहुँचने का आदेश दिया। इटली की सेना दो दलों में विभक्त होकर समुद्री किनारे पर स्थित सड़क के साथ-साथ आगे बढ़ने लगी। इटली की सेना ने बक-बक नामक स्थान पर अधिकार करने के साथ ही सिद्दी बैरानी की ओर बढ़ना जारी रखा। इस दौरान ब्रिटिश सेना के साथ छोटी-छोटी झड़पें भी जारी रहीं और 17 सितंबर को सेना सिद्दी बैरानी तक पहुँचने में सफल हो गई। मार्शल ग्रेजियानी ने सिद्दी बैरानी पर ही अपनी सेना को रोक लिया और वहीं से पास स्थित स्थान; जैसे— मैकटिला, प्वाइंट-90, तुम्मार पश्चिम, तुम्मार पूर्व, निबीवा, सोफाफी पूर्व तथा सोफाफी पश्चिम आदि पर भूमिगत किलेबंदी आरंभ कर दी।

जब ब्रिटिश सेना को इस बात का पता लगा तो उसने 20 अक्टूबर को इटली के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और जनरल वेवल को इसकी छानबीन का आदेश दिया गया। छानबीन के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि 9 तथा 10 दिसंबर की चाँदनी रात में इटली की सेना पर आक्रमण होना चाहिए। इसी योजना के अनुसार युद्ध की तैयारी भी होने लगी। लेकिन युद्ध आरंभ होने के कुछ समय पूर्व पता चला कि निबीवा तथा सोफाफी कैंपों के मध्य 15 या 20 मील चौड़ा क्षेत्र है, जहाँ से इटली के कैंपों को एक-दूसरे से दूर रखकर आक्रमण करना सामरिक दृष्टिकोण से ब्रिटिश सेना के पक्ष में होगा, क्योंकि वहाँ से इटली के शिविरों में अधिकार करना सबसे अधिक लाभदायी प्रमाणित होगा। ब्रिटिश सेना सिद्दी बैरानी तथा नील नदी के मध्य तैनात थी, जिसे 'पश्चिमी रेगिस्तानी ब्रिटिश फोर्स' कहा जाता था, जिसका संचालन मेजर जनरल ओ. कानर द्वारा लिया जा रहा था। इसमें अनेक ब्रिगेड तथा प्रबंधात्मक सेनाएँ भी सम्मिलित थीं।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

लीबिया के दूसरे संग्राम के अंतर्गत इस अभियान में दोनों पक्षों द्वारा इस प्रकार

से सैन्य संगठन एवं सामरिक संरचना की गई थी—

इटली की सेना ने अपनी सामरिक किलेबंदी कर ली थी। उसके इस क्षेत्र में लगभग 80,000 सैनिक तथा 120 टैंक तैनात थे। इटली की वायुसेना भी इंग्लैंड की वायुसेना से तीन गुना अधिक थी। किलेबंदी के स्थानों पर पर्याप्त मात्रा में हथियार भी मौजूद थे तथा आपूर्ति-व्यवस्था बनाए रखने का उचित प्रबंध था, जिसमें भोजनालय, चिकित्सालय, शयनकक्ष आदि की विशेष व्यवस्था भी उपलब्ध थी। प्रवेश-मार्गों पर शत्रु को रोकने के लिए विस्फोटक सुरंगें भी बिछा दी गई थीं तथा चारों ओर अपने टैंकों को भी तैनात कर रखा था। टैंकों के पीछे एंटी टैंक तोपों तथा अन्य प्रकार की तोपों को भी लगा रखा था। प्रतिरक्षात्मक बेड़े के रूप में सेनाओं के 2 डिवीजन भी लगाए गए थे।

ब्रिटेन की सैन्य-शक्ति इटली की तुलना में कम थी। उसकी सेना नील नदी तथा सिद्दी बैरानी के बीच में तैनात थी। ब्रिटिश फोर्स इस प्रकार से थी—

1. चौथा भारतीय पैदल डिवीजन—
   - (i) पाँचवाँ भारतीय पैदल ब्रिगेड,
   - (ii) ग्यारहवाँ भारतीय पैदल ब्रिगेड,
   - (iii) सोलहवाँ ब्रिटिश पैदल ब्रिगेड।
2. सातवाँ कवचित डिवीजन—
   - (i) सातवाँ कवचित ब्रिगेड,
   - (ii) चौथा कवचित ब्रिगेड,
   - (iii) सहायक दल।
3. सातवाँ रॉयल टैंक रेजीमेंट।
4. सेल्बी फोर्स।

कुल मिलाकर लगभग 31,000 सैनिक, 275 टैंक तथा 120 तोपें थीं।

ब्रिटिश आक्रमण योजना इस प्रकार से तैयार की गई थी—

1. निबीवा तथा सोफाफी के मध्य 20 मील के असुरक्षित क्षेत्र की ओर से मोटरों पर सवार दस्ते सहित एक कवचित दल को भेजना था।
2. खाली स्थानों को पार करने के पश्चात् यही दल उत्तर की ओर से घूमकर पाँच उत्तरी इटैलियन कैंपों पर क्रमशः आक्रमण करेगा।
3. इस अभियान की सफलता के पश्चात् सोफाफी के इटैलियन कैंपों पर अधिकार जमाना था।

इस कार्यवाही के लिए 5 दिनों का समय निर्धारित किया गया; क्योंकि इस क्षेत्र की दूरी लगभग 70 मील की थी, जिससे यौद्धिक पूर्ति के लिए आवश्यक सामग्री को आगे पहुँचाया गया और ब्रिटिश सैन्य दल से लगभग 20 या 30 मील दूरी पर समस्त सेना के लिए पर्याप्त रसद की व्यवस्था भी कर दी गई। इसके साथ

ही शत्रु के निकट पहुँचने के लिए सैनिक योजनाओं को तीन रूपों में लागू करना था—

1. 7 दिसंबर की रात्रि को 30 मील आगे बढ़ना।
2. 8 दिसंबर को प्रातःकाल खुले क्षेत्र में रुकना और रात्रि के समय पुनः आगे बढ़ना जारी रखना।
3. 9 दिसंबर को प्रातःकाल शत्रु पर आक्रमण करना।

ब्रिटिश सेना की इस यौद्धिक योजना में इटली को चारों ओर से भयभीत करके अधिक-से-अधिक हानि पहुँचाना था। इसी कारण अपने समुद्री बेड़े द्वारा सिद्दी बैरानी तथा मैकटिला पर बमबारी करके समुद्री किनारेवाली सड़क पर अपना दबाव रखना था। इसी समय ब्रिटिश वायुसेना द्वारा इटली के हवाई अड्डों को आकस्मिक शिकार बनाना था, जिससे उन्हें उड़ान भरने का मौका न मिले। इस प्रकार वायुसेना का सहयोग थलसेना को भी प्राप्त हो जाता। 5 दिनों की यह योजना लगभग 32 दिनों की एक निर्णायक लड़ाई बन गई।

अपनी योजनाओं के अनुसार ब्रिटिश सेना 7 दिसंबर को मार्च करते हुए आगे बढ़ी और शत्रु की प्रतिरक्षात्मक स्थिति के निकट जा पहुँची। शत्रु को इसका तनिक भी आभास न हो सका। 8 दिसंबर को चौरस रेगिस्तान में ब्रिटिश सेना अपनी साज-सज्जा सहित शांतिपूर्वक विश्राम कर रही थी। उसी समय इटली का एक गश्ती वायुयान ब्रिटिश सेना के ठीक ऊपर से निकला; परंतु उसे ब्रिटिश सेना की उपस्थिति का तनिक भी अँदेशा न हुआ। 8 दिसंबर की रात्रि को पुनः योजनाबद्ध आगे बढ़ना शुरू हो गया।

वास्तविक संग्राम

9 दिसंबर, 1940 को प्रातःकाल लगभग 7 बजे ब्रिटिश सेना की सातवीं रॉयल टैंक रेजीमेंट तथा ग्यारहवीं भारतीय पैदल ब्रिगेड ने आक्रमण का अभियान अपनी गोलाबारी के साथ शुरू कर दिया। उस समय ब्रिटिश सेना के 'I' टैंक निबीवा की ओर आक्रमण करते हुए बढ़ रहे थे। इसके जवाब में इटली की सेना के टैंक भी आगे की ओर बढ़े और अपनी 37 एम. एस. गनों के द्वारा ब्रिटिश टैंकों पर प्रत्याक्रमण कर दिया। बंदूकों के लगातार तीव्र प्रहार के बावजूद ब्रिटिश सेना के 'I' टैंक सुरक्षित दिखाई दिए तो इटली की सेना में हतोत्साह छा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सेना के टैंकों ने अपना आगे बढ़ने का अभियान क्रमशः जारी रखा और लगभग 8.30 बजे प्रातः ही निबीवा पर अधिकार कर लिया। इस विजित क्षेत्र में अधिकार जमाए रखने का उत्तरदायित्व ग्यारहवीं भारतीय पैदल ब्रिगेड को सौंपा गया। इस प्रथम आक्रमण में यद्यपि इटली की तोपों, टैंकों, मशीनगनों, हथगोलों तथा एंटी टैंक राइफलों ने जोरदार फायर किए; परंतु वे ब्रिटिश टैंकों को तोड़ने में सफल नहीं हो पाईं, इस मुठभेड़ में इटली

की सेना के जनरल मलेटी भी मारे गए। इस प्रकार ब्रिटिश सेना को आक्रमण के प्रथम चरण में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

अभियान के द्वितीय चरण में ब्रिटिश सेना ने पश्चिमी तुम्मार को अपना लक्ष्य बनाया। इस कार्यवाही के लिए सातवीं रॉयल टैंक रेजीमेंट तथा पाँचवीं भारतीय पैदल ब्रिगेड को रखा गया। तुम्मार के निकट लगभग 1.30 बजे दोपहर ब्रिटिश सेना
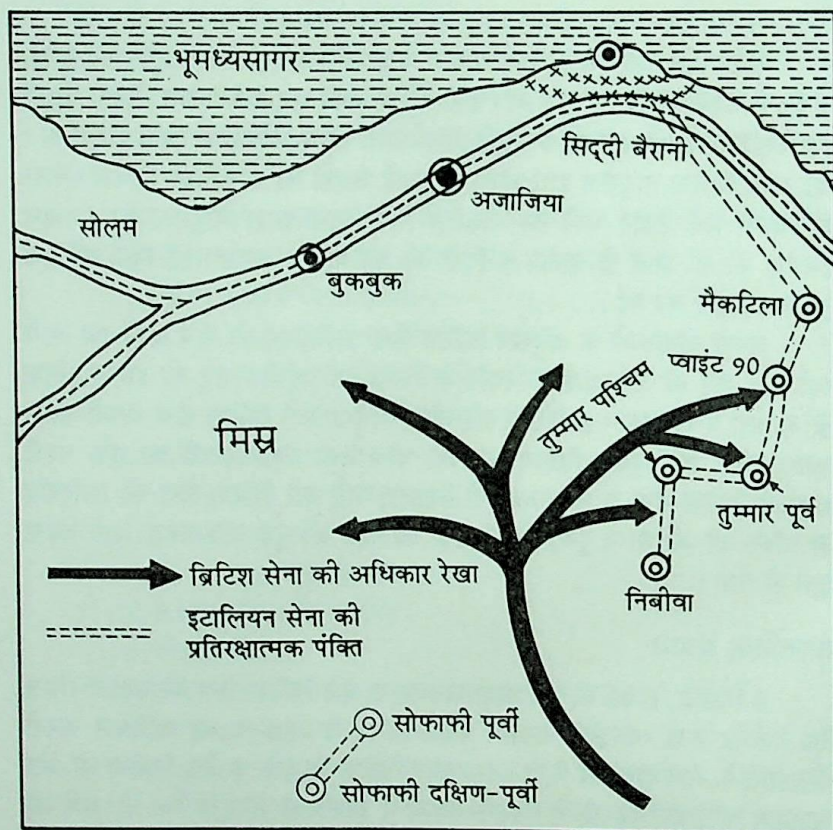
सिद्दी बैरानी का संग्राम—1940 ई.

ने अपने टैंकों से फायर आरंभ कर दिया तथा भारतीय पैदल ब्रिगेड ने जोरदार धावा बोल दिया। इस आक्रमण के सामने इटली की सेना नहीं टिक सकी। वह बुरी तरह लड़खड़ा गई और निबीवा की भाँति पश्चिमी तुम्मार में भी ब्रिटिश सेना ने आसानी से सफलता प्राप्त कर ली। उसकी सफलता का प्रमुख रहस्य यही था कि अंग्रेजों के 'I' टैंकों के सामने इटली के टैंक एवं सेना ठहर नहीं सकी और इटली की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था भी भंग हो गई। इस कारण इटली की सेना निराश हो गई थी।

पश्चिमी तुम्मार में सफलता प्राप्त करने के साथ ही ब्रिटिश सेना की चौथी भारतीय डिवीजन के सेनापति को पूर्वी तुम्मार पर आक्रमण की जिम्मेदारी सौंपी गई। ब्रिटिश सेना की तोपों और टैंकों ने उत्तर की ओर से आग उगलनी आरंभ कर दी और वह तुम्मार पूर्व की सीमा में प्रविष्ट हो गई। इस प्रकार रात के आरंभ होने से पूर्व ही इस क्षेत्र पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया। इटली के कैंप क्रमशः ब्रिटिश सेना के द्वारा ध्वस्त किए जाते रहे, जिससे इटली की सेना का उत्साह निरंतर गिरता गया।

पूर्वी तुम्मार में ब्रिटिश सेना के अधिकार के साथ ही चौथी भारतीय डिवीजन के सेनापति ने तोड़-फोड़ एवं विनाश के आदेश प्रसारित कर दिए। जिसके परिणामस्वरूप सैनिकों ने इटली की प्रतिरक्षा-पंक्ति को उजाड़ना शुरू कर दिया। सिद्दी बैरानी से बक-बक (Buq-Buq) की ओर जानेवाली सड़क को भी तोड़ दिया, ताकि सिद्दी बैरानी तथा मैकटिला की किलेबंदी में घिरी इटैलियन सेना को विनष्ट किया जा सके और वह पीछे की ओर से भी कोई सैनिक सहायता प्राप्त न कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि 9 दिसंबर की रात्रि को ही चौथे भारतीय डिवीजन ने रेगिस्तान को पार करके इस तटीय सड़क को पूरी तरह से नष्ट कर दिया।

अंतिम अभियान के रूप में सिद्दी बैरानी के कैंप पर अधिकार करने की कार्यवाही आरंभ की गई। इस कार्यवाही में भी चौथी भारतीय डिवीजन की प्रमुख भूमिका रही। 10 दिसंबर, 1940 को सायंकाल लगभग 4.30 बजे ब्रिटिश सेना सिद्दी बैरानी की ओर बढ़ी, जिसमें सोलहवाँ ब्रिटिश पैदल ब्रिगेड भी शामिल था। ब्रिटिश सेना ने अपने 'I' टैंकों से आक्रमण आरंभ किया। दोनों पक्षों में जोरदार संघर्ष शुरू हो गया। इटैलियन सेना की सबसे बड़ी कमजोरी यही थी कि वह ब्रिटिश सेना के टैंकों को रोकने तथा नष्ट करने में समर्थ न थी। ब्रिटिश सेना के टैंक, तोपें एवं क्रूजर उसकी पैदल सेना को आगे बढ़ने के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। अतः रात होते-होते ब्रिटिश सेना ने सिद्दी बैरानी के कैंप पर भी अपना अधिकार कर लिया। इस पर अधिकार करने के पश्चात् ब्रिटिश सेनानायक आर.ए.ओ. कोनार (R.A.O. Konar) ने अपनी सातवीं कवचित सेना को आदेश दिया कि वह सोफाफी में तैनात इटैलियन सेना को पीछे भागने की स्थिति में अपनी कार्यवाही करे। कुछ सैनिक पराजित इटली की सेना का पीछा करने के लिए पश्चिम की ओर तैनात किए। 11 दिसंबर को बक-बक तथा सोलुम के मध्य इटली के 14,000 सैनिक बंदी बना लिये गए। इस प्रकार इस युद्ध का अंत हो गया।

परिणाम

इस ऐतिहासिक एवं निर्णायक संग्राम के परिणामस्वरूप इटली की प्रतिष्ठा को भारी आघात लगा और ब्रिटिश सेना का जहाँ उत्साह बढ़ा, वहाँ उसकी प्रतिष्ठा को चार चाँद भी लग गए। इस संग्राम में इटली के लगभग 52,000 सैनिक बंदी बनाए गए तथा 73 टैंक, 237 तोपें, 1,000 मोटरगाड़ियाँ और अन्य सैनिक सामग्री भी ब्रिटिश सेना के

हाथ लगी। इस युद्ध के साथ ही लीबिया के द्वितीय संग्राम का प्रथम चरण पूरा हो गया।

सैन्य शिक्षाएँ

इस प्रसिद्ध संग्राम से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. युद्ध का प्रथम एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है—लक्ष्य का चयन एवं उसका निर्वाह करना। इस युद्ध में ब्रिटिश सेना ने अपने निर्धारित लक्ष्य के आधार पर कार्यवाही की और एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
2. युद्ध में आक्रामक कार्यवाही के द्वारा ही विजय के परिणाम की आशा की जा सकती है; जैसे इस संग्राम में ब्रिटिश सेना ने आक्रामक कार्यवाही अपनाकर समय, स्थान एवं उत्साह आदि तत्त्वों का लाभ उठाया; जबकि इटली की सेना ने प्रतिरक्षात्मक नीति को अपनाया, जो उसकी पराजय का प्रमुख कारण बनी।
3. युद्ध में शत्रु को विस्मित करना ही सफलता की कुंजी कहा गया है; जैसे इस युद्ध में ब्रिटेन की सफलता का प्रमुख रहस्य यही था कि इटली की सेना को ब्रिटिश सेना की उपस्थिति एवं उनकी कार्यवाही का पूर्व आभास तक नहीं हुआ और वह आकस्मिक आक्रमण से आश्चर्यचकित हो गई, जो उसकी पराजय का प्रमुख कारण रहा।
4. इटली की पराजय का एक प्रमुख कारण सुरक्षा के सिद्धांत की पूर्ण अवहेलना थी; क्योंकि उसकी समस्त सूचनाएँ ब्रिटिश सेनाएँ प्राप्त करती रहीं, जबकि इटली की वायुसेना उनकी (ब्रिटिश) सेना के पास पड़े जमाव को देखने में असमर्थ रही। यही कारण है कि सुरक्षा के सिद्धांत की उपेक्षा भी पराजय के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।
5. युद्ध में श्रेष्ठ हथियार भी निर्णायक भूमिका अदा करने में सदैव अग्रणीय रहते हैं; जैसे इस युद्ध में ब्रिटेन के 'I' टैंकों को इटली की तोपें तथा टैंक तोड़ने तथा रोकने में समर्थ न हो सके।
6. प्रतिरक्षात्मक स्थिति भी कभी पराजय के बहुत अधिक अवसर बढ़ा देती है; जैसे इस संग्राम में इटली की दोषपूर्ण प्रतिरक्षात्मक स्थिति यह थी कि शिविरों अथवा कैंपों के मध्य बहुत अधिक दूरी थी। इसी कारण ब्रिटिश सेना ने क्रमशः एक-एक को ध्वस्त कर दिया और निर्णायक सफलता प्राप्त की।
7. श्रेष्ठ नेतृत्व सदैव सफलता का सहयोगी होता है। ब्रिटिश सेना का नेतृत्व कर रहे जनरल वेवल में वैयक्तिक दक्षता, सूझ-बूझ तथा दूरदर्शिता थी, जिसके आधार पर अपनी योजनाओं का क्रियान्वयन करके ऐतिहासिक

सफलता प्राप्त करने में वह सफल हुआ।

8. ब्रिटिश वायुसेना ने प्रथम अभियान में ही इटली के हवाई अड्‌डों को नष्ट कर दिया, जिससे इटली की सेना पंगु-सी हो गई थी। यही उसकी पराजय का एक प्रमुख कारण था।
9. सहयोग का सिद्धांत भी युद्ध में अत्यंत निर्णायक होता है, जैसे ब्रिटिश सेना ने पैदल, टैंकों तथा क्रूजर (जलयान) आदि का सहयोग अपनाकर कार्यवाही की और एक महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की।
10. युद्ध में सुव्यवस्थित योजना तथा सुचारु रूप से संचालन भी सफलता का प्रमुख रहस्य होता है।

द्वितीय महायुद्ध

(1939 से 1945 ई. तक)

बीसवीं सदी के प्रथम महायुद्ध के 21 वर्ष बाद सितंबर 1939 ई. में द्वितीय महायुद्ध की भीषण ज्वाला भड़क उठी और शीघ्र ही उसने संपूर्ण संसार को अपनी चपेट में ले लिया। इस युद्ध के अध्ययन के पूर्व इस बात की जानकारी होना आवश्यक है कि किन परिस्थितियों के कारण इतने कम समय में यूरोप में पुनः युद्धाग्नि भड़क उठी, जिसने विश्व को अपनी विनाशकता एवं भयानकता का अभूतपूर्व परिचय दिया। इस युद्ध का बीजारोपण प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के साथ ही कर दिया गया था और अंततः यह बीज अंकुरित होकर रहा। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् वार्साय की संधि के द्वारा मित्र राष्ट्रों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति की तथा जर्मनी का शोषण ही नहीं किया, बल्कि उसकी प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचाया; जिससे उनमें बदले की भावना आ गई थी।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व राष्ट्रीयता की भावना के कारण राष्ट्रसंघ पूरी तरह विफल हो चुका था। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रों में साम्राज्यवाद की लिप्सा जाग्रत हो गई थी। जर्मनी, जापान एवं इटली भी अपना क्षेत्र-विस्तार करने के लिए उतावले थे। उसी दौरान एक अत्यंत प्रतिभाशाली तथा कूटनीतिज्ञ अधिनायक ने जर्मनी की बागडोर अपने हाथ में सँभाल ली थी। उसने वार्साय की संधि को समाप्त करके जर्मनी की प्रतिष्ठा में वृद्धि करना आरंभ कर दिया, जिससे द्वितीय महायुद्ध की पहल शुरू हो गई थी। वर्ष 1930 की आर्थिक मंदी ने उपनिवेशविहीन राज्यों को एकदम खोखला कर दिया था, जिससे प्रभावित होकर राष्ट्रों ने आक्रामक नीति अपनानी शुरू कर दी थी। इसी उद्देश्य से जापान ने मंचूरिया पर हमला कर दिया था। इसके साथ यूरोपीय राष्ट्रों ने जो तुष्टीकरण की नीति अपनाई, उससे आक्रमणकारी राष्ट्रों को बढ़ावा मिला और द्वितीय महायुद्ध के कारणों को सक्रिय सहयोग दिया।

जिस समय जर्मनी और इटली में अधिनायकवाद का बोलबाला था उस समय यूरोप दो शिविरों में विभक्त हो गया था। एक ओर अधिनायकवादी देश जर्मनी एवं इटली थे, तो दूसरी ओर इंग्लैंड और फ्रांस जैसे लोकतंत्रीय देश थे। साथ-ही-साथ अनेक राष्ट्रों की नीतियाँ भी ऐसी थीं जो टकराव के लिए उत्तरदायी थीं; जैसे—फ्रांस की सुरक्षात्मक नीति, रूस की साम्यवादी नीति, ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति तथा अमेरिका की पृथक्कतावादी नीति। समस्त संसार 1939 ई. तक धुरी राष्ट्र और मित्र राष्ट्रों के दो

शक्तिशाली गुटों में विभक्त हो गया था।

युद्ध का आरंभ

1 सितंबर, 1939 में एडाल्फ हिटलर के द्वारा पोलैंड पर आक्रमण के साथ ही युद्ध के बारूद में चिनगारी लग गई और ब्रिटेन व फ्रांस ने भी जर्मनी की इस कार्यवाही के कारण उसके विरुद्ध विधिवत् युद्ध की घोषणा कर दी। आक्रमण के इस प्रथम अभियान में जर्मनी को एक ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हुई, जिससे उसका उत्साह बढ़ गया। उसने हॉलैंड, बेल्जियम और लक्जमबर्ग को अपने अधिकार में कर लिया तथा फ्रांस के विरुद्ध भी अपनी योजना निश्चित कर ली।

जर्मनी की फ्रांस के विरुद्ध योजना को 'प्लान पेलो' के नाम से संबोधित किया गया था। इसमें हिटलर ने यह तय किया था कि फ्रांस के विरुद्ध पश्चिमी क्षेत्र में आक्रामक कार्यवाही 17 जनवरी, 1940 ई. को शुरू की जाएगी, परंतु 10 जनवरी को जर्मनी के एक वायुयान को बेल्जियम में जबरदस्ती उतार लिये जाने से प्राप्त दस्तावेज से उसकी यह योजना प्रकट हो गई, इसी से इस आक्रमण को कुछ दिन के लिए टाल दिया गया।

हिटलर ने 22 फरवरी, 1940 को पश्चिमी यूरोप में आक्रमण की योजना को अंतिम रूप दिया। उसकी यह योजना तीसरी आर्मी ग्रुप पर आधारित थी, जिसे क्रमशः ए, बी तथा सी वर्गों में विभक्त कर रखा था, जिसका नेतृत्व जनरल रंडस्टीट, जनरल वोन-वोक तथा जनरल वोन-लीज कर रहे थे। संक्षेप में उनकी योजना इस प्रकार थी—

आर्मी ग्रुप 'ए' : इसमें दूसरी, चौथी, बारहवीं तथा सोलहवीं आर्मी थीं। इनके साथ चौवालीसवाँ डिवीजन तैनात था। इसको ओचेन तथा लक्जमबर्ग ब्रेक के मध्य बढ़ना था और नामूर तथा सीडन के मध्य होते हुए फ्रांस में प्रवेश करना था। इसके साथ ही शत्रु को सोम नदी के उत्तर की ओर रोके रखना था।

आर्मी ग्रुप 'बी' : इसमें छठी तथा अठारहवीं आर्मी के साथ 28 डिवीजन कवचयुक्त गाड़ियों को विंटरविज्क तथा ओचेन के मध्य कूच करना था। इसे उत्तर में बेल्जियम तथा दक्षिण में हॉलैंड को कुचलना तथा हवाई अड्डों को अपने अधिकार में करके आर्मी ग्रुप 'ए' के दाहिने पार्श्व को संरक्षण प्रदान करना था।

आर्मी ग्रुप 'सी' : इसमें पहली तथा सातवीं आर्मी थी, जिसके साथ सत्रहवीं डिवीजन को निरीक्षण करने की बागडोर सौंपी गई थी, जिसे मेजीनो पंक्ति पर आकस्मिक आक्रमण करके शत्रु को आश्चर्यचकित करना था।

इसी योजना के तहत 10 मई, 1940 को आक्रमण का आदेश हिटलर द्वारा दिया गया। जो प्रातःकाल 5.35 बजे से शुरू हो गया। स्थलसेना की घेराबंदी के साथ-साथ वायुसेना के द्वारा भी भीषण आक्रमण किया गया। 11 मई, 1940 तक हॉलैंड के अनेक हवाई अड्डों पर जर्मन सेनाओं ने अपना अधिकार जमा लिया था। फ्रांस एवं ब्रिटेन ने
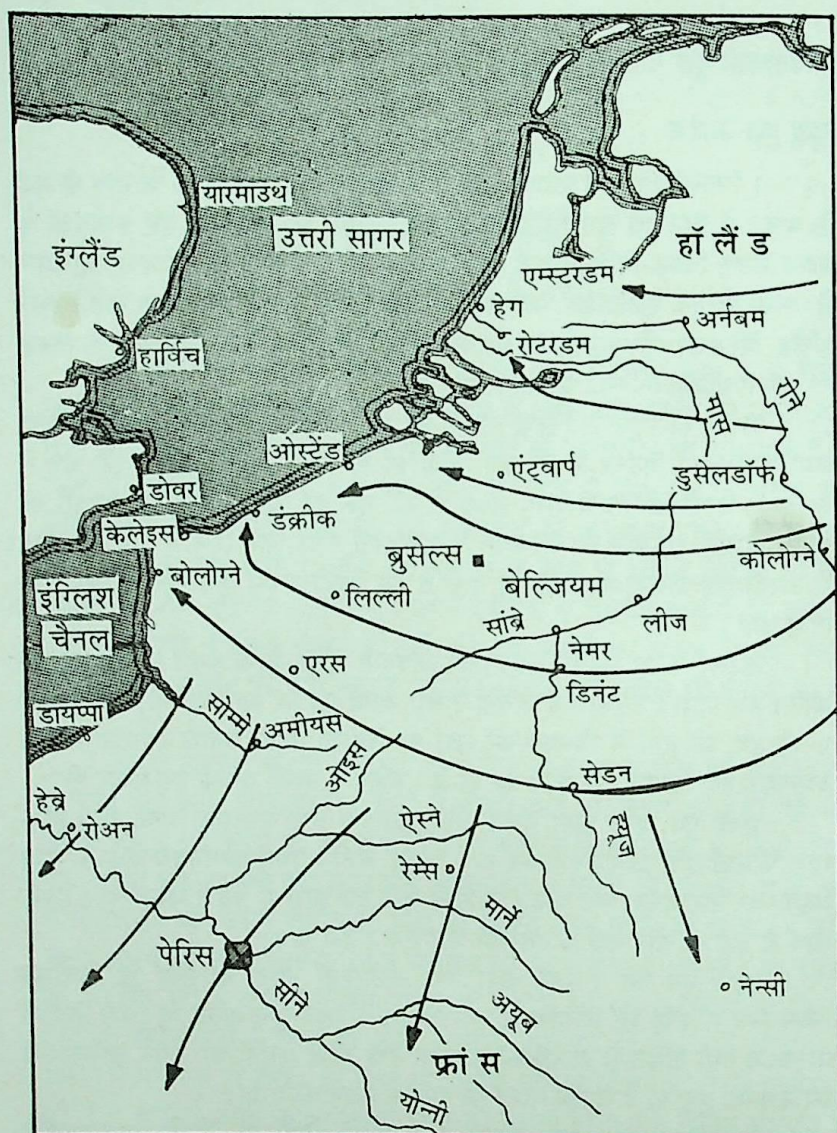
द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मन सेना की आक्रमणात्मक कार्यवाही, मई-जून 1940

अपनी सेनाएँ हॉलैंड, नार्वे एवं डेनमार्क की सुरक्षा के लिए भेजीं; परंतु उन्हें शीघ्र ही अपनी सीमा-सुरक्षा के कारण वापस बुला लिया था। प्रथम जर्मन अभियान से तो डेनमार्क इतना आतंकित हो गया था कि बिना युद्ध के ही उसने आत्मसमर्पण कर दिया। 30 मई, 1940 तक ज़र्मनी की सेनाओं की विजय-पताका हॉलैंड, नार्वे, बेल्जियम तथा

लक्जमबर्ग में फहराने लगी थी। इसके बाद उसने फ्रांस को अपना लक्ष्य बनाया और 14 जून, 1940 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में भी प्रवेश पा लिया। अतः फ्रांस एवं जर्मनी के मध्य एक युद्ध विराम संधि हुई, जिसमें जर्मनी ने फ्रांस के दो महत्त्वपूर्ण प्रांत अपने अधीन करके अपने अपमान का बदला ले लिया। जर्मनी की इस सफलता के साथ ही यूरोपीय देशों में उसका बोलबाला हो गया और इटली ने भी जर्मनी की मित्रता की दुहाई देते हुए युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया।

फ्रांस की पराजय के बाद जर्मनी का प्रमुख लक्ष्य ब्रिटेन को ध्वस्त करना था। अतः उसने अपनी वायुसेना द्वारा जोरदार आक्रमण किया; परंतु ब्रिटिश सेना एवं नागरिकों ने बड़े धैर्य से काम लिया, जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी की वायुसेना को सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इस अभियान में जर्मनी की वायुसेना को भारी हानि भी उठानी पड़ी थी। अंततः एडाल्फ हिटलर ने अपने विजय अभियान को बाल्कन प्रायद्वीप की ओर मोड़ दिया। ब्रिटिश सरकार को इस समय सबसे बड़ा खतरा न तो जर्मनी के सीधे आक्रमण से था और न ही जर्मनी के अप्रत्यक्ष आक्रमण से; बल्कि ब्रिटेन को सबसे बड़ा खतरा डॉलर (मुद्रा) की कमी से था। जर्मनी की वायुसेना ब्रिटिश अभियान में इस कारण सफल नहीं हो सकी थी, क्योंकि ब्रिटेन में राबर्ट वाटसन-वाट द्वारा 'राडार' का आविष्कार कर लिया गया था।

27 सितंबर, 1940 ई. को जर्मनी, जापान तथा इटली के मध्य बर्लिन में एक त्रिशक्ति संधि हुई, जिन्हें धुरी राष्ट्र के नाम से भी संबोधित किया गया। इन तीनों राष्ट्रों ने मध्य-पूर्व एशिया तथा रूस के विरुद्ध अपना आक्रमण अभियान जारी करने की योजना बनाई। जापान इस संधि में इस कारण सम्मिलित हुआ था कि फ्रांस और ब्रिटेन के पतन के पश्चात् पूर्वी एशिया में उसका वर्चस्व सरलता से स्थापित हो जाएगा। इसके बाद जब ब्रिटिश सेना का पतन नहीं हुआ तो जापान ने अमेरिका के साथ दोस्ती का हाथ बढ़ाया; परंतु इसमें भी वह कामयाब नहीं हुआ।

22 जून, 1941 ई. को हिटलर ने रूस पर अपनी योजना के अनुसार आक्रमण कर दिया। जर्मनी के इस आकस्मिक हमले से रूस को भारी हानि उठानी पड़ी और जर्मनी ने रूस के कुछ क्षेत्र पर अधिकार करके स्टालिनग्राद को घेरने का प्रयास किया; परंतु रूस के राष्ट्रपति ने स्थिति की गंभीरता को देखते हुए अपनी सेना को पूरी शक्ति के साथ जर्मनी के विरुद्ध लगा दिया, जिसके परिणामस्वरूप रूस पर विजय प्राप्त करने की जर्मनी की आशा की किरण बुझ ही नहीं गई, बल्कि भारी हानि के साथ पीछे हटने के लिए भी उसे मजबूर होना पड़ा। जर्मनी की योजना यह थी कि ब्रिटेन पर आक्रमण से पहले रूस को यदि पराजित कर दिया जाए तो उसके मार्ग से एक बड़ा शत्रु समाप्त हो जाएगा। इस असफलता के कारण धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध एक नई मित्र शक्ति के रूप में रूस, ब्रिटेन व अमेरिका के मध्य समझौता हो गया।

जुलाई 1941 ई. के मध्य युद्ध की स्थिति अत्यंत गंभीर हो गई थी, क्योंकि एक

ओर जर्मनी रूस से उलझ रहा था तथा दूसरी ओर जापान चीन से उलझ रहा था। अब जापान के समक्ष केवल दो ही विकल्प थे—एक, चीन की आपूर्ति-व्यवस्था को भंग कर दें अथवा युद्ध विराम की घोषणा कर दे। इसका प्रमुख कारण यह था कि चीन को अमेरिकी सैनिक व आर्थिक सहायता मिल रही थी। 21 जुलाई, 1941 को जापान ने चीन की आपूर्ति-व्यवस्था को भंग कर दिया तथा हिंद चीन पर अपना अधिकार कर लिया। इस विजय के साथ ही जापान ने मलाया व सिंगापुर से ब्रिटिश जलयानों को खदेड़ दिया तथा फारमोसा व हायनान पर अपना अधिकार कर लिया, जिससे अमेरिका के फिलीपाइंस अड्डे को भी खतरा हो गया। अतः ब्रिटेन, अमेरिका तथा नीदरलैंड ने जापान की आर्थिक नाकेबंदी कर दी। 1 दिसंबर, 1941 को टोकियो में एक शाही सम्मेलन में स्थलसेना तथा नौसेना के कमांडरों ने अमेरिका के विरुद्ध विधिवत् युद्ध की घोषणा करने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी।

अपनी पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार जापान को फिलीपाइंस, गुआम, वेक, मिडवे, गिल्वर्ट तथा सिंगापुर आदि स्थानों पर आक्रमण करने के पश्चात् पर्ल हार्बर पर वायुसेना एवं नौसेना द्वारा कार्यवाही करनी थी। 7 दिसंबर, 1941 ई. को प्रातः लगभग 7.50 बजे जापान ने 2,650 वायुयानों द्वारा विभिन्न मोरचों पर हमले किए तथा पर्ल हार्बर पर जापान के 360 विमानों द्वारा तीन हवाई आक्रमण किए गए। इस क्षेत्र में अमेरिका के केवल 1,290 विमान थे; परंतु जापानी सेना के तड़ित, द्रुतगामी एवं आकस्मिक आक्रमण ने अमेरिका के 8 युद्धपोतों को डुबो दिया और 3 को बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया था। इस आक्रमण से अमेरिका के सम्मान को भारी ठेस पहुँची। अब अमेरिका के विरुद्ध जर्मनी एवं इटली ने भी विधिवत् युद्ध की घोषणा कर दी थी।

द्वितीय महायुद्ध के संघर्ष में उस समय एक अनोखा मोड़ आया जब जर्मन सेनाएँ स्टालिनग्राद में अपना अभियान आरंभ कर रही थीं। इस युद्ध में जर्मन सेना को सैन्य साधनों के अभाव तथा मौसम की प्रतिकूलता के कारण अप्रत्याशित आक्रमण का सामना करना पड़ा। जर्मनी की इस कार्यवाही को सैन्य-इतिहास में बारबरोसा कार्यवाही (ऑपरेशन) से जाना जाता है। इसमें हिटलर की यह योजना थी कि 'जर्मन सेनाओं को इस प्रकार तैयार होना चाहिए कि एक तीव्र मुहिम में रूस को नष्ट किया जा सके। यहाँ तक कि ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध समाप्त होने के पूर्व ही सोवियत रूस को नष्ट कर दिया जाए। पूरी सेना को इस तरह वितरित किया जाए की जीती हुई चौकियों पर आक्रमण करके दुश्मन आश्चर्यचकित न कर पाए। 15 मई, 1941 ई. तक समस्त तैयारी पूर्ण हो जानी चाहिए। इस अभियान का उद्देश्य एशियाटिक रूस के विरुद्ध एक सीमा सुरक्षा स्थापित करना था, जो अनुमानतः बोल्गा नदी से आर्चेनल तक लंबी होगी।' इस कार्यवाही के लिए सेनाओं का विशेष छिपाव प्रबंध किया गया था।

हिटलर की इस योजना का प्रमुख उद्देश्य यह था कि ब्रिटेन अकेला सफल नहीं हो सकता, अतः उसकी सहायता के लिए रूस तथा अमेरिका आगे आएँगे। और यदि

रूस को पहले ही पराजित कर दिया जाए तो मार्ग से एक बड़ी बाधा हट जाएगी। इस अभियान में रूस एवं जर्मन सेनाएँ इस प्रकार थीं—

जर्मनी—145 डिवीजन तथा 20 (कवचित) डिवीजन,

रूस—158 डिवीजन तथा 55 (कवचित) डिवीजन।

स्टालिनग्राद के अभियान में जर्मनी की सेना को भारी आघात पहुँचा; क्योंकि सही अनुमान के अभाव, सर्दी के कपड़ों के अभाव तथा मौसमानुकूल शस्त्रास्त्रों के अभाव के कारण सोवियत सेना एवं नागरिकों ने एक साथ जर्मन सेना पर प्रहार करके उसे पराजित किया और जहाँ लाखों की संख्या में सैनिकों से हाथ धोना पड़ा, वहाँ अपमानित करके जर्मनी की सीमा तक खदेड़ दिया गया।

मेजर जनरल डी.क़े. पालित ने इस संदर्भ में लिखा है, "वास्तव में यह कहना उपयुक्त होगा कि यदि हिटलर ने ब्रिटेन की निहित शक्ति के संदर्भ में गलत अनुमान न लगाया होता तथा पूर्व में रूस की ओर मुड़ने से पहले ब्रिटिश द्वीप-समूहों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त करने का आदेश न दिया होता तो एक सैन्य विशेषज्ञ के रूप में उसकी कमियाँ पता नहीं की जा सकती थीं। युद्धनीति की गणना और बाद में ब्रिटेन की रॉयल वायुसेना के द्वारा जर्मनी की वायुसेना की पराजय युद्ध की स्थिति उलटने की निशानी थी।"

स्टालिनग्राद में जर्मनी की पराजय का प्रमुख कारण उसके सेनापतियों का गलत निर्देशन था, जिन्होंने स्थिति का सही अनुमापन नहीं किया था। इसी दौरान उत्तरी अफ्रीका तथा बर्मा अभियान भी शुरू हो गया था।

मई 1942 में इस महायुद्ध ने एक नया मोड़ लिया; क्योंकि ब्रिटिश शासन द्वारा पनडुब्बी तलाशनेवाले विमानों ने एक नए माइक्रोवेव राडार का आविष्कार कर लिया, जिससे जर्मन पनडुब्बी का पता लगा लिया जाता। इसी के परिणामस्वरूप जर्मनी की 41 पनडुब्बियों को नष्ट कर दिया गया, जो उसकी पनडुब्बियों का एक तिहाई हिस्सा था। इस स्थिति से घबराकर जर्मन पनडुब्बी बेड़े के कमांडर डायनिज ने उत्तरी अटलांटिक से पनडुब्बियों को हटाकर बंदरगाहों में वापस बुला लिया। कुछ समय पश्चात् अपनी पनडुब्बियों को पुनः उत्तरी अटलांटिक में आगे बढ़ाना चाहा; परंतु इसमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकी, क्योंकि अब तक मित्र राष्ट्रों का पूरी तरह से उत्तरी अटलांटिक में प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। इस वर्ष के अंत तक मित्र राष्ट्रों का व्यापारिक जहाजी बेड़ा काफी प्रगति कर चुका था। इस प्रकार जर्मनी की सेनाएँ सामुद्रिक युद्ध-व्यवस्था में भी असफल होने लगीं।

1942 के अंत के साथ ही द्वितीय महायुद्ध के अभियान ने एक नया मोड़ ले लिया और मित्र राष्ट्र अब अपनी सफलता की ओर बढ़ने लगे। धुरी राष्ट्रों को अनेक मोरचों में निराश ही नहीं होना पड़ा; बल्कि मजबूर होकर पीछे हटना पड़ा। मई 1943 में जनरल मांटगोमरी ने मिस्र से तथा आइजनहावर ने अल्जीरिया से बढ़कर अफ्रीका में
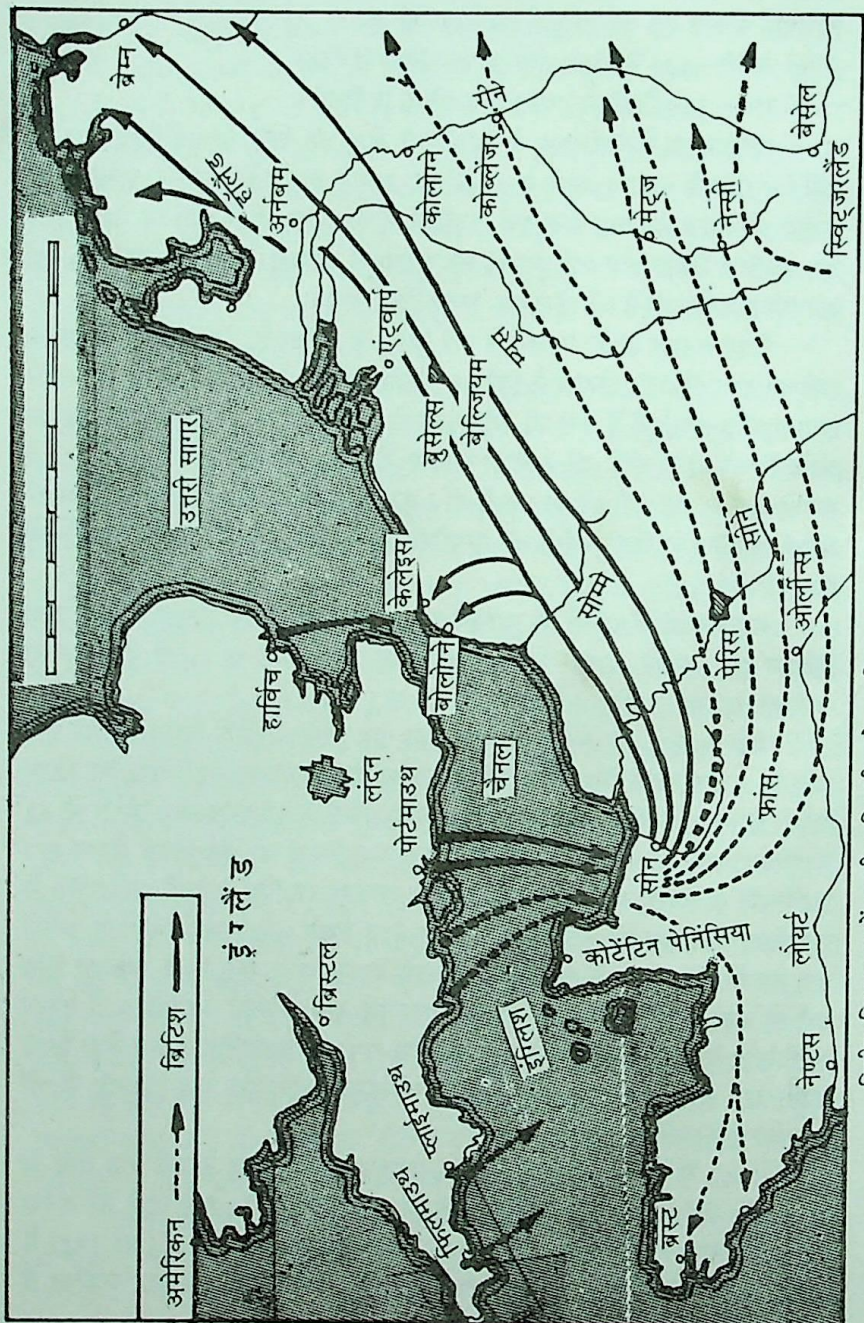
द्वितीय विश्वयुद्ध में उत्तरी-पश्चिमी यूरोप अभियान, जून 1944 से मार्च 1945 तक

जर्मन सेना को पराजित किया। जुलाई 1943 में मित्र राष्ट्रों ने भूमध्यसागर से सिसली तथा अगस्त में मुख्यभूमि (मेनलैंड) को पार कर लिया था। इटली में ही मुसोलिनी के विरोधी दल ने मित्र राष्ट्रों का साथ देने का निश्चय किया, जिससे मुसोलिनी का पतन हो गया तथा नई सरकार ने मित्र राष्ट्रों के साथ समझौता कर लिया और उन्हें बिना शर्त समर्थन भी दिया।

6 जून, 1944 को जनरल आइजनहावर के नेतृत्व में एक लाख से अधिक अमेरिकी व ब्रिटिश सैनिक नार्मंडी-तट के किनारे अनेक स्थानों पर उतरे। वास्तविक संघर्ष शुरू होने से पूर्व ही उत्तरी फ्रांस के क्षेत्र में भारी बमबारी करके आवागमन रोकने के लिए पुलों, मार्गों तथा रेलवे लाइन को उड़ा दिया था, ताकि जर्मन सेनाएँ सीधी तथा सरलता से आगे की ओर न बढ़ सकें। जिस समय यह अभियान शुरू हुआ, मित्र राष्ट्रों की युद्ध-योजना के कारण जर्मन सेना आगे नहीं बढ़ सकी और इस मोरचे में जर्मन सेना को भारी हानि भी उठानी पड़ी। जर्मन सेना की पराजय का एक महत्त्वपूर्ण कारण द्वितीय अभियान था, जिसे 'बैटिल ऑफ द बल्ज' (दिसंबर 1944) के नाम से भी जाना जाता है। मार्च 1945 तक मित्र राष्ट्रों की सेना ने राइन नदी को पार कर लिया था। 3 सितंबर तक मित्र राष्ट्रों की सेना ने बेल्जियम तथा हॉलैंड में प्रवेश कर लिया था। वर्ष 1944 के अंत तक अमेरिका ने फिलीपाइंस तथा ब्रिटेन ने बर्मा पर पुनः अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

पूर्वी क्षेत्र में रूस द्वारा जर्मनी को पोलैंड से बाहर खदेड़ दिया गया तथा दक्षिण में मार्शल टीटो के नेतृत्व में यूगोस्लाविया ने जर्मनी को दबाना शुरू कर दिया था। फरवरी 1945 में मित्र राष्ट्रों की विजय सुनिश्चित हो गई थी, क्योंकि जर्मनी पर सभी ओर से निरंतर दबाव बढ़ता जा रहा था। याल्टा शांति सम्मेलन क्रीमिया में संपन्न हुआ, जिसमें रूजवेल्ट, चर्चिल तथा स्टालिन ने प्रमुख रूप से भाग लिया। इस सम्मेलन में अनेक प्रश्न उठाए गए, जिसमें कुछ प्रश्न अनुत्तरित ही रह गए थे। कुछ कारणों से मित्र राष्ट्रों ने रूस को जर्मनी के पूर्वी हिस्से पर अधिकार करने का अवसर दिया, जिससे रूसी सेनाओं ने 24 अप्रैल, 1945 को बर्लिन पर अपना अधिकार कर लिया था। इस कार्यवाही को सफल बनाने में अमेरिकन तथा ब्रिटिश सेना की बमबारी ने सक्रिय भूमिका अदा की थी। अंतिम विजय प्राप्त होने के दो माह पूर्व ही तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट का निधन हो गया और उनके स्थान पर हैरी एस. ट्रुमैन को राष्ट्रपति नियुक्त किया गया। जर्मन तानाशाह एडाल्फ हिटलर ने मित्र राष्ट्रों की विजय को सुनिश्चित मानकर तथा अपने को घिरा जानकर अपने गुप्त स्थान में ही आत्महत्या कर ली तथा उसके अनुरोध पर उसके साथियों ने उसे वहीं जला भी दिया। 8 मई, 1945 को जर्मनी के आत्मसमर्पण के साथ ही यूरोप में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति हो गई।

एशिया महाद्वीप में द्वितीय महायुद्ध का अभियान जापान के द्वारा जारी था। बर्मा में जापान एवं मित्र राष्ट्रों के मध्य युद्ध अपनी चरम सीमा पर था। दक्षिण-पूर्वी एशिया

कमांड का पुनर्गठन करने के पश्चात् एडमिरल माउंटबेटन ने शत्रु का सफाया करने की संक्रिया शुरू कर दी थी। 2 जुलाई से 4 अगस्त, 1945 के मध्य सितांग नदी को पार कर भागते हुए लगभग 6,270 जापानी सैनिक मौत के घाट उतार दिए गए थे; जबकि इसकी तुलना में मित्र राष्ट्रों के केवल 95 सैनिक ही मारे गए। मित्र राष्ट्रों के विमानों से हुई भारी बमबारी में लगभग 3,000 शत्रु सैनिक मारे गए तथा अंतिम संघर्ष के समय केवल 740 जापानी सैनिकों ने ही आत्मसमर्पण किया था। इसी दौरान जुलाई 1945 में अमेरिका ने न्यू मैक्सिको में अपना प्रथम सफल आणविक बम विस्फोट करके देख लिया था। अतः राष्ट्रपति ट्रुमैन ने अपने सैनिक सलाहकारों सहित यह निर्णय लिया कि जापान पर सफलता पाने के लिए लाखों लोगों की मौत के बजाय क्यों न परमाणु बम का प्रयोग करके युद्ध को यथाशीघ्र रोक दिया जाए। 6 अगस्त, 1945 को अमेरिका के बमवर्षक वायुयान ने जापान के हिरोशिमा शहर में तथा 9 अगस्त, 1945 को जापान के दूसरे शहर नागासाकी शहर पर बम गिराए। इस भीषण विनाश से जापान ही नहीं, बल्कि विश्व की मानवता चीख पड़ी थी। 14 अगस्त, 1945 को जापान ने विधिवत् आत्मसमर्पण की घोषणा कर दी और इसी के साथ द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति हो गई।

अध्ययन की सुविधा के लिए द्वितीय महायुद्ध के समस्त अभियानों को निम्नलिखित चरणों में विभक्त कर सकते हैं—

प्रथम चरण : इसका कार्यकाल युद्ध के आरंभ से यानी 1 सितंबर, 1939 से 21 जून, 1941 तक कह सकते हैं, जिसमें जर्मनी ने पोलैंड, डेनमार्क, नार्वे, बेल्जियम, नीदरलैंड, लक्जमबर्ग, फ्रांस तथा ब्रिटेन पर अपना आक्रमण अभियान शुरू किया।

द्वितीय चरण : इसका कार्यकाल हम 22 जून, 1941 से रूस के आक्रमण के साथ 6 दिसंबर, 1941 तक कह सकते हैं। इसी दौरान धुरी राष्ट्रों ने उत्तरी अफ्रीका पर भी अपना अभियान शुरू कर दिया था।

तृतीय चरण : इसे हम जापानियों के पर्ल हार्बर पर आक्रमण के साथ 7 दिसंबर, 1941 से 7 नवंबर, 1942 तक मान सकते हैं। जापान ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के अनेक क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया था।

चतुर्थ चरण : इसका कार्यकाल हम 8 नवंबर, 1942 से 8 मई, 1945 तक निर्धारित कर सकते हैं। मित्र राष्ट्रों का नार्मंडी की ओर बढ़ना, इटली का आत्मसमर्पण, सोवियत सेना द्वारा जर्मन सेना को पीछे धकेलना तथा 8 मई, 1945 को जर्मनी द्वारा पूर्ण आत्मसमर्पण आदि प्रमुख घटनाएँ घटित हुईं।

पंचम चरण : 9 मई, 1945 से 14 अगस्त, 1945 तक का समय पंचम चरण में आता है—एशिया में जोरदार संघर्ष के साथ ही 6 अगस्त तथा 9 अगस्त, 1945 को परमाणु बम का प्रयोग तथा 14 अगस्त को जापान द्वारा विधिवत् आत्मसमर्पण की घोषणा तक।

परिणाम

द्वितीय महायुद्ध ने विश्व-व्यवस्था में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। इस युद्ध ने समस्त संसार को दो ध्रुवों में विभक्त कर दिया; जिसमें एक का नेतृत्व अमेरिका ने किया तथा दूसरे का नेतृत्व सोवियत संघ द्वारा किया गया। अतः साम्यवाद एवं पूँजीवाद ने विश्व के राष्ट्रों को अपने घेरे में घेरने की होड़ शुरू कर दी, जिससे शीतयुद्ध की शुरुआत हो गई। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा एवं अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हथियारों की होड़ तथा गुटबंदी की दौड़ में लग गया। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का प्रयोग प्रमुख रूप से सैन्य-साधनों के विकास एवं विस्तार में किया जाने लगा। विजयी राष्ट्रों ने जर्मनी को विभक्त कर दिया था तथा अन्य पराजित राष्ट्रों पर भारी अंकुश लगा दिए गए थे।

इस युद्ध ने मानवता के विनाश का सबसे अधिक आँकड़ा तैयार कर दिया था, जिसमें लगभग 5,00,00,000 लोग काल के गाल में समा गए थे। इस युद्ध में सैनिक एवं नागरिक ही मौत के शिकार नहीं हुए; बल्कि रेडियोधर्मी विकिरणों ने समस्त संबंधित क्षेत्र को दूषित करके रख दिया। यही कारण है कि तृतीय महायुद्ध को अभी तक टाले जाने में हम सभी सफल हो सके हैं।

सैन्य शिक्षाएँ

द्वितीय महायुद्ध ने यह संकेत दे दिया कि हथियारों की होड़ के लिए जो दौड़ चल रही है उस पर यदि अंकुश न लगाया गया तो मानवता के भविष्य के लिए एक गंभीर संकट सदैव के लिए उत्पन्न हो जाएगा। अतः सैनिक शक्ति के आधार पर ही समस्या का हल संभव नहीं होगा; बल्कि अब कूटनीतिक चालों का सहारा लेना ही श्रेयस्कर सिद्ध होगा। यही कारण था कि द्वितीय महायुद्ध के दौरान ही अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किए गए। अब हम इससे प्राप्त सैन्य शिक्षाओं का संक्षेप में उल्लेख करते हैं—

1. किसी भी अभियान में सफलता के लिए आवश्यक है कि एक बार में एक ही मोरचा खोलकर, पूरी तरह से प्रयत्नरत होकर शत्रु के विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए, ताकि अपनी शक्ति को केंद्रित करके शत्रु के विरुद्ध लगाया जा सके।
2. इस महायुद्ध ने परमाणु शक्ति जुटाने के लिए प्रत्येक राष्ट्र को लालायित कर दिया, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र अपनी सुरक्षा परमाणु शक्ति संपन्नता के साथ जोड़ने लगा था। जिसका प्रभाव अब तक बना हुआ है।
3. इस महायुद्ध में जर्मन की वायुसेना ने जब ब्रिटिश सेना एवं नागरिकों पर हमला किया तो इस अभियान ने यह सिद्ध कर दिया कि किसी भी हमले में वहाँ के नागरिकों का धैर्य एवं सेना का साहस महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. युद्धों में तकनीकी एवं यांत्रिक प्रगति का सफलता दिलाने में सक्रिय सहयोग रहेगा और जो राष्ट्र यौद्धिक तकनीकी में जितना अधिक विकसित होगा, वह राष्ट्र उतना ही शक्तिशाली प्रमाणित होगा।
5. युद्धों में कूटनीतिक चालों एवं मनोवैज्ञानिक चालों का सक्रिय सहयोग रहेगा। यही कारण था कि हिटलर कहता था कि—'मेरा वास्तविक युद्ध आरंभ होने के पूर्व ही युद्ध लड़ लिया जाता था।'
6. इस महायुद्ध ने सिद्ध कर दिया कि किसी भी बड़े अभियान को आरंभ करने के पूर्व सभी परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाना आवश्यक होता है; क्योंकि जरा-सी भूल से पराजय के अवसर भी अधिक हो जाते हैं; जैसाकि जर्मनी के साथ घटित हुआ।
7. द्वितीय महायुद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि युद्धों में सफलता प्राप्त करने के लिए राष्ट्र को स्वयं की शक्ति के साथ-साथ अन्य राष्ट्रों के साथ भी संबंध रखने होंगे, ताकि कोई अन्य गुट या वर्ग हावी न हो सके।

कश्मीर का संग्राम

(1947-48 ई.)

जिस समय स्वतंत्र भारत मात्र डेढ़ माह का था, पाकिस्तान ने भारत में जम्मू एवं कश्मीर राज्य के विलय को लेकर न केवल विरोध किया; बल्कि कश्मीर पर सशस्त्र कार्यवाही करके भीषण आघात पहुँचाया। इस प्रसिद्ध संग्राम के अध्ययन के पूर्व इसके सामरिक एवं ऐतिहासिक घटनाक्रम का उल्लेख आवश्यक है कि आखिर किन प्रमुख मुद्दों के कारण विभाजन के साथ ही युद्ध की नौबत आ गई। भारत में 565 रियासतें थीं, जिनकी बड़ी समस्या थी; परंतु अपनी कुशल नेतृत्व प्रतिभा के कारण इसका भी हल निकाल लिया गया। परंतु अभी भी तीन रियासतों की समस्या अधर में अटकी थी; जिनमें जम्मू व कश्मीर, जूनागढ़ तथा हैदराबाद की रियासतें थीं। इन तीन समस्याओं में से जम्मू-कश्मीर की समस्या सबसे जटिल थी; क्योंकि यह भारत एवं पाक दोनों के लिए ही सामरिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था तथा सीमा के अंतर्गत भी आता था। इसकी सीमाएँ पूर्व में तिब्बत, उत्तर-पूर्व में सोवियत रूस तथा चीन, उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान, पश्चिम में पाकिस्तान, दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम में भारत से लगी हुई हैं। अंतरराष्ट्रीय भू-राजनीति की दृष्टि से इस क्षेत्र को विशेष महत्त्व दिया जाता है। भारतीय उपमहाद्वीप का यह एक शिखर बिंदु है, जिसे पाकिस्तान ने अपने अधीन करने के लिए हरकतें शुरू कर दी थीं।

यह सर्वविदित तथ्य है कि कश्मीर में मुसलिम वर्ग का बाहुल्य है और उस समय भी था, परंतु उस राज्य के शासक डोगरा महाराजा सर हरीसिंह हिंदू थे। उनका इरादा था कि सिक्किम एवं भूटान की भाँति भारत के संरक्षित एवं स्वतंत्र राज्य के रूप में कश्मीर भी बना रहेगा। यही विचार कश्मीर के मुसलिम वर्ग का भी था; परंतु पाकिस्तान ने पहले तो धर्म (जेहाद) एवं जाति की दुहाई देकर, वहाँ की जनता को बरगलाकर मिलाने का प्रयास किया, जब इसमें उसे सफलता नहीं मिली तो उसने कश्मीर पर आर्थिक प्रतिबंध लगाकर एक समस्या खड़ी कर दी। इस आर्थिक नाकेबंदी के कारण वहाँ की जनता में असंतोष फैल गया। साथ ही गिलगित तथा पुंछ क्षेत्रों में महाराजा के विरुद्ध विद्रोह शुरू हो गया और तोड़-फोड़ भी होने लगी। पाक ने अपने नापाक इरादों का प्रदर्शन लगभग 5,000 अत्यंत प्रशिक्षित कबाइली अनियमित सैनिकों को भेजकर किया। 3 सितंबर, 1947 से ही इस संघर्ष की सैनिक शुरुआत हो गई।

जिस समय कश्मीर अपनी आर्थिक नाकेबंदी से उलझ रहा था उसी समय

गिलगित के क्षेत्र में उनके स्काउट, छठी जम्मू व कश्मीर राइफल्स के सैनिक पुलिस कर्तव्यों की भूमिका निभा रहे थे। पुंछ क्षेत्र के लोगों ने भी 'जेहाद' के नाम पर तथाकथित कार्यवाही शुरू कर दी। इस प्रकार स्काउट, राइफल्स तथा पुंछ क्षेत्र के पूर्व सैनिक धार्मिक युद्ध के नाम पर एकजुट होकर महाराजा के विरुद्ध विद्रोह करने लगे। कश्मीर की हालत अत्यंत नाजुक हो गई। उसी समय पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षित एवं शस्त्र-सज्जित कबाइलियों ने अवसर का लाभ उठाते हुए जोरदार आक्रमण कर दिया। महाराजा की सेना इन सैनिकों एवं विद्रोही सेनाओं के समक्ष टिकने में समर्थ न थी, क्योंकि उनके पास मात्र 7 बटालियनें थीं, जिन्हें लगभग 250 मील लंबी सीमा रेखा की रखवाली करने के लिए रखा गया था।

पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर की स्वतंत्र राष्ट्र की माँग को क्षण-भर में कुचलने का प्रयास जाति एवं धर्म के नाम पर किया। साथ ही हिंदू जाति के शासक महाराजा सर हरीसिंह भी अपना अलग अस्तित्व रखने के लिए दृढ़संकल्प थे; परंतु पाकिस्तान की कूटयोजनात्मक सैनिक संक्रिया के आगे मजबूर हो गए। 21 अक्टूबर, 1947 को कबाइली सेना ने विद्रोही सेनाओं के साथ मिलकर मुजफ्फराबाद से अपना अभियान आरंभ किया और आगे बढ़ते हुए बारामूला की ओर से श्रीनगर में प्रवेश करने के उद्देश्य से कार्यवाही आरंभ रखी; परंतु इसके विरोध में कश्मीर के लगभग 250 सैनिकों ने ब्रिगेडियर राजेंद्र सिंह के नेतृत्व में उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया; लेकिन नेतृत्व के अभाव में बारामूला पर कबाइलियों का अधिकार हो गया। इसी समय 24 अक्टूबर को पाकिस्तान ने मुजफ्फराबाद रेडियो से 'स्वतंत्र कश्मीर' की घोषणा कर दी।

भारत सरकार ने स्वतंत्र कश्मीर पर होते दमन को बड़ी गंभीरता से लिया तथा तत्कालीन भारतीय गवर्नर जनरल लार्ड माउंटबेटन ने गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल को लिखा कि कबाइली उरी की ओर बढ़ रहे हैं। कश्मीर के राजा सर हरीसिंह ने भी सरदार पटेल को लिखा—"The help that you kindly promised has not arrived and we are surrounded on all sides. You will agree with me it is hardly time to think of any constitutional issues."

(आप द्वारा प्रस्तावित सहायता अभी प्राप्त नहीं हुई है और हम सभी ओर से घिरते जा रहे हैं। आप मेरी इस बात से सहमत होंगे कि ऐसी स्थिति में किसी संवैधानिक विषय में सोच पाना अत्यंत कठिन है।)

महाराजा के इस अनुरोध के बावजूद वित्तमंत्री सहायता के लिए सेना भेजने के लिए तैयार नहीं थे, क्योंकि भारत की आर्थिक स्थिति अत्यंत नाजुक थी। आखिर भारत के प्रधानमंत्री के आदेश पर भारतीय सेना को तैनात रहने की चेतावनी दे दी गई और स्थिति का जायजा लेने के लिए मुख्य सैन्य अधिकारियों को भेजा गया।

26 अक्टूबर, 1947 को महाराजा सर हरीसिंह ने कश्मीर के विधिवत् भारत में विलय करने की घोषणा कर दी, जिससे भारत का नैतिक उत्तरदायित्व बढ़ गया। विलय

के साथ ही भारतीय सेना की एक सिक्ख रेजीमेंट की पहली बटालियन ने अपनी गौरवमयी परंपरा को बनाए रखते हुए कश्मीर में प्रवेश करके कबाइली सेना को चौकन्ना कर दिया। भारतीय सिक्ख सैन्य टुकड़ी की तुलना में कबाइली सेना कहीं अधिक थी, अतः श्रीनगर की ओर पीछे हटना पड़ा। इस दौरान सिक्ख रेजीमेंट की पहली बटालियन के लेफ्टीनेंट कर्नल रंजीतराय वीरगति को प्राप्त हुए। अब इस अभियान की बागडोर ब्रिगेडियर एल.पी. सेन के हाथों में दी गई। स्थलसेना को सहयोग प्रदान करने के लिए वायुसेना के तत्कालीन 'हारवर्ड' तथा 'स्पिट फायर' वायुयानों को भी लगाया गया। दोनों ओर से घमासान लड़ाई चल रही थी। 3 नवंबर को 4 कुमाऊँ के कमांडर मेजर सोमनाथ शर्मा ने हवाई अड्डे की रक्षा हेतु बड़गाम की पहाड़ियों के पास ही अपना मोरचा सँभाला। इसी दिन 2.35 बजे शत्रु ने मॉर्टार बमों व छोटे हथियारों से आक्रमण कर दिया। इस मुठभेड़ में मेजर शर्मा व उनकी टुकड़ी ने अपने से कई गुना हमलावरों का मुकाबला बड़ी वीरता से किया। मेजर शर्मा के अदम्य साहस व कर्तव्यनिष्ठा की जितनी प्रशंसा की जाए कम होगी। वे मॉर्टार बम के विस्फोट से वीरगति को प्राप्त हुए। मरणोपरांत उन्हें शौर्य के लिए देश का सर्वोच्च सम्मान 'परमवीर चक्र' प्रदान किया गया। शलातंग के पास भीषण संघर्ष में कबाइली सैनिक टिक नहीं सके। अतः उन्हें 8 नवंबर, 1947 को बारामूला का क्षेत्र खाली करना पड़ा।

लगातार संघर्ष के कारण भारतीय सैन्य टुकड़ियों में वृद्धि होती गई और इस अभियान को सही ढंग से संचालित करने के लिए मेजर जनरल कुलवंत सिंह को कश्मीर कार्यवाही हेतु जनरल ऑफीसर कमांडिंग नियुक्त किया गया। भारतीय सेना दुर्गम क्षेत्रों एवं भीषण शीत लहर के कारण उतने अधिक कारगर ढंग से कार्य नहीं कर सकी थी, क्योंकि आवश्यक वस्तुओं का भी अभाव था। इस सबके बावजूद 13 नवंबर, 1947 तक उरी के क्षेत्र से भी शत्रु को खदेड़ देने में कामयाबी हासिल कर ली। पाकिस्तान की सेना द्वारा संचालित कबाइली सेनाओं का पतन देखकर पाकिस्तान को अपनी कूटयोजना विफल होती दिखाई देने लगी तो उसने खुलकर अपनी नियमित सेना को भारतीय सेना के समक्ष लगाने का इरादा बना लिया। दिसंबर 1947 में पाकिस्तान की पूर्व तैनात सेना ने सर्दी का लाभ उठाते हुए कश्मीर के गिलगित, हुंजा तथा बागाह क्षेत्रों पर पुनः अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार कश्मीर युद्ध का प्रारूप खुलकर सामने आ गया।

कश्मीर संघर्ष एक ओर जोरों पर था तथा दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा समिति भी शांति के प्रयास में जुटी थी। 1 जनवरी, 1948 को भारत सरकार ने इस मामले को सुरक्षा परिषद् में रखा कि पाकिस्तान की सहायता से कबाइलियों ने भारत की पवित्र भूमि पर आक्रमण किया है, अतः इस पर तुरंत ही रोक लगाई जानी चाहिए। पाकिस्तान ने इस आरोप को गलत बताया तथा कहा कि इस हमले से पाकिस्तान का कोई संबंध नहीं है। अतः सुरक्षा परिषद् ने एक आयोग गठित किया। जब आयोग

कराची बंदरगाह पर पहुँचा तब पाकिस्तान ने स्वीकार कर लिया कि कम-से-कम तीन ब्रिगेड हमारी नियमित पाक सेना कश्मीर में युद्धरत है। आयोग को इस घटना से विस्मय हुआ। दोनों पक्षों ने अपने तर्क इस प्रकार प्रस्तुत किए—

भारतीय तर्क

कश्मीर विवाद के संदर्भ में भारत सरकार ने अपना पक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया—

1. हमारे स्वतंत्र अधिनियम में यह व्यवस्था है कि देशी रियासतों के शासक अपने देश का निर्णय स्वतंत्र रूप से कर सकते हैं।
2. कश्मीर की जनता द्वारा ही अपनी स्वतंत्र रूप से चयनित संविधान सभा के माध्यम से कश्मीर को भारतीय संघ का अभिन्न अंग घोषित किया गया है। अतः जनमत-संग्रह का प्रश्न आधारहीन है।
3. लोकतंत्र की दुहाई देनेवाला पाकिस्तान स्वयं तो लोकतांत्रिक परंपराओं का पालन नहीं करता, फिर इस संदर्भ में कश्मीर का प्रश्न उठाना कहाँ तक उचित है?
4. पहले पाक अपनी सेनाओं को कश्मीर से हटाए, फिर जनमत-संग्रह की बात करे तो शायद उचित होगा।
5. पाक के इरादे सदैव नापाक रहे हैं, उसकी कथनी एवं करनी में बहुत अंतर है।
6. धर्म की दुहाई देकर किसी भी राष्ट्र को खंडित करना अंतरराष्ट्रीय नियमों का खुला उल्लंघन है।
7. कश्मीर के भारत में संवैधानिक विलय हो जाने पर उसकी सैनिक कार्यवाही कहाँ तक उचित है?

पाकिस्तानी तर्क

पाकिस्तान ने इस मामले को लेकर इस प्रकार से अपने तर्क प्रस्तुत किए—

1. कश्मीर का भारत में विलय भारतीय शक्ति एवं भय का ही एक परिणाम है।
2. कश्मीर का विलय जनमत-संग्रह के आधार पर किया जाना चाहिए, इसकी अवहेलना करना कहाँ तक उचित है?
3. कश्मीर एक मुसलिम-बहुल प्रदेश है।
4. कश्मीर में जनमत-संग्रह करवाने में पाकिस्तान को समानता का अधिकार प्राप्त है; क्योंकि इसके सभी निर्णय कांग्रेस तथा मुसलिम लीग पार्टी की सहमति से हुए हैं।

5. कश्मीर के राजा हरीसिंह ने जनता की इच्छा के विरुद्ध भारत में सम्मिलित होना स्वीकार किया है, जो पूर्णरूप से संविधान के विरुद्ध है।

घटनाक्रम

जनवरी 1948 के समय कश्मीर का संग्राम एक गंभीर स्थिति से गुजर रहा था। अतः भारतीय सेना ने अपने 2 डिवीजन भेजकर पश्चिम कमांड को पुनर्गठित किया। इस कमांड की बागडोर लेफ्टीनेंट जनरल के.एम. करिप्पा को 26 जनवरी, 1948 को सौंपी गई। उन्होंने इस अभियान के कुशल संचालन हेतु जम्मू तथा कश्मीर में अलग-अलग डिवीजन संगठित किए। जम्मू डिवीजन का नेतृत्व मेजर जनरल आत्मासिंह तथा कश्मीर डिवीजन का नेतृत्व मेजर जनरल के.एम. थिम्मैया को सौंपा गया।

कश्मीर का यह संग्राम अनेक मोरचों पर लड़ा गया। लेह तथा लद्दाख के क्षेत्र में भारतीय थलसेना ने अपनी वायुसेना के सहयोग से महत्त्वपूर्ण सफलता अभियान आरंभ कर दिया। गिलगित, कारगिल तथा लेह जैसे सामरिक महत्त्व के ठिकानों में पाकिस्तानी सेना ने पहले ही अपनी पहल करनी शुरू कर दी थी। इस पहल से पाकिस्तान का 'जेहाद' का नारा विशेष रूप से कामयाब रहा था, क्योंकि इसी के बल पर वह कश्मीर के सैनिकों को महाराजा के विरुद्ध भड़काने में भी सफल हुआ था।

पाकिस्तानी सेना ने पुंछ क्षेत्र में तेजी के साथ बढ़ते हुए 6 फरवरी, 1948 को नौशेरा के किले पर आक्रमण कर दिया, जिससे आरंभ में पाकिस्तानी सेना को असंभावित सफलता प्राप्त हुई और पाकिस्तानी सैनिक भारतीय बंकरों में भी प्रवेश कर गए; परंतु भारतीय सैनिकों ने हौसले रखते हुए मुकाबला किया और भारतीय ब्रिगेडियर उस्मान के नेतृत्व में पाकिस्तानी सेना को टिकने नहीं दिया। फलतः पाकिस्तानी सेना राजौरी की ओर बढ़ने लगी और वहाँ उसने अपनी मजबूत स्थिति बना ली। भारतीय थलसेना को वायुयानों ने आपूर्ति-व्यवस्था पहुँचाकर पाकिस्तान के इरादों को नाकाम् कर दिया और 12 अप्रैल, 1948 को कश्मीर का हारा हुआ भाग शत्रु से मुक्त करा लिया। इस कार्यवाही के दौरान हमारे वीर सैनिकों ने जो अदम्य साहस दिखाया उसकी गाथा सैनिक वीरता के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। विशेष रूप से ब्रिगेडियर मोहम्मद उस्मान, लेफ्टीनेंट आर.आर. राने तथा नायक जदुनाथ सिंह का साहसिक एवं जोखिम-भरा योगदान एक उदाहरण बन गया। कोर ऑफ इंजीनियर के लेफ्टीनेंट आर.आर. राने को अदम्य साहस व शौर्य के लिए परमवीर चक्र प्रदान किया गया। 3 जुलाई को पाकिस्तानी सेना ने पुनः जोरदार आक्रमण कर दिया, जिसे हमारी सेना ने बखूबी कुचल दिया। अगस्त 1948 में हमारी सेना ने आगे बढ़ते हुए पुंछ क्षेत्र की किशन घाटी और मेढर पर अधिकार जमा लिया।

भारतीय सेना ने जब टिथवाल को शत्रु के अधिकार से मुक्त करवा दिया तथा वह किशन गंगा की ओर बढ़ रही थी तब पाकिस्तान की नवीन एवं प्रशिक्षित सेना ने जोरदार आक्रमण कर दिया और 13 अक्टूबर, 1948 को प्रथम सिक्ख बटालियन के एक सेक्शन की चौकी पर कब्जा करने का प्रयास किया, जिसमें नायक करमवीर सिंह
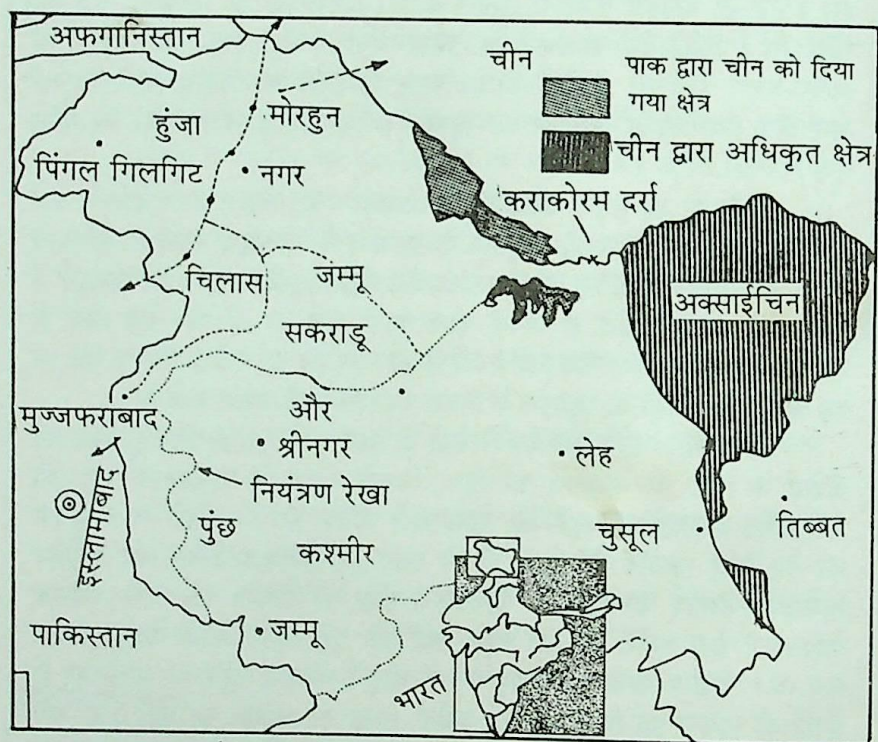
1948 का युद्ध व कश्मीर की वर्तमान स्थिति

शहीद हो गया। सितंबर 1948 में भारतीय सेना ने जोजीला दर्रे पर अधिकार करने का प्रयास किया, परंतु सफलता नहीं मिली। लगातार प्रयासों के बाद दिसंबर 1948 में 12,000 फीट ऊँचे इस दर्रे पर अपने टैंकों सहित चढ़कर भारतीय सेना ने अपनी शौर्य-गाथा का सही परिचय दिया और अपना अधिकार जमा लिया।

एक ओर जहाँ युद्ध का सिलसिला जारी था वहीं दूसरी ओर शांति प्रयास भी चल रहे थे। आखिर 1 जनवरी, 1949 को कश्मीर में युद्ध विराम समझौता संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयत्नों से लागू हो गया। इस युद्ध ने यह भी प्रमाणित कर दिया कि पाकिस्तान अपनी सफलता के लिए धर्म, जाति आदि की दुहाई देकर निम्न-से-निम्न

हरकत कर सकता है। अतः शक्ति के आधार पर ही इसका दमन संभव होगा। इस युद्ध ने भारतीय सेना की गौरवमयी गाथा को पूर्णरूप से सिद्ध कर दिया।

सैन्य शिक्षाएँ

कश्मीर के इस संग्राम से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. इस संग्राम ने सिद्ध कर दिया कि लक्ष्य का निर्धारण एवं उसी के अनुरूप कार्यवाही सदैव सफलता में सक्रिया भूमिका निभाती है; जैसे भारतीय सेनाओं ने अपने उद्देश्य के अनुसार कार्यवाही करके शत्रु को परास्त कर दिया।
2. युद्ध में गतिशीलता के सिद्धांत को अपनाकर जहाँ हम शत्रु को धोखे में डालने में सफल होते हैं, वहाँ समय की विशेष बचत होती है। युद्ध में एक-एक क्षण का विशेष महत्त्व होता है; जैसे इस युद्ध में भारतीय सेना का प्रथम दल श्रीनगर हवाई अड्डे पर शीघ्र न पहुँचा होता तो यह अड्डा पाकिस्तान के अधिकार में हो गया होता।
3. सेनाओं का आपसी सहयोग एवं तालमेल सफलता का एक प्रमुख आधार होता है; जैसे इस युद्ध में भारतीय सेनाओं की सफलता इसी पर निर्भर थी।
4. राष्ट्रीय भावना, दल भावना एवं मनोबल आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक तत्त्व होते हैं, जिनकी सफलता प्राप्त कराने में सदैव महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।
5. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि भारतीय सेना का प्रत्येक सैनिक अपनी गौरवशाली परंपरा बनाए रखने के लिए हर जोखिम उठा लेने की क्षमता रखता है। भारतीय सैनिकों ने ऊँचे क्षेत्र में टैंक को उतारकर विश्व के इतिहास में एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया।
6. इस युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया कि वर्तमान लड़ाइयों में हवाई शक्ति की विशेष भूमिका है और इसी शक्ति के सहयोग से हमारी थलसेना गतिशील होकर सफल कार्यवाही कर सकने में समर्थ हो सकी।
7. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि सफलता पाने के लिए आवश्यक है कि भौगोलिक स्थिति के अनुकूल सैनिकों के पास साज-सज्जा होनी चाहिए; जैसे भारत ने इसमें अपनी सेना के सुधार का अच्छा पाठ सीखा।
8. यदि भारत की सेना युद्ध विराम न करती तो संपूर्ण कश्मीर को पाकिस्तान के चंगुल से छुड़ा लेने में समर्थ थी, जिससे आज की समस्या का भी निदान हो गया होता।
9. इस संग्राम ने यह स्पष्ट कर दिया कि अपनी किसी समस्या का हल अंतरराष्ट्रीय संस्था पर नहीं छोड़ना चाहिए; बल्कि अपनी सैन्य-शक्ति के आधार पर ही उसका निर्णय किया जाना हितकारी रहेगा; जैसे कश्मीर

विवाद आज तक इसीलिए लटका हुआ है।

10. इस युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि दुर्गम-से-दुर्गम क्षेत्रों पर भी आपूर्ति-व्यवस्था को बनाए रखकर अपने लक्ष्य को सरलता एवं सफलता के साथ प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए नेपोलियन ने कहा है, "सेना पेट के बल चलती है।"

अरब-इजराइल संग्राम

(1948 से 1993 ई. तक)

14 मई, 1948 की मध्य रात्रि को ब्रिटिश आज्ञा-पत्र की अवधि समाप्त हुई और ब्रिटिश हाई कमिश्नर ने फैलेस्टाइन को छोड़ दिया। उसी दिन तेलअवीव (Tel Aviv) में सरकारी तौर पर इजराइल के राज्य की घोषणा की गई। 15 मई को संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी इजराइल को मान्यता प्रदान कर दी। 17 मई को सोवियत संघ ने भी नए यहूदी राज्य को मान्यता दे दी। अरब राज्यों ने इसका विरोध किया और इसके परिणाम-स्वरूप 15 मई को ही मिस्र, इराक, सीरिया तथा ट्रांसजोर्डन की सेनाएँ फैलेस्टाइन की ओर बढ़ीं और उन्होंने शीघ्र ही उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया, जो बँटवारे की योजना के अनुसार अरबों को दिया गया था। केवल येरूसलम शहर में अरब सेनाओं का विरोध जोरदारी से हुआ। इस युद्ध का प्रथम अभियान यहीं से आरंभ हुआ।

संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव के द्वारा जब इजराइल की स्थापना हुई तो अरब जगत् ने उसे स्वीकार नहीं किया था। इसी के परिणामस्वरूप चालीस वर्ष पूर्व जब जर्मनी में नाजियों द्वारा सताए गए यहूदियों के लिए एक पृथक् स्वतंत्र राष्ट्र इजराइल बनाया गया तब शायद यह विचार नहीं किया गया कि फिलिस्तीन के जिस प्रदेश में यहूदियों को बसाया जा रहा है वहाँ पहले से रह रहे अरब जाति के फिलिस्तीनियों का भविष्य क्या होगा ! बसाए गए इन यहूदियों ने फिलिस्तीनियों को उनके घरों से उजाड़ना आरंभ कर दिया और दोनों ओर से रक्तपात की लहर चलनी शुरू हो गई। इस संग्राम में सफलता निश्चित रूप से इजराइल को ही प्राप्त हुई और फिलिस्तीनियों को अपने घर से उजड़कर शरणार्थी बनकर भटकना पड़ा।

आज भी दोनों के मध्य इतने मतभेद हैं कि वे एक-दूसरे को शंका की दृष्टि से देखते हैं। यही कारण है कि इजराइल इन अरबों को न तो अपनी शासन-व्यवस्था में शामिल कर सकता है और न आसानी से छोड़ सकता है। गाजा पट्टी, पश्चिमी तट तथा गोलन पहाड़ियों में अरब जाति के लगभग 15,00,000 लोग रहते हैं। अगर इन सभी को इजराइल का नागरिक बना दिया जाए तो इजराइल में अरबों की संख्या 40% हो जाएगी। अरबों की संख्या यहूदियों की तुलना में कहीं अधिक तेजी से बढ़ रही है। इसके कारण इजराइली पूरी तरह से भयभीत हैं और वे जल्दी-से-जल्दी अरब अधिकृत क्षेत्रों को खाली करना चाहते हैं। अब इजराइली सेना फिलिस्तीनियों से लड़ते-लड़ते पूरी तरह से थक चुकी है।

अरब देशों तथा इजराइल का तुलनात्मक सैन्य विवरण

देश	जनसंख्या	सेना (नियमित)	सेना (सुरक्षित)	टैंक	युद्धवाहन	एयरक्राफ्ट	हेलीकॉप्टर	युद्धपोत
मिस्र	3,57,00,000	2,600,00	5,00,000	1,955	2,600	600	190	94
सीरिया	67,00,000	1,20,000	2,00,000	1,300	1,000	326	50	25
लेबनान	30,00,000	14,000	–	120	25	18	14	00
जोर्डन	25,00,000	68,000	20,000	420	400	52	9	00
इराक	1,01,00,000	90,000	2,50,000	1,065	1,300	224	69	30
संपूर्ण अरब	5,80,00,000	5,52,000	9,70,000	4,860	4,725	1,240	332	149
इजराइल	32,00,000	95,000	1,80,000	1,700	1,450	488	74	49

इजराइल वास्तव में चैलेस्टाइन का ही एक भाग है। इस स्वतंत्र राज्य की स्थापना 1948 में हुई। चैलेस्टाइन तीन बड़े धर्मों—इसलाम, यहूदी और ईसाई के अनुयायियों की भूमि है। 1897 में यहूदियों ने अपने लिए एक अलग निवास स्थान की माँग की, क्योंकि उनका अपना कोई राष्ट्र नहीं था। प्रथम महासंग्राम के समय 1917 में ब्रिटेन के विदेश सचिव बाल्फर ने घोषणा की थी कि युद्ध समाप्त होते ही यहूदियों को रहने के लिए एक अलग राष्ट्र दे दिया जाएगा। 14 मई, 1948 को पूर्व फिलिस्तीन क्षेत्र में इजराइल नामक एक स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना कर दी गई। इसके विरोधस्वरूप अरब के राष्ट्रों ने इजराइल पर आक्रमण कर दिया और असंख्य लोग मारे गए। इसी के साथ इजराइल में संसार के विभिन्न भागों से यहूदी आकर बसने लगे। अक्टूबर 1956 में मिस्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया तो इजराइल, फ्रांस और ब्रिटेन ने मिलकर उस पर आक्रमण कर दिया। रूस की धमकी से यह युद्ध बंद हो गया। 1967 ई. में
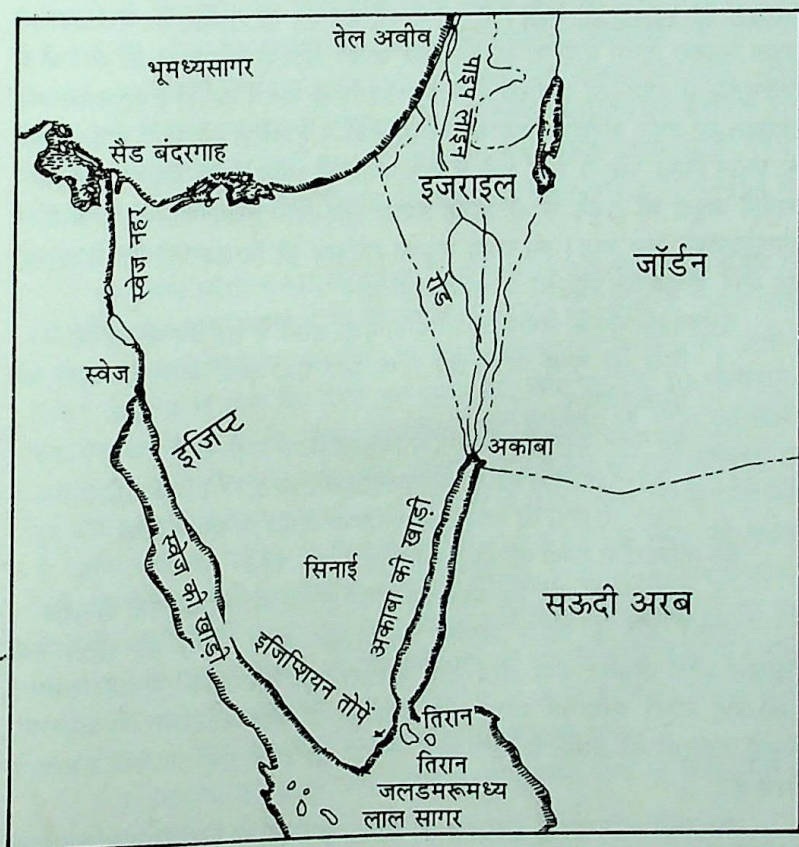
मिस्र ने अकाबा की खाड़ी को इजराइली जलयानों के लिए बंद कर दिया, जिससे इजराइल के विदेशी व्यापार को भारी धक्का लगा। इसके परिणामस्वरूप इजराइल ने सीरिया, मिस्र तथा जोर्डन पर आक्रमण करके अकाबा की खाड़ी, जोर्डन के निकट स्थित येरूसलम के भाग तथा सीरिया के कुछ क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया। विवादास्पद क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेना तैनात कर दी गई। 8 अगस्त, 1970 को जोर्डन, मिस्र तथा इजराइल के मध्य युद्ध-बंदी समझौता हुआ, जो तीन वर्ष बाद 6 अक्टूबर, 1973 में पुनः झड़क उठा। मई 1981 में लेबनान व इजराइल का संघर्ष शुरू हो गया।

पहला संघर्ष (1948-49)

जिस समय से इजराइल की स्थापना हुई, उसी समय से अब तक हर दशक में कम-से-कम एक युद्ध अवश्य होता रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि अरब राष्ट्र इजराइल की स्थापना को सहन नहीं कर पा रहे हैं। 15 मई, 1948 को जब इजराइल अपना स्थापना दिवस मना रहा था तब मिस्र, जोर्डन, सीरिया तथा इराक की सेनाओं ने फिलिस्तीन में प्रवेश कर इजराइल के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ कर दी। यह अरब तथा इजराइल का प्रथम जोरदार संग्राम था। अरब देशों ने इजराइल को चारों ओर से घेरने का प्रयास किया, परंतु वे सभी क्षेत्रों में नाकामयाब रहे। इस दौरान संयुक्त राष्ट्रसंघ ने आपसी शत्रुता को रोकने के भी अनेक प्रयास किए और 1949 में उसके प्रयासों के परिणामस्वरूप युद्ध थमा। इस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की विभाजन योजना से 2,000 वर्ग मील अधिक क्षेत्र इजराइल के अधिकार में था।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधीन जो समझौता हुआ, उसमें ये शर्तें तय की गई थीं—

1. मिस्र को गाजा पट्टी क्षेत्र दिया जाए तथा इसमें शरणार्थी अरबों को बसाया जाए।
2. येरूसलम शहर को दो भागों में विभक्त किया गया—
   (क) 1,00,000 की आबादीवाला हिस्सा इजराइल के अधीन होगा।
   (ख) 50,000 की आबादीवाला हिस्सा जोर्डन के अधीन होगा।

इस प्रकार दोनों राज्यों की सीमा इस नगर में रखी गई।

3. इजराइल से भागे हुए अरबों को वापस लौटने की अनुमति नहीं दी गई।

तीसरी शर्त के कारण लगभग 10,00,000 अरब लोगों को 1953 तक इजराइल प्रदेश छोड़कर अन्य अरब देशों में रहना पड़ा और इसके स्थान पर लगभग 6,00,000 यहूदी मध्य-पूर्व यूरोप तथा अफ्रीका से आकर इजराइल में बस गए, जिससे यहूदियों की संख्या में भारी वृद्धि हो गई, जो अरब राष्ट्रों के लिए एक भारी संकट है।

इस प्रथम अभियान में इजराइल की सैनिक सफलता के लिए निम्नलिखित तत्त्व विशेष रूप से उत्तरदायी थे—

1. अरब राष्ट्रों में एकता का पूर्ण अभाव था।
2. इजराइल के हथियारों की तुलना में अरब राष्ट्रों की सेना के हथियार निम्न श्रेणी के थे।
3. यहूदी साधन-संपन्न थे।
4. इजराइल को विदेशी सहायता भी पर्याप्त रूप में प्राप्त हो गई थी।
5. यहूदी सैनिक अरब सैनिकों की तुलना में कहीं अधिक निपुण, फुर्तीले तथा दक्ष थे।

दूसरा संघर्ष (1956)

इस संग्राम के प्रथम अभियान में इजराइल द्वारा अरबों की पराजय ने युद्धाग्नि को भड़काने में सदैव प्रमुख भूमिका निभाई है। इसी कारण अरब राष्ट्र इजराइल के विरोधी बन बैठे। इस अपमान का बदला लेने के लिए अरब राष्ट्रों ने इजराइल को केवल सैनिक शक्ति से ही क्षीण करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि जीभ की भाँति दाँतों के रूप में उसे घेरने की भी भरपूर कोशिश की। इसी कारण आर्थिक, राजनीतिक एवं व्यापारिक घेराबंदी शुरू कर दी। स्वेज नहर का मार्ग इजराइल के लिए अवरुद्ध कर दिया। इसका लाभ उठाने के लिए इजराइल ने विश्व-भर के यहूदियों से भारी आर्थिक सहायता माँगी और संपन्न यहूदियों से बड़ी मात्रा में आर्थिक सहायता प्राप्त करके अरबों की इस योजना को भी विफल कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप मध्य-पूर्व क्षेत्र का विकसित राष्ट्र इजराइल बन गया।

इस दौरान इजराइल और अरब राष्ट्रों के मध्य तनाव तथा छोटी-मोटी झड़पें जारी रहीं, और अनेक बार विशाल संग्राम की संभावनाएँ दिखाई दीं। मिस्र के शासक नासिर ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया था, जिससे इजराइल ने 29 अक्टूबर, 1956 को सिनाई प्रायद्वीप में मिस्र के मोरचे पर हमला कर दिया, क्योंकि इस अभियान में फेदायीन अड्डों को विनष्ट करना था; ताकि विगत अभियान की भाँति इस ओर से अरब राष्ट्रों का हमला न हो सके। इस अभियान में इजराइल को भारी सफलता प्राप्त हुई और सिनाई प्रायद्वीप पर इजराइल का अधिकार हो गया। स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के कारण फ्रांस और ब्रिटेन भी मिस्र के विरोधी हो गए थे। इस प्रकार यह आक्रमण अभियान केवल 5 दिन तक ही चला। सोवियत हस्तक्षेप के कारण ब्रिटेन तथा फ्रांस को मिस्र से अपनी सेनाएँ हटानी पड़ीं। इस अभियान में मिस्र की पराजय का एक प्रमुख कारण यह था कि उसे अकेले ही तीन शक्तियों का सामना करना पड़ा था। संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्ताव पर इजराइल, फ्रांस तथा ब्रिटेन की सेनाएँ हट गईं। लेकिन हटने के साथ ही इजराइल ने कुछ शर्तों के आधार पर समझौता किया था—

1. अकाबा की खाड़ी और तिरान जलडमरूमध्य सभी के लिए खोल दिए जाएँ।

2. गाजा पट्टी पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का अधिकार रहना चाहिए जब तक कि कोई सही निर्णय न हो।
3. संयुक्त राष्ट्र की सेना इजराइल के भू-भाग पर नहीं रखी जाएगी।

इस संघर्ष में मिस्र की पराजय एवं इजराइल की सफलता के लिए निम्नलिखित तत्त्व विशेष रूप से उत्तरदायी थे—

1. मिस्र को एक साथ तीन शक्तियों (ब्रिटेन, फ्रांस तथा इजराइल) का सामना करना पड़ा, जिसके कारण उस पर भारी दबाव पड़ गया और वह पराजित हुआ।
2. अरब राष्ट्रों का सहयोग पूरी तरह से प्राप्त नहीं हुआ।
3. सैनिक साधन भी शत्रु की तुलना में कमजोर थे।
4. इजराइल को आर्थिक एवं सैनिक सहायता मिलती रही थी।

तीसरा संघर्ष (1967)

यह संघर्ष 5 जून, 1967 को भारतीय समय के अनुसार लगभग 11.30 बजे प्रातः आरंभ हुआ था। इस युद्ध के पूर्व ही दोनों में तनाव का सिलसिला जारी था तथा छोटी-मोटी मुठभेड़ें भी होती जा रही थीं। लेकिन जोर्डन नदी के पानी के विवाद ने संघर्ष की आग को और भड़का दिया। ऐरिक जान्सटन की योजना के अनुसार यह तय किया गया था कि जोर्डन नदी के जल का 33% भाग इजराइल तथा 67% भाग अरब देश प्रयोग कर सकते हैं। इजराइल ने अपने जल उपयोग के लिए कार्यवाही भी शुरू कर दी थी। अरब राष्ट्र इस स्थिति को सहन करने के लिए मानसिक रूप से भी तैयार नहीं थे। अतः उन्होंने मिस्र की राजधानी काहिरा में 'अरब शिखर सम्मेलन' आयोजित किया। उसमें मुख्य रूप से ये विषय रखे गए थे—

(i) जोर्डन नदी के पानी का समाधान तय किया जाए।
(ii) अरब राष्ट्रों के लिए एक संयुक्त सेना गठित की जाए।
(iii) सभी अरब राष्ट्रों द्वारा मिलकर इजराइल का समूचा विनाश किया जाए।

आपसी मतभेदों के कारण कोई भी ठोस निर्णय इस 'अरब शिखर सम्मेलन' में नहीं किया जा सका। इसके बावजूद इजराइल के विरुद्ध कार्यवाही के लिए सभी तैयार थे। मिस्र के तत्कालीन राष्ट्रपति नासिर ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनाओं को अपने क्षेत्र से हटाने का अनुरोध किया; जैसाकि पहले ही इजराइल ने मना कर दिया था। लेकिन संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्कालीन महासचिव (ऊ-थांट) के विरोध के बावजूद, अंततः संयुक्त राष्ट्र की सेना को हटना पड़ा। इधर अमेरिका एवं रूस भी पश्चिम एशिया में अपना प्रभाव जमाने के लिए जमने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अरब एवं इजराइल के मध्य युद्ध की स्थिति अत्यंत निकट आती हुई दिखाई देने लगी।

पूर्वाह्न 11.30 बजे इजराइल की सेना ने संयुक्त अरब गणराज्य की राजधानी

काहिरा में 5 जून, 1967 को आकस्मिक आक्रमण के साथ हवाई कार्यवाही आरंभ कर दी, जिससे मिस्र के अधिकांश लड़ाकू व बमवर्षक विमान बिना उड़ान भरे ही, धरती पर ही ध्वस्त कर दिए गए। इजराइल ने अकेले ही अपनी सशक्त सैनिक शक्ति के द्वारा अरब राष्ट्रों की शक्ति को बुरी तरह से कुचल दिया था और 6 दिन के इस संग्राम में निर्णायक सफलता प्राप्त कर ली थी। 7 जून को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् ने यह माँग की कि सभी राष्ट्र आज रात्रि के 8 बजे तक युद्ध विराम कर दें। उधर इजराइली सेना सिनाई द्वीप को पार करते हुए स्वेज नहर के पूर्वी कोने पर पहुँच चुकी थी, जिसके कारण संयुक्त अरब गणराज्य की हालत दयनीय हो गई थी। अतः उसने तुरंत ही सुरक्षा परिषद् के शांति-प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा इजराइल और संयुक्त अरब गणराज्य का युद्ध विराम 10 जून, 1967 को हो गया।

सीरिया एवं इजराइल के मध्य युद्ध जारी था। अतः सुरक्षा परिषद् ने सीरिया और इजराइल को 2 घंटे के भीतर युद्ध बंद करने के आदेश 9 जून की रात्रि को दिए। लेकिन इस दौरान जहाँ सीरिया की सामरिक स्थिति अत्यंत नाजुक हो गई थी वहाँ इजराइल का समरतांत्रिक उद्‌देश्य भी पूरा हो रहा था। अतः दोनों ने सुरक्षा परिषद् के शांति-प्रस्ताव को तुरंत ही स्वीकार कर लिया तथा युद्ध को रोक दिया। युद्ध समाप्त होते ही संयुक्त अरब गणराज्य ने इजराइल को सैनिक सहयोग प्रदान करने के लिए अमेरिका व ब्रिटेन को दोषी ठहराया तथा उनके साथ प्रतिकूल व्यवहार अपनाने के लिए कूटनीतिक संबंध तोड़कर उनके सभी नागरिकों को स्वदेश जाने का आदेश प्रसारित कर दिया।

इस प्रकार अरब-इजराइल संघर्ष ने एक नया मोड़ लिया, क्योंकि अरब देशों की ओर से रूस मैदान में आ गया। अतः यह संघर्ष अमेरिका एवं रूस का संघर्ष बन गया। अरब में गुरिल्ला गतिविधियाँ बहुत बढ़ गईं। अरब कमांडोजों ने ओलिंपिक खेलों में इजराइल के खिलाड़ियों की हत्या कर दी। अतः इजराइल ने इसके बदले में लेबनान और सीरिया पर हमले कर दिए, शीतयुद्ध एवं हिंसात्मक युद्ध का सिलसिला जारी रहा।

मिस्र के राष्ट्रपति नासिर ने अरब भूमि से हटने के लिए इजराइल पर दबाव डाला। इजराइल ने अपने विजित क्षेत्र से हटने से पूर्ण इनकार कर दिया। साथ ही इजराइल ने येरूसलम शहर को विधिवत् इजराइल राज्यों में मिलाने की घोषणा कर दी, जिसके विरोध में मोरक्को की राजधानी रबात में इसलामी देशों के शिखर सम्मेलन में आपसी फूट स्पष्ट हो गई, जिसका लाभ इजराइल को मिला। जुलाई 1970 में इजराइल की ओर से प्रत्यक्ष वार्त्ता का प्रस्ताव रखा गया। शांति वार्त्ता शुरू हो गई; लेकिन उसकी दो प्रमुख शर्तें रखी गई थीं—

1. इजराइल विजित क्षेत्रों से अधिकार हटा ले।
2. अरब देश इजराइल की सीमा में इजराइल की प्रभुसत्ता को खुलकर स्वीकार कर लें।

7 अगस्त, 1970 से पूर्ण युद्ध विराम लागू हो गया। परंतु सभी देश आपसी मतभेदों एवं तनाव के कारण एक-दूसरे के प्रति सदैव चौकन्ने बने रहे। महाशक्तियों ने भी अपनी समरतांत्रिक चालें चलनी शुरू कर दी थीं। दोनों पक्ष अपनी-अपनी बात मनवाने के लिए अड़े रहे। अरब राष्ट्रों की निम्नलिखित माँगें इजराइल के समक्ष रखी गईं—

1. अरब भूमि की एक इंच जगह भी अपने हाथ से नहीं जाने देंगे।
2. अरब देश अपनी प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिए किसी का भी हस्तक्षेप बरदाश्त नहीं करेंगे।
3. इजराइली जलयान स्वेज नहर में तभी प्रवेश पा सकेंगे जब इजराइल अरब के जीते हुए क्षेत्र को वापस कर देगा।
4. युद्ध में जीती हुई भूमि का लाभ इजराइल को नहीं देंगे।

दूसरी ओर इजराइल ने अरब राष्ट्रों के समक्ष निम्न शर्तें रखी थीं—

1. इजराइल को अरब राष्ट्र मान्यता प्रदान करें।
2. येरूसलम पर इजराइल का अधिकार रहे।
3. अन्य राष्ट्रों की भाँति स्वेज नहर तथा अकाबा की खाड़ी में इजराइली जलयानों को प्रवेश दिया जाए।
4. फिलिस्तीनी लोगों के लिए जोर्डन नदी के पश्चिम का क्षेत्र अलग कर दिया जाए।
5. इजराइल के साथ भविष्य में छेड़छाड़ न करने का पूर्ण एवं सही आश्वासन दिया जाए।
6. सीरियाई सीमांत के उस पहाड़ी क्षेत्र को इजराइल के अधीन कर दिया जाए जहाँ से अधिकांश हमले किए जाते रहे।

अरब राष्ट्रों ने इन कठोर शर्तों को स्वीकार करने से मना कर दिया। अतः दोनों के मध्य तनाव का सिलसिला लगातार चलता रहा और 6 अक्टूबर, 1973 को पुनः इस संग्राम का एक नया अभियान आरंभ हो गया।

चौथा संघर्ष (1973-1980)

इस संघर्ष का यह समय भी अपने उत्थान-पतन एवं अपनी माँगों के समर्थन में डटे रहने के कारण अत्यंत तनावपूर्ण रहा। अरब राष्ट्र अपनी एक इंच भूमि भी इजराइल को नहीं देना चाहते थे तथा इजराइल द्वारा जीते हुए क्षेत्र का लाभ भी उसे नहीं उठाने देना चाहते थे। साथ ही इस शर्त पर इजराइल के लिए स्वेज मार्ग खोलने को तैयार थे कि वह पहले जीते हुए क्षेत्र को खाली कर दे। दूसरी ओर इजराइल अपनी मान्यता, स्वेज में प्रवेश, येरूसलम में अधिकार, सीरियाई क्षेत्र (जहाँ से आक्रमण होता है) चाहता था। दोनों को ही एक-दूसरे की शर्तें मान्य नहीं थीं। अतः संघर्ष का सिलसिला

6 अक्टूबर, 1973 को शुरू हो गया। घटना का आरंभ मिस्र की सेनाओं द्वारा इजराइल पर आक्रमण के साथ हुआ। सीरिया एवं मिस्र ने मिलकर आक्रमण अभियान चलाया; परंतु वे विशेष समरतांत्रिक लाभ नहीं उंठा सके। 16 दिन के इस संघर्ष में दोनों पक्षों को भारी हानि उठानी पड़ी, परंतु इससे यह अवश्य सिद्ध हुआ कि इजराइली सेना को अरब राष्ट्र मिलकर हरा सकते हैं। इस आक्रमण से मिस्र ने स्वेज नहर के पार 103 मील लंबी पट्टी पर अधिकार कर लिया तथा सीरिया ने प्रसिद्ध क्षेत्र गोलन पहाड़ी पर कब्जा जमा लिया। दूसरी ओर इजराइल ने सीरिया की ओर सासा के पास तक के क्षेत्र तथा स्वेज नहर के पश्चिमी तट पर अपना अधिकार जमा लिया और अरब दबाव को निष्क्रिय कर प्रत्याक्रमण कर दिया।

आक्रमण के दिन के लिए अरबों ने इजराइल के वार्षिक धार्मिक दिवस याम कियर (यॉम कीपर) को चुना। उस दिन इजराइल में उत्सव के कारण सहस्रों सैनिक अपने घरों में अवकाश मना रहे थे, तभी अरबों द्वारा आकस्मिक आक्रमण किया गया। इस आकस्मिक आक्रमण का आरंभ मिस्र की सेनाओं ने स्वेज नहर को पार करके किया। जबकि सीरिया की सेना ने उत्तर में गोलन पहाड़ियों पर बमबारी प्रारंभ कर दी। इस आक्रमण के द्वारा अरबों ने विश्व-राजनीति में इजराइल की ह्रास होती प्रतिष्ठा को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। 3 दिन के भीतर ही इजराइल ने मिस्र तथा सीरिया की सेनाओं को पुनः पीछे हटा दिया।

सुरक्षा परिषद् के प्रयासों से इस युद्ध को लगातार टाला तो जाता रहा परंतु उसका कोई स्थायी हल नहीं खोजा जा सका था। दोनों के मध्य तनाव का सिलसिला चलता ही रहा। सितंबर 1978 में अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति जिमी कार्टर के नेतृत्व में कैंप-डेविड में कार्टर-सादात-बेगिन के मध्य एक शिखर शांतिवार्त्ता हुई। इस वार्त्ता का भी कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला, क्योंकि कैंप-डेविड समझौते को लेकर दोनों के मध्य मतभेद बना रहा। 1980 में सुरक्षा परिषद् ने इजराइल को अरब क्षेत्रों के विजित स्थानों को खाली करने का आदेश दिया; परंतु इजराइल ने इस बात पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया। फिलिस्तीनियों के स्वतंत्र राज्य की स्थापना का इजराइल सदैव से विरोधी बना रहा। इस प्रकार 1980 तक इस संघर्ष का उत्थान-पतन रुक-रुककर चलता गया। इधर महाशक्तियों ने भी अपनी चालें चलनी शुरू कर दी थीं। जहाँ अमेरिका ने इजराइल का साथ दिया, वहाँ सोवियत संघ ने अरब देशों को सहयोग प्रदान करना शुरू कर दिया था।

पाँचवाँ संघर्ष (1981-1986)

इस संघर्ष की शुरुआत मई 1981 में लेबनान में सीरिया तथा इजराइल के विरोध के साथ हुई। जून 1981 में इराक के परमाणु संयंत्र को इजराइल के हवाई हमले द्वारा निशाना बनाया गया, जिससे युद्धाग्नि भड़क उठी। महाशक्तियों के दबाव तथा संयुक्त

राष्ट्रसंघ के निर्देशन में युद्ध को लगातार टालने का प्रयास जारी रहा; परंतु 6 जून, 1982 को इजराइल ने लेबनान पर जोरदार आक्रमण कर दिया। 16 जून, 1982 को इजराइली सेनाओं का लगभग आधे लेबनान पर अधिकार हो गया। उसकी सेनाएँ युद्ध विराम की स्थिति में होने के बावजूद बेरुत में तथा उसके आसपास फिलिस्तीनी छापामारों का सफाया करने में लगी थीं। इजराइल का यह आक्रमण लेबनान में क्यों हुआ, इसके निम्नलिखित कारण थे—

1. इजराइल लेबनान में सीरिया की उपस्थिति को पसंद नहीं करता था।
2. फिलिस्तीनी छापामारों के अड्डों को पूरी तरह से विनष्ट करना चाहता था।
3. अपनी सैनिक एवं साम्राज्यवादी शक्ति का दबदबा बनाए रखने के लिए तथा सैडोवारडर (सुरक्षा प्रहरी) का सपना पूरा करने के लिए इजराइल ने लेबनान पर आक्रमण किया।
4. अमेरिका इजराइल के माध्यम से भूमध्यसागर के तटवर्ती क्षेत्र में अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखना चाहता था।
5. इजराइल पूरे लेबनान से एक पूर्ण ईसाई लेबनानी राज्य को अलग करने का इच्छुक था। इसी कारण जीते हुए फिलिस्तीनी छापामारों के अड्डे ईसाई लेबनानी शासकों को सौंप दिए थे।
6. सीरिया की शक्ति को कमजोर करने के लिए इजराइल ने आक्रमण किया।
7. लेबनान की बेक्का खाड़ी में सीरिया के प्रक्षेपास्त्र इजराइल के लिए हमेशा सिरदर्द बने हुए थे।
8. गोलन हाइट जैसे महत्त्वपूर्ण सामरिक क्षेत्र पर अपनी स्थिति को अत्यंत मजबूत करने के लिए इजराइल कब्जा रखना चाहता था।

संक्षिप्त घटनाक्रम

6 जून, 1982 को इजराइल की स्थल, वायु और नौसेना ने तेजी के साथ आक्रमण करके पूर्वी लेबनान की बेक्का घाटी में स्थित सीरिया के प्रक्षेपास्त्र केंद्रों पर अधिकार जमा लिया। 8 जून को इजराइली सेना लेबनान की राजधानी बेरुत के निकट तक पहुँचने में सफल हो गई। 8 जून को ही अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने इजराइल से युद्ध विराम के लिए अपील की तथा सुरक्षा परिषद् ने भी अपना प्रयास जारी रखा। 10 जून को दबाव में आकर इजराइल ने युद्ध विराम प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, लेकिन 14 जून को पुनः युद्ध विराम की अवहेलना करके, बेरुत के हवाई अड्डे पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में ले लिया तथा पश्चिमी बेरुत में स्थित फिलिस्तीनी ठिकानों को घेर लिया। युद्ध विराम की घोषणा शत्रु को धोखे में डालने की एक कूटनीतिक चाल थी। इसका लाभ इजराइल को इतना अधिक मिला कि उसने संपूर्ण बेरुत को घेर लिया और अब फिलिस्तीनी मुक्ति मोरचे के लिए आत्मसमर्पण के अलावा कोई अन्य उपाय

नहीं था। 6 जुलाई तक पश्चिमी बेरुत की संपूर्ण नाकेबंदी इजराइल द्वारा की जा चुकी थी। इस कार्यवाही से लगभग 20,000 लेबनानी सैनिक शहीद हो गए। खुलकर किसी भी देश ने लेबनान को सैनिक सहायता नहीं प्रदान की। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् का भी कोई प्रभाव इजराइल को नहीं रोक सका।

27 जुलाई, 1982 को पुनः इजराइल की स्थल, वायु एवं नौसेना ने पश्चिम बेरुत स्थित फिलिस्तीनी छापामारों पर आक्रमण कर दिया, जिससे पश्चिम एशिया पुनः भीषण संकट की चपेट में आ गया। इजराइल ने बेरुत के अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर भी अधिकार जमा लिया। इजराइल ने यह आरोप लगाकर कि फिलिस्तीनी छापामार सैनिक बार-बार युद्ध विराम का उल्लंघन कर रहे हैं, अतः मजबूर होकर उसे युद्ध का रास्ता अपनाना पड़ा। आखिर संयुक्त राष्ट्रसंघ के दबाव पर पुनः 1 अगस्त, 1982 को नौवाँ युद्ध विराम लागू किया। 21 अगस्त से फिलिस्तीनी छापामार बेरुत से हटाए जाने आरंभ कर दिए। फिलिस्तीनी मुक्ति मोरचे के वैदेशिक मामलों के प्रवक्ता फारुख कादमी ने लेबनान से आने के समय यह घोषणा की थी, "हम हारकर लेबनान से नहीं जा रहे हैं। अलग राज्य बनाने का हमारा संघर्ष जारी रहेगा और वास्तव में यह संघर्ष अब आरंभ हो रहा है।"

30 अगस्त, 1982 को फिलिस्तीनी मुक्ति मोरचे के प्रमुख यासर अराफात ने भी बेरुत से प्रस्थान कर दिया। इजराइली सेनाओं ने भी 22 सितंबर, 1982 से बेरुत से निकलना आरंभ कर दिया; परंतु इसके सैनिकों ने फिलिस्तीनी शरणार्थी शिविरों में उपस्थित सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। इस भीषण नर-संहार की घोर निंदा की गई। ईरान ने संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा से इजराइल को निकालने का प्रस्ताव रखा; पर वह सफल न हो सका। 11 अक्टूबर, 1982 को यासर अराफात ने इजराइल को नए संघर्ष की खुली चेतावनी दी। इस दौरान भी समझौते के लगातार प्रयास जारी रहे। 17 मई, 1983 को दोनों के मध्य पुनः समझौता हो गया। समझौते में लेबनान से सीरिया, फिलिस्तीन तथा इजराइल के सैनिकों को निकालने की विशेष व्यवस्था की गई। सीरिया ने इस समझौते का विरोध किया, क्योंकि इजराइल ने यह शर्त लगाई थी कि यदि सीरिया और फिलिस्तीन शक्ति-संगठन ने अपने सैनिक लेबनान से नहीं हटाए तो वह भी अपने सैनिकों को वहाँ बनाए रखेगा। 15 सितंबर, 1983 को इजराइल के तत्कालीन प्रधानमंत्री बेगिन ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

25 सितंबर, 1983 को लेबनान ने यह घोषणा की कि सीरिया ने युद्ध विराम की शर्तों को मंजूर कर लिया है। युद्ध विराम की प्रमुख चार शर्तें तय की गई थीं—

1. निष्पक्ष प्रेक्षकों के निर्देशन में लेबनान के क्षेत्र में तुरंत युद्ध विराम लागू हो।
2. 1975 से अब तक विस्थापित लोगों को लौटने के लिए उचित व्यवस्थां की जाए।
3. युद्ध विराम की शर्तों को अंतिम रूप देने के लिए एक समिति गठित की

जाए, जिसमें लेबनानी मोरचा, नेशनल सालवेशन फ्रंट तथा शिते मुसलिम अमाल आंदोलन के प्रतिनिधि हों।

4. राष्ट्रपति अमीन जमील राष्ट्रीय स्तर पर बात करने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों को बुलाएँ।

इस प्रकार पाँचवाँ आक्रमण अभियान समाप्त हुआ, परंतु इजराइल एवं फिलिस्तीनी मतभेद इतने हो गए कि इसके परिणामस्वरूप इसका अंत जल्दी नहीं हो पाया। 2 अक्टूबर, 1985 को पुनः इजराइल ने फिलिस्तीनियों पर आक्रमण कर दिया। 9 सितंबर, 1993 को फिलिस्तीन एवं इजराइल समझौता एक ऐतिहासिक स्तर पर हुआ, जिससे पश्चिमी एशिया में शांति के नए द्वार खुल गए हैं; किंतु इनके प्रति सतत सतर्कता एवं सद्‌भावना बनाए रखने की आवश्यकता होगी; नहीं तो यह समझौता पुनः खतरनाक मोड़ ले सकता है।

सैन्य शिक्षाएँ

अरब तथा इजराइल के मध्य लगातार युद्धों ने निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ दीं—

1. इस युद्ध के परिणामस्वरूप एक उच्च श्रेणी के सैनिकीकरण की शुरुआत इजराइल में हुई।
2. किसी भी राष्ट्र के मध्य उलझा हुआ सीमा विवाद कभी भी सैनिक संघर्ष में परिवर्तित हो सकता है।
3. प्रत्येक राष्ट्र की सुरक्षा-व्यवस्था तभी तक सुदृढ़ है जब तक वह स्वयं अत्याधुनिक शस्त्रों से सज्जित है। इस बात को विशेष बढ़ावा मिला तथा शस्त्रों की होड़ भी शुरू हो गई।
4. अंतरराष्ट्रीय कानूनों को ध्यान में रखकर शत्रु को हर हरकत से पराजित करने पर संबंधित राष्ट्र को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष सहयोग एवं सद्‌भावनाएँ मिलती हैं; जैसाकि इजराइल को इस युद्ध में मिलीं।
5. अरब राष्ट्रों की पराजय का प्रमुख कारण यह था कि सभी राष्ट्र अलग-अलग होकर लड़े तथा प्रत्येक राष्ट्र को अकेले इजराइल से बुरी तरह मार खानी पड़ी। यदि सभी राष्ट्र एक साथ एवं एक समय पर कार्यवाही करते तो शायद स्थिति कुछ और होती।
6. किसी भी अभियान को आरंभ करने के पूर्व एक सुनिश्चित योजना तथा उसकी कार्यवाही अवश्य होनी चाहिए, अन्यथा असफलता ही हाथ लगती है। जैसाकि अरब राष्ट्रों के साथ लगातार युद्धों में हुआ।
7. इस युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया कि पश्चिम एशिया का यह क्षेत्र लगातार संघर्ष का शिकार चार स्थितियों से हुआ—प्रथम, आटोमन तथा पर्शिया के

साम्राज्य का विकास, द्वितीय स्थिति में पश्चिमी शक्तियों की दखलंदाजी (हस्तक्षेप), तृतीय स्थिति में संघर्ष तथा चतुर्थ स्थिति में संधि एवं तेल राजनीति के कारण। मिस्र' में स्वेज नहर का निर्माण तथा इजराइल की उत्पत्ति ने इस क्षेत्र को युद्ध का अखाड़ा बनाया।

8. इसलाम (धर्म), ईंधन (तेल) तथा इजराइल (देश) के नाम पर वह तत्त्व पश्चिम एशिया के देश इस क्षेत्र की समस्या को अपने स्वार्थों के कारण कभी भी युद्ध के रूप में खड़ी कर सकते, जिनके लिए विकसित राष्ट्रों के हित भी प्रत्यक्ष रूप से लगे हुए हैं।
9. 1949 में इजराइल ने येरूसलम को अपनी राजधानी बना लिया; परंतु विदेशी कूटनीतिज्ञों ने अपने दूतावास तेलअवीव में ही रखे। अतः इस धार्मिक क्षेत्र में इसलाम धर्म के नाम पर 'जेहाद' छेड़ने की प्रक्रिया लगातार जारी रहेगी। इसके प्रति सदैव सतर्कता एवं संयम की आवश्यकता सुरक्षा के लिए रहेगी।
10. अरब-इजराइल मतभेद के दो प्रमुख कारण सीमा मतभेद तथा फिलिस्तीनी शरणार्थी समस्या एक-दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ाएगी, जिनके प्रति सतत सामरिक सतर्कता भविष्य में भी रखनी आवश्यक है।
11. गाजा पट्टी, पश्चिमी तट तथा गोलन पहाड़ियों में बसे अरब नागरिकों को यदि इजराइल का नागरिक बना दिया जाय तो इजराइल को अपना अस्तित्व खतरे में नजर आता है। अतः इस समस्या का शीघ्रता से हल संभव नहीं हो सकेगा। यही कारण है कि अरब-इजराइल संघर्ष की स्थिति आज भी अधर में लटक रही है।
12. अरब-इजराइल संग्राम ने यह सुनिश्चित कर दिया कि जब तक क्षेत्रीय समस्याएँ स्थायी रूप से हल नहीं होंगी, तब तक यह क्षेत्र युद्ध की आशंकाओं से निरंतर घिरा रहेगा।

भारत-चीन युद्ध
(1962 ई.)

इस संग्राम का मुख्य कारण जहाँ चीन की कूटयोजना थी वहाँ साम्यवादी विचारधारा ने भी उसे भारत विरोधी बना दिया था। तिब्बत के मामले को लेकर वह भारत को एक चेतावनी देना चाहता था। इस युद्ध की पृष्ठभूमि 23 मई, 1951 में हुए तिब्बत-चीन समझौते के रूप में दिखाई देती है। इस समझौते के तहत चीन ने तिब्बत को एक स्वायत्त शासन दे दिया था तथा वहाँ भारतीय हितों के संरक्षण का भी आश्वासन दिया था। इस समझौते को भारत सरकार ने भी मान्यता प्रदान कर दी थी। चीन ने यह समझौता भंग करते हुए फरवरी 1952 में तिब्बत की राजधानी ल्हासा में सैन्य मुख्यालय स्थापित कर लिया और चीन की सीमा भारत के साथ जुड़ गई तथा सीमा विवाद का रूप इस युद्ध का एक प्रमुख कारण बना।

भारत ने तिब्बत सीमा विवाद को सुलझाने के लिए दिसंबर 1953 में अपना एक शिष्टमंडल चीन की राजधानी पेइचिंग (वर्तमान बीजिंग) भेजा। इस पहल के परिणाम-स्वरूप 29 अप्रैल, 1954 को दोनों राष्ट्रों के मध्य 'पंचशील समझौता' हुआ। इस समझौते के तहत भारत ने तिब्बत पर चीन के प्रभुत्व को स्वीकार करते हुए एक-दूसरे की प्रभुसत्ता का सम्मान, आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने, एक-दूसरे पर आक्रमण न करने के सिद्धांत का अनुसरण करने का वचन दिया। इस समझौते की आड़ में चीन ने अपनी चालें चलनी शुरू कर दी थीं। इस बात का खुलासा उस समय हुआ जब जुलाई 1958 में चीन द्वारा प्रकाशित एक मानचित्र में नेफा से असम तक, लद्दाख की ओर चुशूल तथा अक्साई चिन व उत्तर प्रदेश के बाराहोती तथा निति दर्रा तक का क्षेत्र उसने अपनी राष्ट्रीय सीमा के अंतर्गत दिखाया। इसी के साथ उसने अपनी सैनिक गतिविधियाँ भी तेज कर दी थीं।

भारत ने चीन की इस कार्यवाही की लिखित रूप में शिकायत की तो चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई ने यह कहकर स्थिति को टाल दिया कि "वर्तमान मानचित्र पुराने चीनी मानचित्रों पर आधारित है। हमारी सरकार को इसे सुधारने के लिए समय ही नहीं मिल पाया है।" इसके साथ ही चीन अपनी कूटनीतिक चालों को चलता रहा तथा सैनिक महत्त्व की दृष्टि से चौकियों तथा रास्तों का निर्माण-कार्य भी प्रारंभ कर दिया।

दिसंबर 1958 में भारत सरकार ने पुनः इसका विरोध किया तो चीन ने प्रतिक्रिया-स्वरूप कहा, "चीन ब्रिटेन द्वारा निर्धारित मैकमोहन सीमारेखा को मान्यता नहीं देता; और भारत द्वारा प्रदत्त सीमारेखा में 50,000 वर्ग मील से भी अधिक क्षेत्र चीन का है, जिसमें

लगभग 15,000 वर्ग मील क्षेत्र लद्दाख की ओर, 32,000 वर्ग मील क्षेत्र नेफा की ओर तथा शेष 3,000 वर्ग मील क्षेत्र मध्यवर्ती भागों में स्थित है।"

चीन की इस प्रतिक्रिया से भारत को भारी धक्का लगा तथा 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' का नारा भी खोखला दिखाई देने लगा। चीन ने मानचित्र में दर्शाए हुए क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाना भी आरंभ कर दिया।

जिस समय चीन ने तिब्बत पर अपना प्रभाव जमाना शुरू किया तो उन्होंने तिब्बती लोगों पर दमन-नीति भी अपनाई। 31 मार्च, 1959 को तिब्बती नेता दलाई लामा तथा असंख्य तिब्बती लोगों ने भागकर भारत में शरण ली। भारत द्वारा तिब्बती लोगों को शरण देने से चीन खुलकर विरोध में आ गया। साथ ही उसने नेफा तथा असम के क्षेत्रों में तिब्बती शरणार्थियों के वेश में जासूस भेजकर वस्तुस्थिति का जायजा लिया और भारत-विरोधी कार्यवाही तेज कर दी। इसी के साथ चीन ने भारत पर आरोप लगाया कि वह तिब्बत के सशस्त्र विद्रोहियों को संरक्षण प्रदान कर रहा है। इस आरोप के बहाने चीन के सशस्त्र सैनिकों ने भारत की सीमा में 10 से 15 मील तक प्रवेश करके चौकियों पर आक्रमण आरंभ कर दिया। इस आक्रमण में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के 10 जवान शहीद हुए थे। 20 अक्टूबर, 1959 को चीनी सैनिकों ने घात लगाकर पैट्रोलिंग करते समय आक्रमण किया था। आज भी 20 अक्टूबर को केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल 'पुलिस स्मृति बल दिवस' के रूप में मनाता है।

भारत ने चीन के इस कठोर कदम के बावजूद अपना शांति प्रयास जारी रखा तथा नवंबर 1959 में एक प्रस्ताव चीन के समक्ष रखा, जिसमें तय किया गया कि भारतीय मानचित्र की सीमाओं से चीन की सेनाओं को तुरंत हटा लेना चाहिए। चीन को इन शांति-प्रस्तावों की परवाह नहीं थी। उसने अपनी सेनाओं को आगे बढ़ाने का सिलसिला जारी रखा। इसके साथ ही अक्साई चिन के दक्षिणी एवं पश्चिमी क्षेत्रों पर मार्गों का निर्माण-कार्य भी शुरू कर दिया। इधर भारत के लगातार शांति प्रयासों के परिणामस्वरूप अप्रैल 1960 में चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-एन-लाई दिल्ली आए और लगभग 6 दिन तक शांतिवार्त्ता चली; परंतु यह भी सफल नहीं रही। इधर चीनी सेनाओं ने नेफा के क्षेत्रों में अपनी घुसपैठ लगातार जारी रखी। इसके बाद दोनों देशों के विशेषज्ञों की बैठक भी हुई, जिसमें चीन ने कश्मीर के क्षेत्र को भारत के क्षेत्र के रूप में स्वीकार नहीं किया तथा भूटान व सिक्किम के उत्तर में तिब्बत सीमा पर वार्त्ता करना भी उन्हें स्वीकार नहीं हुआ। अतः सभी वार्त्ताओं का परिणाम शून्य ही रहा।

चीन ने अपनी कूटयोजना के तहत मई 1962 में पाकिस्तान के साथ एक समझौता करके कराकोरम क्षेत्र के उत्तर में कश्मीर का 300 वर्ग मील क्षेत्र अपने अधिकार में ले लिया, जिससे उसकी योजना के लिए एक नया रास्ता खुल गया। भारत ने इसका विरोध किया; परंतु नागरिक यातायात के लिए अक्साई चिन सड़क का उपयोग उचित करार दिया। वह भारत के उत्तरी क्षेत्र में अपना कूटनीतिक एवं सैनिक जाल

लगातार बिछाता जा रहा था, जिसमें भारत अपनी शांतिप्रियता के कारण स्वयं ही फँसता गया। 1962 के आरंभ में चीन ने अपनी सैनिक कार्यवाहियों में तेजी लानी शुरू कर दी
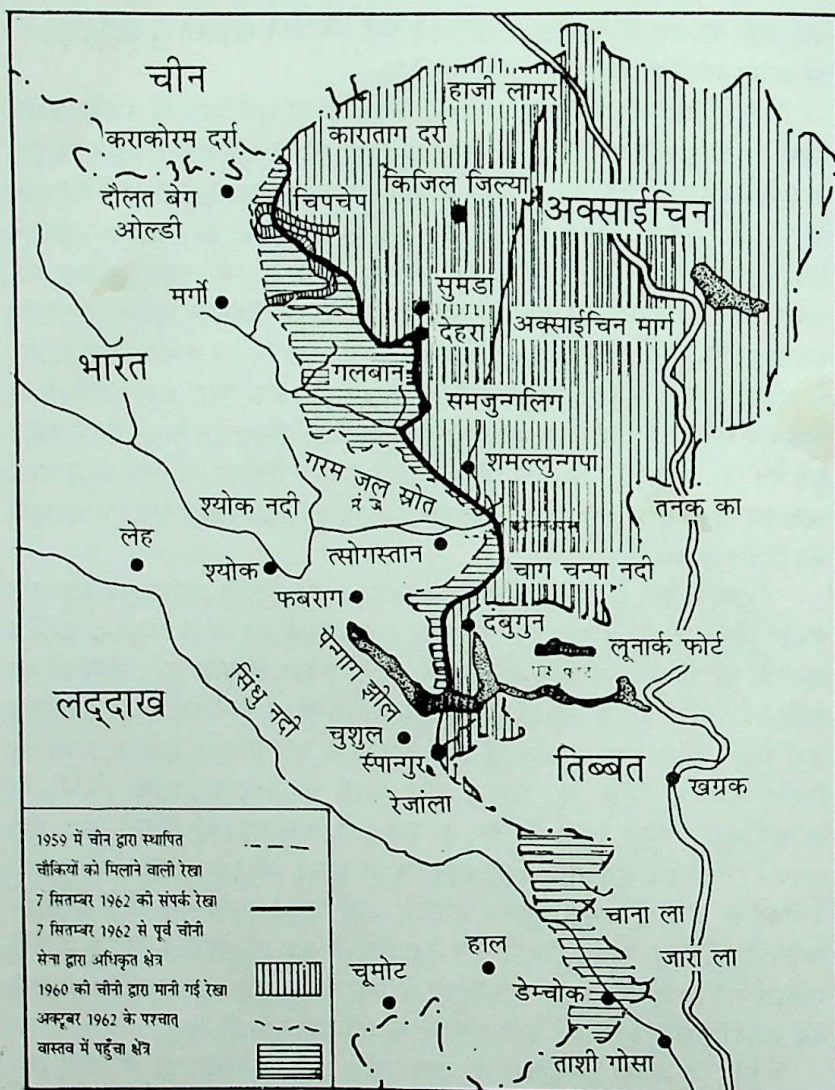
भारत-चीन युद्ध 1962 का उत्तरी क्षेत्र

थी। जून 1962 में 'पंचशील समझौते' की अवधि भी समाप्त हो गई थी। अतः उसने सभी परिस्थितियों को अनुकूल बना लिया था।

चीन ने अपनी आरंभिक लड़ाई के लिए भारत, तिब्बत व भूटान से लगे हुए थागला क्षेत्र को चुना और सितंबर 1961 में सीमा चौकियों में छिटपुट सैनिक कार्यवाही आरंभ कर दी। भारत अपनी प्रतिरक्षात्मक नीति के कारण दबाव में आता गया और 10 अक्टूबर, 1962 को चीन ने नमकाचू नामक भारतीय सीमा चौकी पर आक्रमण कर दिया, जिससे भारत को भारी आघात पहुँचा; क्योंकि चीन ने पहले से ही अपनी आपूर्ति-व्यवस्था के संपूर्ण साधन जुटा लिये थे; जबकि भारत की सेना बड़ी कठिनाई के साथ वहाँ पहुँच पा रही थी। भारतीय सेना ने इस आक्रमण के जवाब में चीन के नेफा के ढोला क्षेत्र में स्थिति मजबूत बना ली थी।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

भारत एवं चीन के मध्य लड़े गए इस युद्ध में शक्ति एवं संख्या के दृष्टिकोण से चीन की सेना भारत से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी। चीन के पास जहाँ सैनिक संख्या बहुत अधिक थी, वहाँ उसकी सेना अत्यंत सुसंगठित, सुप्रशिक्षित एवं शस्त्रास्त्रों से सज्जित भी थी। एक तरह से चीन की सेना संसार की सबसे बड़ी थलसेना के रूप में थी। 1962 में केवल तिब्बत में चीन की 14 डिवीजन सेना थी, जबकि कुल भारतीय सेना में डिवीजनों की संख्या 10 से भी कम थी।

चीन की सेना इस प्रकार थी—

थलसेना—

(i) माओ-त्से-तुंग की लाल सेना—2,35,00,000,

(ii) चीन की नियमित सेना—40,50,000।

वायुसेना—

(i) सैनिक लड़ाकू विमान—4,000,

(ii) अन्य विमान—3,000,

(iii) कुल विमान—7,000।

भारत की सेना जहाँ सैनिक संख्या में बहुत कम थी वहाँ उसके पास पहाड़ियों में लड़ने के साधन तथा आपूर्ति-व्यवस्था बनाए रखने के लिए मार्गों का भी पूर्ण अभाव था। चीन के आकस्मिक आक्रमण के कारण भारत को भारी हानि उठानी पड़ी। संक्षिप्त में, नेफा व लद्दाख क्षेत्र में इस प्रकार भारतीय सेना तैनात थी—

लद्दाख क्षेत्र—इस क्षेत्र में 114 पैदल सेना ब्रिगेड को नियुक्त किया गया था। सितंबर 1962 में एक और बटालियन 13 कुमाऊँ को भी लद्दाख में तैनात किया गया। अस्थायी तौर पर यह लेह में स्थित था। इस प्रकार अब 114 ब्रिगेड में 5 बटालियन हो गए—

उत्तरी सेक्टर (दौलतबेग ओल्डी से सुल्तान चुश्कू)	14 जम्मू-कश्मीर मिलिशिया (लदखी)।
मध्य सेक्टर (गालवान नदी से लुकुंग)	5 जाट।

चुशूल सेक्टर (सिरचाप से स्पांगुर)	1/8 गोरखा राइफल्स।
दक्षिणी सेक्टर (डुंगटी से दमचोक)	7 जम्मू-कश्मीर मिलिशिया (लदखी)।
लेह	13 कुमाऊँ।

नेफा क्षेत्र—इस क्षेत्र में तैंतीसवें कोर का मुख्यालय शिलांग था। कोर के अधीन चतुर्थ डिवीजन का मुख्यालय तेजपुर में था तथा सातवें ब्रिगेड का मुख्यालय तवांग। इसमें 3 बटालियन थे—

(i) 1/9 गोरखा बटालियन,
(ii) 1 सिक्ख व 9 पंजाब बटालियन,
(iii) 9 पंजाब की एक कंपनी।

वास्तविक संघर्ष

20 अक्टूबर, 1962 को चीन ने भारत के उत्तर-पश्चिम लद्दाख के चिपचैप क्षेत्र से लेकर उत्तर-पूर्व सीमांत एजेंसी (नेफा) अथवा अब के अरुणाचल प्रदेश के खिंजमान व ढोला चौकी के बीच अनेक भारतीय चौकियों पर आकस्मिक धावा बोलकर उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। इस आकस्मिक आक्रमण से भारत को भारी हानि उठानी पड़ी। चीन ने इसका लाभ उठाते हुए अपना विजय अभियान जारी रखा। कम संख्या तथा प्रतिरक्षात्मक स्थिति अपनाने के कारण भारतीय सेना शत्रु का मुकाबला कुशलता के साथ नहीं कर सकी। 21 अक्टूबर को प्रातःकाल लगभग 5 बजे चीनियों ने त्सांगघर में स्थित भारतीय सेना के सातवें ब्रिगेड मुख्यालय पर भी अपना अधिकार जमा लिया और ब्रिगेडियर सहित अनेक सैन्याधिकारियों को बंदी बनाने में सफल हुए। साथ ही चीन ने बूमला में सिक्ख रेजीमेंट पर हमला कर दिया, जहाँ एक संघर्ष के पश्चात् पुनः चीनी सैनिकों को सफलता प्राप्त हो गई। बूमला पर अधिकार हो जाने से चीन को अब तवांग के लिए भी रास्ता प्राप्त हो गया।

नेफा क्षेत्र की कार्यवाही

22 अक्टूबर को चीनी सेना ने अपनी निर्धारित योजना के अनुसार तवांग पर भी धावा बोल दिया तथा तीन ओर से भारत की ओर बढ़ना शुरू कर दिया। लद्दाख के मोरचे पर सीमित भारतीय सेना असंख्य चीनी सैनिकों का सामना कर रही थी; परंतु अंत में चीन ने भारत की तीन चौकियों पर अधिकार जमा लिया। योजनानुसार चीनी सेना मैकमोहन सीमारेखा को लाँघते हुए आगे बढ़ने लगी। भारतीय सेना ने उसका विरोध किया। 24 अक्टूबर को चीन ने अरुणाचल प्रदेश के क्षेत्र में दो ओर से हमला कर दिया। तवांग की ओर तेजी के साथ बढ़ती हुई चीनी सेना ने बोमडीला, कीबूतू, लुंपू तथा ससाफौला आदि भारतीय चौकियों पर अपना कब्जा जमा लिया। इस क्षेत्र में चीनी आक्रमण अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

24 तथा 25 अक्टूबर को चीन ने तवांग क्षेत्र पर तीन ओर से हमला करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। उस दिन की घटना में भारतीय सेना को शस्त्रास्त्रों के

अभाव में वहाँ से हटना पड़ा। उसने लद्दाख क्षेत्र के चुशूल पर भी कब्जा कर लिया। 30 अक्टूबर को पुनः एक हमला करके जाराला तथा दमचोक चौकियों पर भी चीन का कब्जा हो गया तथा वालोंग तक पहुँचने में उसे सफलता हासिल हो गई। 3 नवंबर को चीन ने अपनी सेना को पुनर्गठित किया तथा सिक्किम व भूटान के बीच स्थित चुंबी घाटी में लगभग 18,000 सैनिक उतार दिए। उस समय चीन ने लद्दाख के क्षेत्र में लगभग 2,300 वर्ग मील का क्षेत्र अपने अधीन कर लिया था। इस दौरान भारतीय सेना के साथ कड़ा संघर्ष होता रहा।

10 नवंबर को नेफा क्षेत्र की वालोंग चौकी पर जोरदार हमला करके चीनी सेना ने कार्यवाही शुरू कर दी; जिसका भारतीय सेना ने डटकर मुकाबला किया; परंतु 13 नवंबर को चीनी सेना वालोंग के उत्तर-पश्चिम में स्थित एक महत्त्वपूर्ण पहाड़ी पर अपना अधिकार जमा लिया। 15 नवंबर को नेफा के क्षेत्र में ही 'जंग' नामक स्थान पर भारतीय सेनाओं ने चीनी सेना के विरुद्ध जोरदार संघर्ष किया, फिर भी चीन के लगभग 6 ब्रिगेड तवांग-चू नदी को 'जंग' नामक स्थान से पार करने में सफल हो गए। 17 नवंबर को वालोंग के क्षेत्र में दोनों के मध्य जोरदार युद्ध हुआ, अंततः इस क्षेत्र पर चीनियों का अधिकार हो गया।

18 नवंबर को चीनी सेनाओं ने सेला पहाड़ी पर भी अपना अधिकार कर लिया; जिससे उसे दिरांग तथा बोमडीला दर्रों पर अधिकार करने का एक अच्छा मौका मिल गया। इस प्रकार 20 नवंबर तक चीन ने कामेंग सीमांत डिवीजन से भारत को निकालने का लक्ष्य पूरा कर लिया। जब दोनों पक्षों के मध्य घमासान लड़ाई जारी थी, चीन ने 20 नवंबर, 1962 की आधी रात को नाटकीय ढंग से एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा करके 1 दिसंबर से सेनाएँ हटाने का आश्वासन दिया। इसके बावजूद अपनी कूट चालों द्वारा संपूर्ण उत्तरी-पूर्वी सीमांत पर आक्रमण जारी रखकर अपना अधिकार जमाने का अभियान भी बनाए रखा। इससे भारतीय सीमा के इस क्षेत्र में एक भीषण संकट उत्पन्न हो गया। इसी कारण भारतीय थलसेनाध्यक्ष जनरल पी.ए. थापर के स्थान पर लेफ्टीनेंट जनरल जे.एन. चौधरी को कार्यवाहक सेनापति बनाया गया। जनरल चौधरी ने शत्रु को भारतीय सीमा से खदेड़ने का संकल्प लिया तथा जोरदार प्रयास आरंभ किए; परंतु इसी दौरान चीन ने पुनः युद्ध विराम की घोषणा की।

भारत-चीन सीमा समस्या के हल के लिए 10 दिसंबर से 12 दिसंबर तक कोलंबो सम्मेलन हुआ। भारत को अमेरिकी सैनिक सहायता भी इसी दौरान मिल चुकी थी, जिससे भारतीय सेनाओं ने लाभ उठाया और चीनी सेना के हरजाने के कारण सामरिक महत्त्व के क्षेत्र वालोंग, बोमडीला तथा मचुंका आदि पुनः प्राप्त कर लेने में सफल हो गई। इस प्रकार उत्तरी-पूर्वी सीमांत क्षेत्र का यह एक संक्षिप्त घटनाक्रम था।

लद्दाख क्षेत्र की कार्यवाही

उत्तरी-पूर्वी सीमांत की भाँति लद्दाख क्षेत्र में भी चीनी सैनिकों ने अपनी टेढ़ी
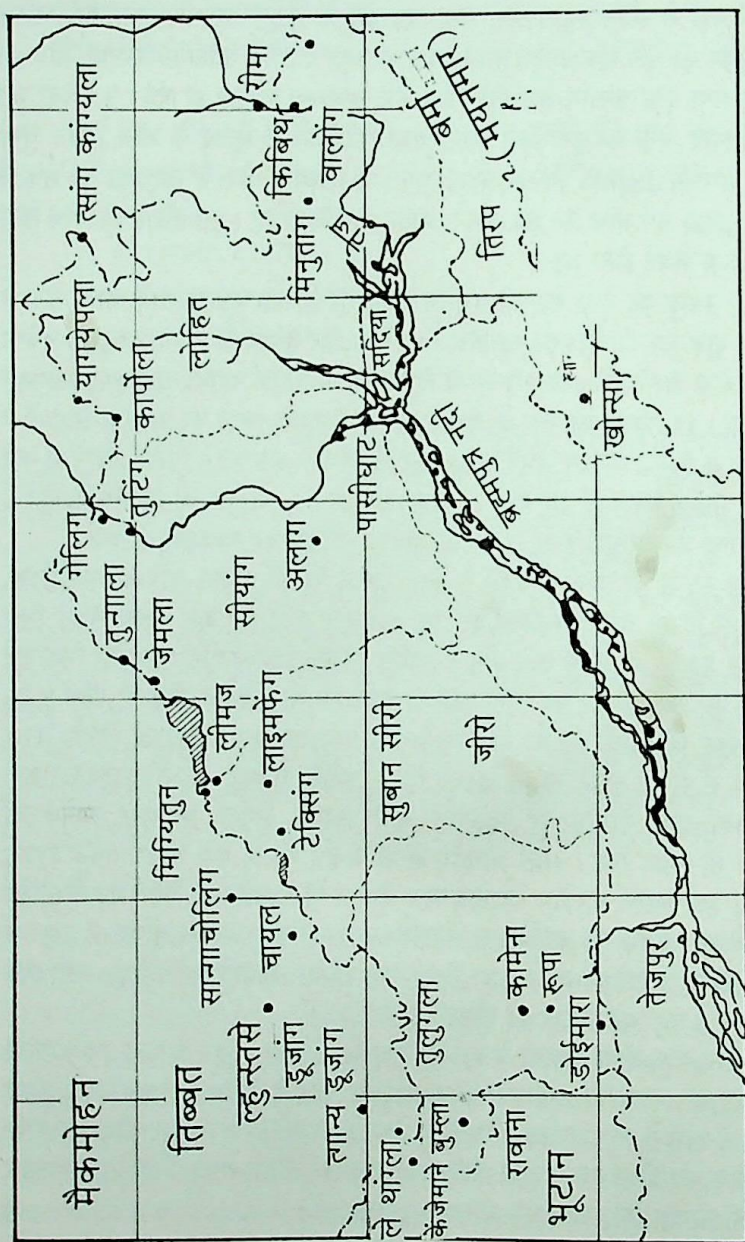
भारत-चीन युद्ध, 1962 का पूर्वी क्षेत्र

एवं शक्तिशाली चालें चलीं; किंतु दोनों क्षेत्रों की सामरिक कार्यवाही में परिवर्तन अवश्य था। क्योंकि उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र में चीन सैनिक दृष्टिकोण से महत्त्व के दर्रों को अधिकार में करने के लिए प्रयत्नशील था; जबकि भारतीय सेनाएँ अपने बचाव के लिए कार्यवाही कर रही थीं। चीन का लद्दाख के क्षेत्र में कार्यवाही का प्रथम चरण 20 अक्टूबर को कराकोरम दर्रे के अधिकार से शुरू हुआ। फिर चीन ने अक्साई चिन का क्षेत्र हथियाना आरंभ कर दिया। इस क्षेत्र में जहाँ भारतीय सैनिक अपने राष्ट्र की शान के लिए बलिदान दे रहे थे, वहाँ व्यवस्था एवं साधन के अभाव में उन्हें भीषण एवं भयानक आघात सहने पड़ रहे थे। बिना तैयारी एवं बिना साधन के हमारी सेना ने जो मुकाबला किया, वह सैन्य-इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। 27 अक्टूबर को चीनी सेना ने दमचोक चौकी पर अधिकार कर लिया। इस तरह अपना अधिकार अभियान चीन लगातार तेज करता जा रहा था। 5 नवंबर, 1962 तक चीन ने इस क्षेत्र के उन सभी महत्त्वपूर्ण ठिकानों पर अधिकार कर लिया; जिन्हें वह अपना मानकर दावा पेश कर रहा था। इस मोरचे में नायक रामकुमार यादव की भूमिका भी विशेष रूप से उल्लेखनीय रही थी। इस मोरचे में लगभग 120 भारतीय सैनिक शहीद हुए, जबकि उन्होंने 1,800 चीनी सैनिकों को अपना शिकार बनाया था। इस अभियान में तेरहवीं बटालियन कुमाऊँ रेजीमेंट ने अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया। मेजर शैतान सिंह तथा नायक रामकुमार यादव को सर्वोच्च वीरता पुरस्कार 'परमवीर चक्र' प्रदान करके सम्मान दिया गया।

इस प्रकार हिमालय के इस मोरचे पर चीन के लगातार प्रहार जारी रहे, जिसका मुकाबला भारतीय सेनाओं ने साधन एवं आपूर्ति के अभाव में करके विश्व को आश्चर्य में डाल दिया; परंतु चीन के लगातार आक्रमण एवं विशाल शक्ति संपन्न सैनिकों के आगे भारत आखिर मजबूर था। भारत ने अनेक देशों से सहायता का अनुरोध किया, परंतु उसे सहायता नहीं मिल सकी। सोवियत रूस के तत्कालीन प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव ने सहायता के समय कहा था कि "चीन हमारा भाई है तथा भारत हमारा मित्र है।" अतः रूस दोनों के विवाद में किसी को कोई सहायता नहीं दे सका। रूस ने युद्ध के पूर्व हुए मिग विमानों के सौदे को भी रोक लिया और भारत के विशेष अनुरोध पर ही समुद्र के रास्ते प्राप्त करने की इजाजत दी। केवल संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा उसके प्रभाव-क्षेत्र के कुछ पश्चिमी राष्ट्रों ने भारत की सहायता की। जिस समय अमेरिका का नौसैनिक बेड़ा हिंद महासागर में प्रवेश कर गया था तथा शस्त्रास्त्रों व आवश्यक सैनिक सामग्री की आपूर्ति भी आरंभ हो गई थी, उसी समय चीन ने बदलती हुई परिस्थितियों का अनुमान लगाकर 21 नवंबर, 1962 को युद्ध विराम की घोषणा कर दी और मैकमोहन रेखा के दक्षिण में 20 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र को असैनिक क्षेत्र घोषित करके अपनी सेनाएँ वापस बुला लीं। लद्दाख के क्षेत्र में उसने अक्साई चिन के अतिरिक्त चुशूल हवाई अड्डे के निकट तक का बलात् अधिकृत इलाका अपने अधीन रखा। उसने इस क्षेत्र तथा भारतीय क्षेत्र के बीच 20 किलोमीटर चौड़ी पट्टी को असैनिक क्षेत्र

घोषित कर दिया। इस प्रकार भारत का लद्दाख में लगभग 14,000 वर्ग मील क्षेत्र पूर्व रूपेण उसके सैनिक अधिकार में चला गया। इस क्षेत्र में चीन अभी और आगे बढ़ना चाहता था, परंतु भारतीय शौर्य-पराक्रम ने उसके लगाम लगा दी थी। चीनियों की युद्ध सफलता एवं आकस्मिक एकपक्षीय युद्ध विराम एक विस्मयकारी घटना थी। इसके पीछे निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कारण छिपे थे—

1. चीन अपने महत्त्व के ठिकानों पर पूर्ण अधिकार तथा भारत की पराजय का स्थायी लाभ उठाना चाहता था।

2. जहाँ चीन को सैनिक सफलता प्राप्त हुई थी, वहाँ नागरिक विफलता के रूप में भारत से कम्यूनिस्ट पार्टी का नाम सदा के लिए मिटने से उसे बचाना था।

3. अमेरिका द्वारा कम्यूनिस्ट के बढ़ते कदम को अंकुश लगाने के लिए आगे आ जाना था, क्योंकि चीन अमेरिका के सामने नहीं टिक पाता और बदनाम हो जाता।

4. विश्व के अधिकांश देश चीन की इस कार्यवाही का खुलकर विरोध एवं भर्त्सना कर रहे थे। पश्चिमी राष्ट्र—ब्रिटेन एवं अमेरिका तो तत्काल सैनिक सहायता देकर भारत की ओर से जुटने लगे थे।

5. दिसंबर में अधिक सर्दी के कारण हिमालय के दर्रे बंद होने लगते हैं, जो लगातार चार महीने तक नहीं खुल पाते। इससे चीन की सेना भारतीय सीमा में फँस सकती थी।

6. भारतीय एकता एवं अखंडता के कारण चीन को अपनी योजना विफल होती दिखाई दी, क्योंकि कम्यूनिस्ट पार्टी के भारतीयों ने भी चीन की इस कार्यवाही का विरोध किया, जिसकी उसे तनिक भी आशा नहीं थी।

7. नेफा तथा लद्दाख के महत्त्वपूर्ण सामरिक दर्रों पर अधिकार हो जाने पर भारत के ऊपर सैनिक दबाव डालने का रास्ता खुल गया और भारत की प्रतिष्ठा भी संसार के देशों में गिर गई थी।

8. क्यूबा का अंतरराष्ट्रीय संकट समाप्त हो जाने के कारण दोनों महाशक्तियों का ध्यान चीन की समस्या में लग गया था।

9. अपनी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा को भविष्य में धूमिल होने से बचाने का यह अच्छा अवसर समझा।

10. सोवियत संघ से उसको जो आशाएँ थीं, वे भी तब तक संदेह के घेरे में आ गई थीं।

जब चीन ने युद्ध विराम की घोषणा की तो श्रीलंका, कंबोडिया, बर्मा (अब म्यांमार), इंडोनेशिया, मिस्र व घाना आदि देशों ने संयुक्त रूप से भारत एवं चीन के मध्य वार्त्ता हेतु छः सूत्रीय सुझाव प्रस्तुत किए। इस सम्मेलन की अध्यक्षता श्रीलंका की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके द्वारा की गई तथा 10 व 11 दिसंबर, 1962 को यह सम्मेलन संपन्न हुआ। इसे कोलंबो सम्मेलन के रूप में संबोधित किया गया। इस कोलंबो प्रस्ताव का प्रकाशन 19 जनवरी, 1963 को किया गया, जो इस प्रकार था—

1. भारत-चीन विवाद को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने के लिए वर्तमान समय सबसे उपयुक्त है।
2. चीन से भारत की सीमा के पश्चिमी क्षेत्रों में अपनी सैनिक चौकियों को 20 कि.मी. और पीछे हटा लेने की अपील की गई, जैसाकि चीन के प्रधानमंत्री ने प्रस्तावित किया।
3. प्रस्ताव में भारत से यह अपील की गई कि वह वर्तमान सैनिक स्थिति को बनाए रखे।
4. उत्तरी-पूर्वी सीमांत क्षेत्र (नेफा) में दोनों राष्ट्रों द्वारा मान्य वास्तविक नियंत्रण रेखा पर युद्ध विराम रेखा मानी जा सकती है।
5. मध्यवर्ती क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान सैनिक साधनों के बजाय शांति प्रयासों के आधार पर किया जाए।
6. युद्ध विराम की स्थिति में दोनों देशों के मध्य वार्त्ता के लिए एक नवीन मार्ग प्रशस्त होगा।
7. यह प्रस्ताव युद्ध विराम की स्थिति को दृढ़ करने में अत्यंत सहायक सिद्ध होगा।

परिणाम

इस प्रसिद्ध संग्राम में हमारी सेना की इस पराजय से संसार के सभी राष्ट्रों को बहुत विस्मय हुआ, जिसके परिणामस्वरूप भारत की प्रतिष्ठा प्रभावित हुई। भारत में इस पराजय हेतु उत्तरदायी कारणों का पता लगाने के लिए लेफ्टीनेंट जनरल हेण्डरसन ब्रुक की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई, जिसका सारांश भारतीय संसद् में प्रस्तुत किया गया; जो अत्यंत शिक्षाप्रद व रोमांचकारी है। उसमें भारतीय सेना की पराजय के लिए निम्नलिखित प्रमुख कारण वर्णित किए गए थे—

1. भारतीय सेना को इस बात का अनुमान नहीं था कि बर्फ से ढकी ऊँची पर्वत शृंखलाओं में भी युद्ध लड़ना पड़ सकता है। राजनीतिक नेतृत्व का कर्तव्य था कि वह सेना को उत्तर की ओर से चीन के इस बढ़ते हुए खतरे से अवगत कराता रहता और सेना को मानसिक रूप से तैयार रखता।

2. भारतीय सेना के पास ऊँचे एवं बर्फीले क्षेत्र में लड़ने के लिए उपयुक्त साधन, शस्त्रास्त्र एवं संचार व्यवस्था नहीं थी। चीन को तिब्बत की ओर से चढ़ने में केवल 1 या 2 हजार फीट की चढ़ाई चढ़नी पड़ती है, जबकि उत्तर भारत के मैदानों से इसकी चढ़ाई 12 हजार फीट तक चढ़नी पड़ती है, जिससे हमारे सैनिक शारीरिक रूप से अधिक थकावट अनुभव करते थे।

3. भारतीय जासूसी-व्यवस्था कमजोर थी। इसी कारण उन्हें चीन की सैनिक गतिविधियों का सही अनुमान ही नहीं था।

4. भारतीय नेतृत्व में कुशलता का अभाव था, जिसके कारण हमारे सैनिक भी

सही प्रदर्शन नहीं कर पाए और संकट की घड़ियों में हमारे सैनिकों को सही लक्ष्य नहीं निर्देशित किया जा सका।

5. सेना में नियमों का पूर्णरूप से उल्लंघन किया गया। स्थानीय सेनानायकों के ऊपर रणनीति संबंधी निर्णय और आदेश भी सीधे रक्षा मंत्रालय द्वारा भेजे जाते रहे। इस युद्ध में अनेक भारतीय सैनिक शहीद हो गए; परंतु यह आश्चर्य है कि चीन का एक भी सैनिक बंदी नहीं बनाया गया। हमारे लगभग 2 ब्रिगेड सैनिक शहीद हुए थे। तत्कालीन रक्षामंत्री श्री वाई.बी. चव्हाण ने 1963 में इस पराजय के संदर्भ में कहा था, "हमारी असफलताओं में प्रशिक्षण, हथियार, कमांड प्रणाली, सैनिकों की शारीरिक अस्वस्थता तथा सेनानायकों में सैनिकों को प्रभावित करनेवाली कला का अभाव—यही पाँच कारण हैं।" इस युद्ध ने भारत को भविष्य के लिए अवश्य ही सचेत कर दिया। इसी कारण अब उसे सुरक्षा-व्यवस्थाओं पर विशेष ध्यान देना पड़ा। इस युद्ध के परिणामस्वरूप जहाँ भारत को लगभग 12,500 वर्ग मील भू-क्षेत्र से वंचित होना पड़ा, वहाँ अंतरराष्ट्रीय देशों में इसकी साख को भारी धक्का लगा।

सैन्य शिक्षाएँ

भारत एवं चीन के मध्य लड़े गए इस युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. इस युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया कि युद्ध में सफलता एवं असफलता बहुत हद तक गुप्तचर-व्यवस्था पर निर्भर करती है। इस युद्ध में भारत की पराजय का प्रमुख कारण कुशल गुप्तचर-व्यवस्था का अभाव था, परंतु चीन के पास भारत की हर हरकत की सूचना चीन की गुप्तचर-व्यवस्था द्वारा उसके अधिकारियों को दी जा रही थी। वही उसकी सफलता का प्रमुख एवं ठोस आधार था।
2. जो पक्ष अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति सदैव सामरिक दृष्टि से जागरूक रहता है उसे युद्ध में विफलता नहीं देखनी पड़ती और जो दूसरे की कमजोरी का समय से लाभ उठाता है उसे सफलता भी प्राप्त होती है। जैसे भारत विफल हुआ तथा चीन को अप्रत्याशित सफलता मिली।
3. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि युद्धक्षेत्र में आपूर्ति-व्यवस्था की विशेष भूमिका होती है। इसके द्वारा ही सफलता संभव है। भारतीय सेना यातायात एवं संचार-व्यवस्था के अभाव के कारण ही सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित नहीं थी, जिससे उसे पराजित होना पड़ा।
4. सेनाओं का अपनी सीमाओं एवं सीमांत क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति के अनुरूप तैयार रहना अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में पराजय के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं; जैसे इस युद्ध में भारतीय सैनिक ऊँचे एवं बर्फीले क्षेत्र में कुशलतापूर्वक कार्यवाही करने में सक्षम नहीं थे, क्योंकि उन्हें

इस प्रकार की भूमि में लड़ने का प्रशिक्षण नहीं प्राप्त था।

5. युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि समय के साथ श्रेष्ठ हथियारों से अपनी सेना की सज्जित किया जाना चाहिए। जैसे इस संग्राम में चीन की सेना के पास स्वचालित राइफल तथा अन्य हथियार थे, जबकि भारत के पास वही पुरानी अर्द्ध-स्वचालित '303' राइफल ही थी।
6. सेनाओं का श्रेष्ठ नियंत्रण एवं निर्देशन भी सफलता के लिए सच्चा सहयोगी सिद्ध होता है, इसके अभाव में पराजय के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं; जैसे इस संग्राम में भारतीय सेनानायक भ्रमित एवं अनिश्चितता के घेरे में घिरे हुए थे, जिसका लाभ चीनी सेनाओं को प्राप्त हुआ।
7. सेनाओं का आपसी सहयोग सफलता का प्रमुख आधार होता है; जैसे इस युद्ध में चीन की सशक्त सेना को आपसी सहयोग प्राप्त था, जिसके कारण बड़ी आसानी के साथ भारतीय चौकियों पर उन्होंने कब्जा कर लिया था तथा थोड़े समय में ही लंबी सीमा तक अपना अधिकार जमा लिया था।
8. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि सीमांत क्षेत्रों की देखरेख तथा यातायात व संचार-व्यवस्था उचित प्रकार की होनी चाहिए, अन्यथा कभी भी विरोधी पक्ष इसका लाभ उठा सकता है, जैसे चीन ने इसका पूरा लाभ उठाया और उसने अपने सीमांत क्षेत्र में यातायात व संचार-व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया था।
9. युद्धक्षेत्र में शस्त्रास्त्रों एवं समरतंत्र का प्रयोग वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है, अर्थात् युद्धक्षेत्र में सैनिक कार्यवाही करने से पूर्व संबंधित क्षेत्र की समस्त जानकारी सेनानायक को अवश्य ही होनी चाहिए; ताकि वह उसी के अनुरूप अपनी सेना को तैयार कर सके। इसके अभाव में असफलता मिलती है; जैसाकि भारतीय सेना के साथ हुआ।
10. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि युद्ध में नैतिक सिद्धांतों का कोई महत्त्व नहीं होता है, बल्कि कूटनीतिक सिद्धांत ही सदैव सफलता को सुनिश्चित करते हैं। चीन 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' नारे की आड़ में अपनी कूट चालों को चलकर सफल रहा; जबकि भारत नैतिकता के सिद्धांतों के आधार पर विफल हुआ।
11. युद्ध में किसी भी क्षेत्र को अजेय एवं अप्रत्याशित नहीं समझना चाहिए, जैसाकि भारतीय हिमालय की इस ऊँची पर्वत शृंखला को अजेय मानकर सुरक्षा के प्रति उदासीन रहे, ज़बकि चीन ने नियोजित कार्यवाही करके ऐतिहासिक सफलता ही नहीं प्राप्त की, बल्कि भारत का लंबा भू-भाग अपने अधीन कर लिया।
12. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि किसी राष्ट्र की आर्थिक व प्रशासनिक व्यवस्था तभी श्रेष्ठ प्रमाणित हो सकती है जब वह सैनिक शक्ति के रूप में भी सुदृढ़ एवं आधुनिक व्यवस्थाओं से संपन्न हो; जैसाकि उस समय चीन था।

भारत-पाक युद्ध
(1965 ई.)

पाकिस्तान का जन्म ही भारत-विरोध के साथ हुआ था। इसी कारण वह सदैव भारत पर अपनी नापाक निगाहें लगाता रहा है। जिस समय भारत चीन के आक्रमण से घायल था, उस समय पाकिस्तान ने अपना आक्रमण करके अवसर का लाभ उठाना चाहा था, क्योंकि 1947-48 के संग्राम में अपनी अपमानजनक हार का बदला लेने के लिए वह समय की ताक में बैठा था। कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधीन होने के बावजूद शीतयुद्ध जारी रखते हुए पाकिस्तान ने अपनी सैनिक शक्ति को लगातार बढ़ाए रखा था। इसके लिए उसे यही सही समय लगा। उसे इस बात का अँदेशा था कि भारत चीन से युद्ध (1962) के बाद से टूट चुका है।

इस ऐतिहासिक युद्ध के पीछे कतिपय महत्त्वपूर्ण कारण थे, जिसके फलस्वरूप युद्ध का आरंभ हुआ था—

1. कश्मीर विवाद के कारण लगातार शीतयुद्ध चल रहा था। पाकिस्तान को इसका कोई हल नजर नहीं आ रहा था, क्योंकि 1963 में इस समस्या के समाधान के लिए दोनों देशों के मंत्रियों की छः बार बैठक हुई; परंतु पाकिस्तान की जिद के कारण कोई समझौता नहीं हो सका।
2. चीन के साथ पाकिस्तान ने जहाँ दोस्ती का हाथ बढ़ाकर तथा सीमा-संधि करके कश्मीर क्षेत्र की हजारों वर्ग मील भूमि दोस्ती के नाम पर दान कर दी वहाँ शत्रु के शत्रु को परम मित्र बनाने की कार्यवाही में भी सफलता प्राप्त कर ली थी।
3. सैनिक दृष्टि से पाकिस्तान अपने को इतना शक्तिशाली बनाना चाहता था कि भारत किसी भी परिस्थिति में इसका मुकाबला न कर सके। इसी कारण वह भारत के विरुद्ध पश्चिमी राष्ट्रों, विशेषकर अमेरिका, का समर्थन प्राप्त करने में जुटा था।
4. 1962 के संग्राम से भारत ने अपनी सुरक्षा तैयारियों पर ध्यान देना शुरू कर दिया, जिसके कारण पाकिस्तान को बेचैनी शुरू हो गई थी। उसने इस तैयारी के पूर्व ही अपने नापाक इरादों को युद्ध के रूप में भारत पर थोपना चाहा।
5. तिब्बत के मामले को लेकर चीन ने भारत के विरुद्ध पाकिस्तान को

भड़काना आरंभ कर दिया था, ताकि भारत इसके बजाय पाकिस्तान में उलझा रहे और चीन द्वारा अधिकृत क्षेत्रों से अपना ध्यान हटा ले।

6. पाकिस्तान की आशंका बढ़ रही थी कि कहीं भारत कश्मीर को अपने प्रभारी कदमों द्वारा आकस्मिक एवं एकपक्षीय समाधान न तय कर ले।
7. पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल अयूब खाँ के प्रति वहाँ की जनता का विश्वास उठ गया था, अतः जनता का ध्यान इस ओर से हटाने के लिए भारत के विरुद्ध युद्ध करना ही उन्हें एकमात्र विकल्प दिखाई दे रहा था, ताकि पाकिस्तानी जनता का ध्यान भारत के विरुद्ध केंद्रित हो जाए।
8. पाकिस्तान ने कच्छ को लेकर एक नया सीमा-विवाद खड़ा कर दिया, ताकि इसकी आड़ में कश्मीर पर सरलता से आक्रमण किया जा सके।

पाकिस्तान ने उपर्युक्त कारणों से अपनी कूटनीतिक एवं सैनिक गतिविधियों को भारत के विरुद्ध तेज कर दिया। सबसे पहले उसने भारत के विरुद्ध असम व नागालैंड के विद्रोही नागाओं को सैनिक सहायता प्रदान करके कार्यवाही की, परंतु इसमें वह सफल नहीं हो सका। इसके साथ ही सीमा पर लगातार छेड़छाड़ भी जारी रखे रहा। मई तथा दिसंबर 1963 में असम सीमा पर पाकिस्तानी सेना ने जोरदार हमले किए, किंतु इसमें भी वह नाकामयाब रही। जुलाई 1964 में कश्मीर के टिथवाल क्षेत्र में सीमारेखा के आगे पाकिस्तानी सेना बढ़ आई, परंतु इसमें भी उनकी योजना विफल ही हुई। अब पाकिस्तान ने भारत की सीमा में असम, गुजरात तथा राजस्थान की ओर अपने सैनिकों का जमाव शुरू कर दिया और लगातार छिटपुट घटनाएँ करते रहे; ताकि जिधर भी भारत की स्थिति कमजोर दिखाई दे, उधर ही भरपूर आक्रमण कर दे।

कच्छ की कार्यवाही

9 अप्रैल, 1965 को पाकिस्तान के इक्यावनवें ब्रिगेड ने अपनी तोपों, बख्तरबंद गाड़ियों एवं टैंकों सहित कच्छ की सीमा पर जोरदार हमला कर दिया, जिससे सीमा पर तैनात भारतीय पुलिस दल को सरदार पोस्ट के पीछे विजयकोट तक हटना पड़ा। 10 अप्रैल को भारत ने अपनी सेना लगाकर इसका करारा जवाब देना शुरू कर दिया। दूसरी ओर युद्ध विराम वार्त्ता का सिलसिला शुरू हो गया। 11 अप्रैल को पाकिस्तानी सेना के 34 सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा 4 को बंदी बना लिया गया। इसके जवाब में भारत के 3 जवान मारे गए, 3 बंदी बनाए गए तथा 4 सैनिक लापता रहे। 12 अप्रैल को भारत ने पाकिस्तान की इस आक्रामक कार्यवाही के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रस्ताव रखा तथा 15 अप्रैल, 1965 को भारत ने पाक के युद्ध विराम प्रस्ताव को मान लिया। 20 अप्रैल, 1965 को पाकिस्तान ने पुनः कच्छ-सिंध सीमा पर नया मोरचा कायम करके अपनी सैनिक कार्यवाही शुरू कर दी तथा 24 अप्रैल को भारतीय सीमा में 30 मील अंदर तक पाकिस्तानी सेना प्रवेश कर गई और सरदार चौकी,
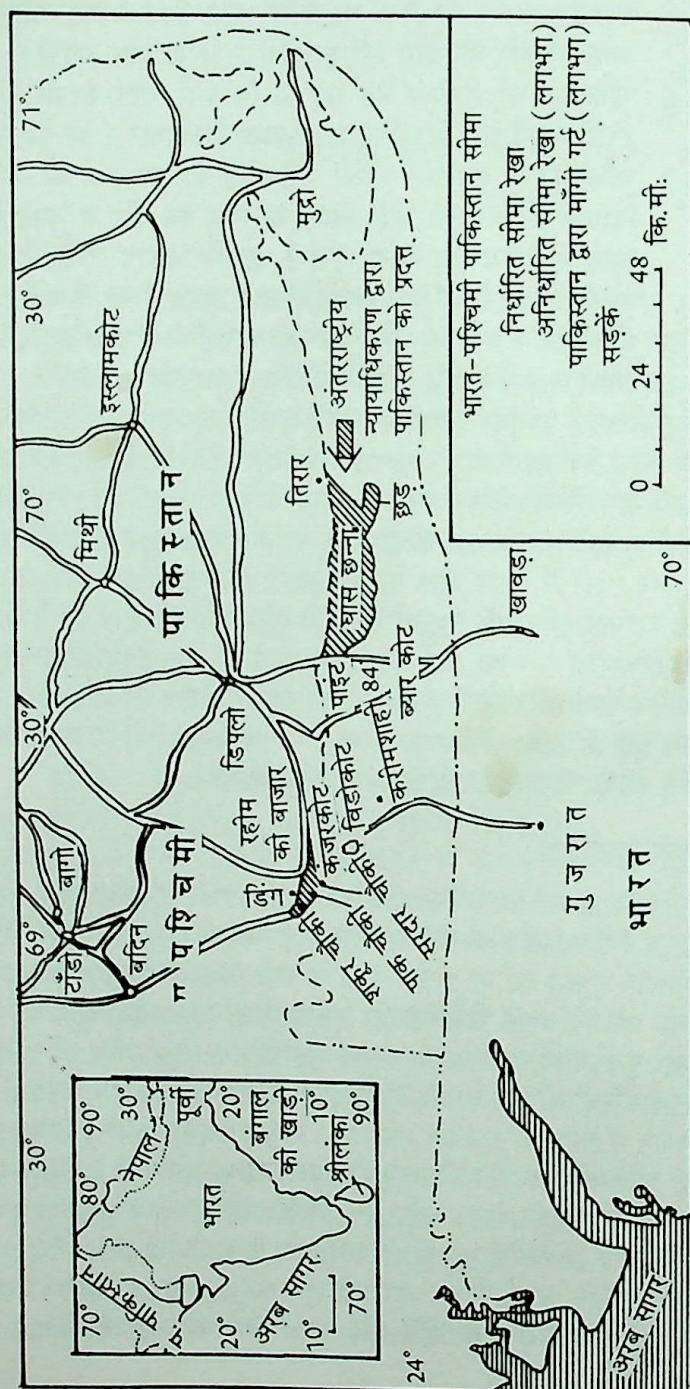
1965 का भारत-पाक युद्ध

बीमोबेट, छटबेट तथा कंजरबेट आदि स्थानों पर टैंकों तथा मॉर्टरों से हमला कर दिया। इसके परिणामस्वरूप बायरबेट चौकी पर पाकिस्तान का अधिकार हो गया। इस कार्यवाही में पाकिस्तान के 140 सैनिक मारे गए तथा 10 टैंक नष्ट कर दिए गए; जबकि भारत के 10 सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार पाकिस्तान का कच्छ के क्षेत्र में लगातार रुक-रुककर आक्रमण अभियान जारी रहा और भारत उनको लगातार विफल करता रहा।

अंत में 30 जून, 1965 को भारत-पाक के मध्य युद्ध विराम समझौता ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता में हुआ, जिसके अंतर्गत विवादास्पद कच्छ के क्षेत्र को तीन सदस्यीय अंतरराष्ट्रीय न्यायमंडल को सौंप दिया गया। इस युद्ध विराम के पीछे पाकिस्तान की एक कूटनीतिक चाल थी। भारत का ध्यान कच्छ क्षेत्र में केंद्रित करके अपने कुशल छापामार एवं युद्ध-प्रवीण सैनिक मुजाहिद के रूप में भेजकर कश्मीर को अचानक अपने अधिकार में करना चाहता था। इस समझौते की आड़ से जहाँ भारत बेखबर हो गया, वहाँ पाकिस्तान ने अपनी सैनिक तैयारियों में गुप्त रूप से तेजी शुरू कर दी। धर्म एवं जाति के नाम पर कश्मीर में भारत-विरोधी अभियान शुरू करके वहाँ की जनता को गुमराह करना शुरू कर दिया और जब यह अनुभव किया कि कश्मीर की जनता का भरपूर सहयोग अब मिल सकता है तो इस क्षेत्र में अपने पूर्व प्रशिक्षित तथा शस्त्र-सज्जित मुजाहिदों को कश्मीर के क्षेत्र में कार्यवाही हेतु उतार दिया।

कश्मीर की कार्यवाही

5 अगस्त, 1965 को जब तक कच्छ समझौते की स्याही सूखी भी नहीं थी, पाकिस्तान ने अपनी कूटनीतिक एवं सैनिक कार्यवाही कश्मीर के क्षेत्र में शुरू कर दी और सादे वेश में घुसपैठियों को प्रविष्ट कराना आरंभ कर दिया, जिनकी संख्या लगभग 8,000 थी। इन घुसपैठियों ने कश्मीर में अपने लूटमार तथा मस्तिष्क परिवर्तन की कार्यवाही बहुत तेज कर दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि लगातार तोड़-फोड़, आगजनी, दंगे तथा लूटपाट की घटनाओं से पाकिस्तान ने कश्मीर के प्रशासन को नष्ट करने में कामयाबी प्राप्त कर ली। इसके साथ ही पाकिस्तान यह घोषणा करता रहा कि इन कार्यवाहियों में पाकिस्तानी सेनाओं का कतई हाथ नहीं है। 10 अगस्त, 1965 को तत्कालीन विदेशमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने रावलपिंडी में कहा, "कश्मीर में जो कुछ हो रहा है इसकी जिम्मेदारी किसी भी तरह पाकिस्तान पर नहीं थोपी जा सकती।" जबकि छापामारों के लिए विशेष प्रशिक्षण मुख्यालय बनाया गया था, जिसमें 30,000 सैनिकों का सैन्य दल चीनी सैन्य अधिकारियों द्वारा छापामार युद्ध का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुका था। इस सैन्य दल का नाम 'जिब्राल्टर फोर्स' रखा गया था। इसमें चुने गए सैनिक, नियमित पाकिस्तानी सेना, आजाद कश्मीर मिलिशिया, फ्रंटियर स्काउट_रजाकार तथा मुजाहिदों के साथ जुड़े हुए थे।

जिस समय पाकिस्तान के इस जिब्राल्टर फोर्स ने कश्मीर के शासन को उखाड़ना शुरू किया, तब यह अफवाह फैलाई गई कि कश्मीर के लोगों ने भारत के विरुद्ध विद्रोह

शुरू किया है। यह पाकिस्तान की कूटनीतिक चाल थी कि विद्रोह के नाम पर अपना उद्देश्य पूरा कर सके। किंतु भारतीय सेना का अपना परंपरागत एवं गौरवशाली इतिहास रहा है। इस बात की शायद उनको परवाह नहीं थी। भारतीय सेना ने इन घुसपैठियों का मुकाबला शुरू कर दिया। जब घुसपैठिए अपनी योजना में सफल नहीं हुए तो उन्होंने कश्मीर की संपत्ति को जलाना तथा उजाड़ना शुरू कर दिया। उनकी इस घृणित कार्यवाही से निबटने के लिए तत्कालीन भारतीय थलसेनाध्यक्ष जनरल जे.एन. चौधरी ने युद्ध विराम रेखा के उस पार कारगिल क्षेत्र में कार्यवाही करने की योजना बनाई; ताकि शत्रु को आपूर्ति एवं प्रमुख मार्ग पर ही रोका जा सके। इधर पाकिस्तान ने 25 अगस्त को युद्ध की घोषणा कर दी, क्योंकि भारतीय सेना की कार्यवाही से उसके घिर जाने के अवसर पैदा हो गए थे। पाकिस्तान ने यह भी कहा कि वह अपनी सुविधा पर जवाबी हमला करेगा।

26 अगस्त, 1965 को पाकिस्तान ने पुंछ तथा उरी क्षेत्र में भयंकर गोलाबारी आरंभ कर दी; परंतु भारतीय सेना ने इस क्षेत्र से पाकिस्तान के प्रवेश पर अंकुश लगा दिया तथा युद्ध विराम रेखा को पार करके 'हाजी पीर' तथा 'पीर साहिब' दर्रों पर अपना अधिकार जमा लिया। साथ-ही-साथ 'वेदर' संख्य तथा सार नामक पहाड़ियों को भी अपने कब्जे में ले लिया। 27 अगस्त को पाकिस्तानी सेना भी 2 मील अंदर भारतीय सीमा में प्रवेश कर गई। कजलवान क्षेत्र में जमकर संघर्ष के बाद उसे पुनः पीछे ढकेल दिया गया, जिसमें पाकिस्तानी सेना के 978 सैनिक मारे गए तथा 101 बंदी बना लिये गए। जिस समय 'हाजी पीर' दर्रे में भारतीय झंडे को लहराते हुए पाकिस्तानी सेना ने देखा तो वह बौखला गई। उसे अपने इरादे विफल होते दिखाई देने लगे। इस मोरचे पर असफल पाकिस्तान ने अब पूरे जोर-शोर के साथ छंब के क्षेत्र में कार्यवाही कर दी।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस युद्ध में पाकिस्तान की सेना तो सीमित संख्या में थी, परंतु भारतीय सेना की तुलना में उसके पास शस्त्रास्त्र एवं अन्य आवश्यक युद्ध सामग्री कहीं अधिक थी। साथ ही पश्चिमी राष्ट्रों एवं अमेरिका द्वारा विशेष रूप से अत्याधुनिक हथियार पाकिस्तान की शक्ति एवं उत्साह में वृद्धि कर रहे थे। पाकिस्तान की थलसेना में लगभग 2,50,000 सैनिक थे, जिनमें 8 नियमित डिवीजन भी संगठित थे। अनियमित दस्तों की भी बड़ी संख्या थी। संक्षेप में सेना एवं शस्त्रास्त्र इस प्रकार थे—

थलसेना की संख्या—2,50,000,
पैटन टैंक (अमेरिकी)—800,
लड़ाकू विमान (अमेरिकी, ब्रिटिश)—800,
एक नौसेना का दस्ता भी था।

भारतीय सेना सैनिक संख्या में पाकिस्तान से अधिक थी, परंतु उसके पास श्रेष्ठ

हथियारों का अभाव अवश्य था। उसके पास थल, वायु तथा नौशक्ति संक्षेप में इस प्रकार थी—

कुल थलसेना—8,00,000,
कुल डिवीजन—16 (जिसमें 9 डिवीजन पर्वतीय सेना),
कवचित गाड़ियाँ—1,000,
तोपों की संख्या—2,500,
लड़ाकू व अन्य विमान—900 (जिसमें 550 लड़ाकू विमान)।
एक छोटी-सी नौसैनिक टुकड़ी भी थी।

यद्यपि भारतीय सेना सैन्य-शक्ति में पाकिस्तान से तीन गुनी अधिक थी, परंतु चीन के पाकिस्तान के साथ बढ़ते हुए संबंधों को देखते हुए भारत को अपनी सेना का एक बड़ा भाग चीन की ओर भी सुरक्षा की दृष्टि से तैनात रखना पड़ा था।

वास्तविक संघर्ष

छंब क्षेत्र की कार्यवाही—इस क्षेत्र की कार्यवाही के साथ ही 1 सितंबर, 1965 को इस युद्ध का वास्तविक संघर्ष शुरू हुआ। जब पाकिस्तान ने अपनी सशस्त्र सैन्य क्रिया 'ऑपरेशन ग्रांड स्लैम' के गुप्त नाम से की थी। पाकिस्तान ने अपने टैंक तथा भारी तोपखाने द्वारा छंब के क्षेत्र में आकस्मिक एवं जोरदार आक्रमण किए, जिसके परिणामस्वरूप उसको आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई। ये आक्रमण तीन चरणों में किए गए; प्रथम—झंगड़ में गोलाबारी तथा छंब के पास बुरजेल पर जोरदार आक्रमण; द्वितीय, मेलगाँव पर आक्रमण तथा तृतीय चरण में एक ब्रिगेड तथा दो टैंक रेजीमेंट सहित भिंबर क्षेत्र पर जोरदार हमला किया, जिससे अखनूर की स्थिति खतरे में पड़ गई। इसी दौरान पाकिस्तान के दो ब्रिगेड तथा एक कवचित दल स्यालकोट से जम्मू की ओर बढ़ने के इरादे से बड़ी तेजी के साथ कार्यवाही में जुट गया। भारत ने भी उसके जवाब के लिए अपनी कार्यवाही को तेज कर दिया तथा युद्ध के लिए अन्य मोरचे भी खोल दिए; क्योंकि छंब तथा जोरिया के क्षेत्र से पाकिस्तान को आपूर्ति-व्यवस्था तथा संपर्क सुविधा का विशेष लाभ प्राप्त था।

पाकिस्तानी सेना के इस जवाब के लिए छंब क्षेत्र में भारतीय छठी सिक्ख, लाइट इन्फैंट्री तथा पंद्रहवीं कुमाऊँ बटालियन को तैनात किया गया, जिन्होंने जोरदार कार्यवाही की। कश्मीर के क्षेत्र में भारतीय सेना की प्रथम तथा ग्यारहवीं कोर व छठे कवचित आदि को तैनात किया गया। इसके बावजूद पाकिस्तान की थलसेना का दबाव बढ़ता जा रहा था। अतः भारतीय वायुसेना ने जोरदार हवाई हमले आरंभ करके शत्रु को भीषण हानि पहुँचाई तथा 2 सितंबर, 1965 को शत्रु के 13 टैंक व 40 बख्तरबंद गाड़ियाँ नष्ट कर दीं। 3 सितंबर को भारतीय वायुसेना के नेट विमानों ने पाकिस्तान के आधुनिक सेवर जेट विमानों को धराशायी करके एक कीर्तिमान ही स्थापित नहीं किया, बल्कि

लोगों को सकते में डाल दिया। 4 सितंबर को पाकिस्तान ने जम्मू क्षेत्र में अपना अधिकार जमाने तथा भारतीय सेना की आपूर्ति-व्यवस्था को भंग करने के उद्देश्य से कार्यवाही आरंभ कर दी। 5 सितंबर को पाक ने एक नया मोरचा भी खोल दिया तथा भारत के अमृतसर, हलवारा हवाई अड्डों पर बमवर्षा शुरू कर दी; परंतु 6 सितंबर को भारतीय सेना ने लाहौर सेक्टर में घुसकर बागाह से डोगराई, खेमकरन से कसूर व खालरा से बरकी क्षेत्र में कार्यवाही शुरू कर दी, जिससे छंब तथा जोरिया क्षेत्र में पाकिस्तानी सेना का दबाव कम हो गया। पाकिस्तानी सेना की योजनाएँ विफल होने लगी थीं।

7 सितंबर, 1965 को भारतीय वायुयानों ने पाकिस्तान के रावलपिंडी स्थित चकलाला तथा सरगोधा हवाई अड्डों को भारी हानि पहुँचाई। इस दिन दोनों राष्ट्रों की वायुसेना के मध्य जोरदार संघर्ष हुआ, जिसमें पाकिस्तान के 18 तथा भारत के 9 वायुयान नष्ट हो गए। उस दिन थल एवं वायुसेनाओं के मध्य जोरदार युद्ध जारी रहा। पाकिस्तान के सभी श्रेष्ठ हथियार कामयाबी नहीं पा सके तो उसने खिसियाकर भारत के 2 व्यापारिक जलयानों को अपने अधीन कर लिया। तब भारत ने अगले दिन ही उसके 3 जलयानों को अपनी गिरफ्त में ले लिया। स्थल युद्ध पूर्वी पंजाब के खेमकरन के क्षेत्र पर पाकिस्तानी पैटन टैंकों ने धावा बोल दिया और भारत की चौथे इन्फैंट्री डिवीजन को अपनी चपेट में ले लिया, किंतु भारतीय सेना को स्यालकोट के क्षेत्र में प्रवेश पाने में सफलता प्राप्त हो गई।

8 सितंबर को भारतीय सेना ने जब पाकिस्तानी सेना का जमाव बाड़मेर (राजस्थान) की ओर देखा तो सिंध (हैदराबाद) की ओर अपना कूच कर दिया और सीमा के 5 मील अंदर तक प्रवेश कर गई तथा गदरा पर अधिकार जमा लिया। लाहौर सेक्टर में भी भीषण युद्ध जारी था, जिसमें भारतीय सेना ने पाकिस्तान के 3 टैंकों तथा अनेक बख्तरबंद गाड़ियों को नष्ट कर दिया। उसी दिन जम्मू तथा स्यालकोट के सेक्टर में भी भारतीय सेना को सैनिक सफलता प्राप्त हुई। वायुसेना की कार्यवाही में पाकिस्तान का सी-130 विमान नष्ट कर दिया गया। तब पाकिस्तान ने अपने अनेक छाताधारी सैनिक उतारने शुरू कर दिए। नौसेना के क्षेत्र में भी लगातार सैनिक कार्यवाही जारी थी; परंतु विशेष उपलब्धि किसी भी पक्ष को नहीं हो सकी थी।

9 सितंबर को भारतीय चौथे इन्फैंट्री डिवीजन की सहायता के लिए द्वितीय कवचित ब्रिगेड आया, जिसने पाकिस्तानी सेना के पैटन टैंकों का ऐतिहासिक मुकाबला किया। इसी में ग्रेनेडियर्स के कंपनी क्वार्टर मास्टर हवलदार वीर अब्दुल हमीद ने अपना करिश्मा दिखाया और अकेले ही साधारण तोप से पाकिस्तान के अनेक टैंकों को ध्वस्त कर दिया, जिससे पाकिस्तानी सेना में घबराहट फैल गई और खेमकरन का यह मोरचा भारत के अधिकार में आ गया। इस वीर सैनिक को मरणोपरांत 'परमवीर चक्र' से सम्मानित किया गया। खेमकरन को पाकिस्तानी पैटन टैंकों का कब्रिस्तान भी कहा जाता

है। हवाई युद्ध में जम्मू क्षेत्र में भारतीय वायुसेना के द्वारा पाकिस्तानी सेना के 3 सेवर जेट विमान नष्ट कर दिए गए तथा पाकिस्तान के सरगोधा हवाई अड्डे को भी उड़ा दिया गया। इसके विरुद्ध पाकिस्तान ने आदमपुर, बैरकपुर तथा हलवारा पर नाकामयाब आक्रमण किए। उसी दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्कालीन महासचिव ऊ-थांट यद्ध विराम हेतु कराची पहुँचे।

10 सितंबर को भारत-पाक के मध्य थलसेना का ऐतिहासिक टैंक-युद्ध हुआ। लाहौर, स्यालकोट तथा कसूर क्षेत्र के भयंकर युद्ध में पाकिस्तान के 46 टैंकों को ध्वस्त कर दिया गया। राजस्थान की सीमा में जैसलमेर तथा लौंगेवाला क्षेत्र में भी पाकिस्तानी थलसेना का जोरदार आक्रमण जारी रहा, जिसे भारतीय सेना ने बखूबी विफल कर दिया, यद्यपि इस अभियान में दोनों पक्षों को भारी हानि उठानी पड़ी। विमानभेदी तोपों के प्रहार से एक साथ ही 3 पाकिस्तानी जेट विमानों को मार गिराया गया। भारतीय वायुसेना ने इस आक्रमण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा अपना नभ प्रभुत्व स्थापित करके पाकिस्तान को भीषण नुकसान पहुँचाया। पाकिस्तान ने भी हवाई आक्रमण किए; परंतु सही निशानेबाजी के अभाव में वह कामयाब न हो सका। बागडोगरा हवाई अड्डे को हानि पहुँचाने तथा भारतीय वैंपायर लड़ाकू विमान को नष्ट करने में सफलता अवश्य प्राप्त हो गई।

11 सितंबर को भारतीय सेना ने कसूर से बागाह क्षेत्र में पाकिस्तान पर तीन ओर से आक्रमण किया, जिस पर दोनों पक्षों की थलसेनाओं के मध्य जोरदार युद्ध हुआ। इसमें पाकिस्तान के 29 टैंक नष्ट कर दिए गए तथा 19 टैंकों पर अधिकार कर लिया गया। पाकिस्तान का प्रथम डिवीजन इस आक्रमण से नष्ट हो गया, जिस पर पाकिस्तान फख्र करता था। साथ ही पाकिस्तान सरकार ने लाहौर से हटने की घोषणा भी कर दी। इससे इस क्षेत्र में भारतीय सेना का वर्चस्व स्थापित हो गया।

12 सितंबर, 1965 को बरकी के पास भारतीय सेना तथा पाकिस्तानी सेनाओं के मध्य जोरदार संघर्ष हुआ, जिसमें चौथी सिक्ख बटालियन ने अपना ऐतिहासिक शक्ति-प्रदर्शन किया, इसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान के 15 टैंकों पर अधिकार कर लिया तथा 40 टैंकों को नष्ट कर दिया गया। जम्मू के टिथवाल क्षेत्र में पाकिस्तानी सेना की नाकेबंदी कर दी तथा मीरपुर के प्रमुख पुल को नष्ट करते हुए मुजफ्फराबाद रेल मार्ग पर अपना अधिकार जमा लिया। साथ-ही-साथ भारतीय सेना उरी-पुंछ के सेक्टर में पाकिस्तान की कुछ चौकियों पर भी अपना अधिकार जमाने में सफल हो गई, हवाई आक्रमण भी जोरदार था, जिसमें पाक के एफ-बी-57 सेवर जेट विमान को भी नष्ट कर दिया गया। पाकिस्तान ने भी जवाब में अपना जोरदार हवाई हमला किया।

13 सितंबर को भी थलसेना का जोरदार आक्रमण हुआ। लाहौर व स्यालकोट सेक्टर के क्षेत्र में भारतीय सेना ने पाकिस्तान के 7 टैंकों को नष्ट करने में कामयाबी हासिल कर ली। अमृतसर में भारतीय सेना के विमानभेदी तोप (एंटी एयरक्राफ्ट गन) के

चालक सूबेदार राजू ने अनेक पाकिस्तानी वायुयानों को नष्ट करने में सफलता प्राप्त की। बदले की भावना से पाकिस्तानी वायुसेना ने भारतीय नागरिक ठिकानों को अपना शिकार बनाया तथा गुरदासपुर में एक मालगाड़ी को नष्ट कर दिया। अमृतसर, धारीवाल, जामनगर व जोधपुर में भीषण हवाई बमबारी की; परंतु कोई सफलता नहीं मिली, बल्कि उसका एक और जेट विमान मार गिराया गया। उस दिन भी उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिल पाई।

14 सितंबर को जहाँ भारतीय थलसेनाएँ अपने तीनों मोरचों पर डटी थीं, वहाँ भारतीय वायुसेना ने अपनी कुशलता एवं प्रहारक क्षमता का परिचय देते हुए पेशावर एवं लाहौर क्षेत्र के आकाश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था; जबकि पाकिस्तान की वायुसेना ने भारत के जोधपुर क्षेत्र पर अपना नाकामयाब हमला किया। वायुसेना की भाँति भारतीय नौसेना ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा अरब सागर में स्थित पाकिस्तान की प्रसिद्ध पनडुब्बी 'गाजी' पर अपना नियंत्रण रखा। उसने पाकिस्तान के सभी नापाक इरादों को पूरी तरह से विफल कर दिया। पाकिस्तानी पनडुब्बी 'गाजी' का सामना करने के लिए भारतीय जलपोत 'कुठार' को रखा गया था।

15 सितंबर को भारतीय थलसेना को जब लाहौर सेक्टर में सफलता मिल गई तो उसने इच्छोगिल नहर को भी पार कर लिया और पाकिस्तानी सेना पर अपनी निगरानी तेज कर दी थी। साथ-ही-साथ स्यालकोट के क्षेत्र में पसरूर रेलवे लाइन पर भी अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार सभी सैनिक कार्यवाहियों में पाकिस्तानी सेना लगातार पिटती रही। हवाई आक्रमण में भी शत्रु को भारी असफलता मिली; क्योंकि अनुभवहीन वायुयान चालकों को अपने लक्ष्य का सही अनुमान ही नहीं लग पाता था, जबकि भारतीय वायुसेना के लगभग सभी आक्रमण चुस्त एवं दुरुस्त रहे। इसी कारण सीमित साधनों से भी बड़ी कामयाबी हासिल कर ली।

16 सितंबर को युद्ध का सिलसिला अपने शीर्ष पर पहुँच रहा था; परंतु पाकिस्तान को अपनी पूर्व निर्धारित कूटयोजना विफल होती दिखाई दी तो उसने अपने मित्र चीन का सहयोग माँगा। चीन ने भारत को धमकी दी कि भारत द्वारा तिब्बत व सिक्किम सीमा पर तैनात किए गए सैनिक अड्डे उसके सीमा-क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं, भारत यथाशीघ्र हटा ले, अन्यथा उन्हें नष्ट कर दिया जाएगा। चीन की इस बंदरघुड़की से भारत पर कोई असर नहीं पड़ा। पाकिस्तान लगातार पिटता ही जा रहा था। उधर संयुक्त राष्ट्रसंघ युद्ध विराम के लिए प्रयत्नशील था। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव की दोनों राष्ट्रों की राजधानी में कोशिशें चलती ही जा रही थीं।

17 सितंबर को सिक्किम और लद्दाख के निकट चीन के साथ भी सैनिक झड़पें हो गईं, जिनमें चीनियों को करारा जवाब भी मिल गया था। स्यालकोट के क्षेत्र में भारत एवं पाक सेनाओं के मध्य जोरदार टैंक-युद्ध जारी था। भारतीय थलसेनाएँ खोखरापार की ओर बढ़ गईं और पाकिस्तान के गदरा नगर पर भी अपना अधिकार कर लिया।

वायुसेना के युद्ध में किसी भी पक्ष को कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।

18 सितंबर को पाकिस्तान ने निराश होकर नागरिक ठिकानों पर अपने हमले शुरू कर दिए और अंबाला शहर (हरियाणा) के ऊपर जोरदार हवाई हमले करके नागरिक एवं आर्थिक क्षति पहुँचाने का काम किया। उधर चीन की धमकी एवं छिटपुट लड़ाई के कारण अमेरिका एवं रूस ने अपनी चेतावनी देकर चीन को शांत कर दिया। पाक ने जम्मू क्षेत्र में भी सैनिक गतिविधियाँ तेज कर दी थीं।

19 सितंबर को भारतीय थलसेना ने पाकिस्तान के स्यालकोट-छपरार मार्ग को तोड़कर उसकी तीन प्रमुख सैनिक चौकियों को अपने अधिकार में ले लिया। पाकिस्तानी हवाई आक्रमण के कारण एक भारतीय विमान नष्ट हो गया, जिसके साथ गुजरात के मुख्यमंत्री भी इसमें मारे गए। इस प्रकार थल एवं वायु दोनों आक्रमणों में पाकिस्तानी सेनाएँ लगातार पिटती जा रही थीं।

20 सितंबर को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने भारत तथा पाकिस्तान से युद्ध विराम का अनुरोध किया तथा अपना युद्ध विराम प्रस्ताव पारित कर दिया। भारतीय थलसेना एवं वायुसेना का करामाती सैनिक क्रिया-कलाप जारी था। कच्छ तथा पुंछ के क्षेत्रों में भारतीय सेना अपना प्रभाव बढ़ाती जा रही थी। पाकिस्तान के बदीन हवाई अड्डे व राडार को अपने प्रहारों से भारतीय वायुसेना ने क्षतिग्रस्त कर दिया।

21 सितंबर को भारतीय थलसेना की तीसरी जाट बटालियन ने डोगराई पर अपना अधिकार जमा लिया। इसके साथ ही स्यालकोट के क्षेत्र में पाकिस्तान की छठी कवचित डिवीजन तथा भारतीय पहली कवचित डिवीजन के मध्य जमकर संघर्ष हुआ। इसी अभियान में लेफ्टीनेंट कर्नल ए.बी. तारापोर ने अपना बलिदान करके एक मिसाल कायम कर दी थी। पूना हार्स के लेफ्टीनेंट कर्नल ए.बी. तारापोर को मरणोपरांत 'परमवीर चक्र' से सम्मानित किया गया। हमारी सेना ने इच्छोगिल नहर पर भी अपना अधिकार जमा लिया।

22 सितंबर तक भारतीय सेनाओं ने पाकिस्तान के लगभग 150 वर्ग मील क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया था। भारत की इस सफलता से निराश पाकिस्तानी वायुसेना ने जोधपुर (राजस्थान) तथा अमृतसर (पंजाब) के नागरिक ठिकानों पर आक्रमण करके अपने नापाक इरादे प्रदर्शित कर दिए। पाकिस्तान के प्रतिनिधि के रूप में तत्कालीन विदेशमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने न्यूयार्क से युद्ध विराम को स्वीकार करने की घोषणा कर दी और 23 सितंबर को प्रातः 3.30 बजे से युद्ध विराम लागू हो गया।

23 सितंबर को जब युद्ध विराम समझौता लागू हो गया था, तब पाकिस्तान का लगभग 690 वर्ग मील का क्षेत्र भारत के अधीन हो गया था, जबकि पाकिस्तान ने भारत के लगभग 250 वर्ग मील क्षेत्र पर अपना कब्जा जमा लिया था। राजस्थान क्षेत्र की ओर भारत ने पाक की लगभग 630 चौकियों पर अपना अधिकार जमा लिया, जबकि

पाकिस्तान ने भारत की लगभग 230 चौकियों को अपनी गिरफ्त में ले लिया था।

इस प्रकार इस ऐतिहासिक युद्ध का समापन हो गया। इसके बावजूद पाकिस्तान ने अनेक बार शांति भंग करने की कोशिश की, जिससे पुनः युद्ध होने की संभावनाएँ बढ़ती दिखाई दीं। अतः सोवियत रूस ने पहल करके दोनों के मध्य 10 जनवरी, 1966 को प्रसिद्ध 'ताशकंद समझौता' संपन्न कराया और कुछ समय के लिए दोनों के मध्य शांति समझौता कायम रहा।

परिणाम

इस ऐतिहासिक संग्राम में दोनों राष्ट्रों को भारी आर्थिक एवं सैनिक संपदा की हानि उठानी पड़ी। केवल भारत को ही लगभग 52 करोड़ रुपए इस युद्ध में व्यय करने पड़े थे। संक्षेप में इस युद्ध में दोनों पक्षों को इस प्रकार हानि उठानी पड़ी थी—

	पाकिस्तान	भारत
सैनिक शहीद हुए	5,900	2,226
हताहत	आँकड़े प्राप्त नहीं	7,870
युद्धबंदी	450	1,000
टैंक नष्ट	475	123
वायुयान नष्ट	74	35

सैन्य शिक्षाएँ

इस ऐतिहासिक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि आक्रामक कार्यवाही अपनाकर शत्रु को अपनी इच्छानुसार लड़ाकर सफलता आसानी से प्राप्त की जा सकती है; जैसे भारत ने पाकिस्तानी कार्यवाही के विरुद्ध अनेक मोरचे खोलकर उसे अपनी इच्छानुसार लड़ने के लिए बाध्य कर दिया था और ऐतिहासिक सफलता पा ली।
2. इस युद्ध ने यह भी प्रमाणित कर दिया कि सफलता का आधार श्रेष्ठ हथियार ही नहीं होते, बल्कि कुशल प्रशिक्षण एवं तकनीकी योग्यता का भी विशेष महत्त्व होता है; जैसे भारतीय सेना से कहीं अधिक श्रेष्ठ पाकिस्तान के युद्ध साधन कुशल प्रशिक्षण तथा तकनीकी योग्यता के अभाव में नाकाम ही प्रमाणित हुए।
3. किसी भी युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए दोनों सेनाओं (थल एवं वायु) का सहयोग सक्रिय भूमिका निभाता है; जैसे भारत की दोनों सेनाओं

ने अपनी-अपनी भूमिकाओं को निभाते हुए सक्रिय सहयोग देकर समरतांत्रिक सफलता प्राप्त की।

4. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि सफलता का प्रमुख आधार सुरक्षा-व्यवस्था के साधनों में आत्मनिर्भर रहना है; जैसे भारत अपने साधनों पर पाकिस्तान की अपेक्षा अधिक आत्मनिर्भर था, इसी कारण लंबे समय तक शत्रु का बखूबी जवाब देता रहा, जबकि पाकिस्तान अपने मित्रों की बाट जोहता रहा।
5. इस युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया कि वायुसेना द्वारा नभ प्रभुत्व स्थापित करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इससे सैनिकों एवं नागरिकों पर मनोवैज्ञानिक दबाव डाला जा सकता है। इस युद्ध में भारतीय बमवर्षकों की बमबारी ने पाकिस्तान पर मनोवैज्ञानिक असर डाला और अपनी थलसेना को सक्रिय सहयोग भी प्रदान किया।
6. इस युद्ध ने यह सिद्ध कर दिया कि युद्धक्षेत्र में जितनीं तेजी के साथ कार्यवाही की जाए, सफलता के उतने ही अवसर बढ़ जाते हैं। जहाँ शत्रु विस्मय में आता है वहाँ तुरंत ही वह अपना नया मोरचा भी नहीं खोल पाता है; जैसे इस युद्ध में भारतीय सेना ने अपनी गतिशील कार्यवाही करके ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की।
7. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि सफलता का प्रमुख आधार श्रेष्ठ नेतृत्व और मनोबल है; जैसे भारतीय सैनिकों ने अपनी कुशलता एवं गौरवमयी परंपरा को बरकरार रखते हुए पाक के नापाक इरादों को क्षण-भर में ध्वस्त कर दिया।
8. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि युद्ध में श्रेष्ठ हथियारों से कहीं अधिक सैनिक एवं उसके मनोबल की शक्ति होती है; जैसे पाकिस्तान के श्रेष्ठ हथियारों की तुलना में भारतीय सेनाओं का मनोबल एवं कुशलता ने कहीं अधिक सफलता प्राप्त की।
9. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि किसी भी राष्ट्र के प्रति छापामार कार्यवाही के पूर्व वहाँ की स्थानीय जनता के सहयोग के बिना सफलता नहीं मिल सकती; जैसे इस युद्ध में पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी।
10. किसी भी युद्ध में सफलता का आधार उस राष्ट्र की सेनाएँ एवं उसकी आत्मनिर्भरता होती है; जैसे अपनी सेनाओं एवं उसकी आत्मनिर्भरता के बल पर ही भारत को ऐतिहासिक विजय प्राप्त हुई।

भारत-पाक युद्ध
(1971 ई.)

3 दिसंबर से 17 दिसंबर, 1971 तक लड़े जानेवाले 14 दिनों के भारत-पाक युद्ध की पृष्ठभूमि को समझने के लिए यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान का अस्तित्व दो ऐसे भू-क्षेत्रों के रूप में था, जो एक-दूसरे से लगभग 1,600 किलोमीटर की दूरी पर स्थित थे। विश्व इतिहास में यह एक अनोखा प्रयोग ही था कि भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नताओं के बावजूद दोनों क्षेत्र धर्म एवं जाति के बंधन में बँधे हुए थे। इस जाति एवं धर्म के बंधन को उस समय भारी आघात लगा जब सैनिक तानाशाही से प्रजातांत्रिक प्रणाली का गला घोंटा जाने लगा। पश्चिमी पाकिस्तान की शासन में पकड़ होने के कारण पूर्वी पाकिस्तान की जनता एवं उसके प्रतिनिधियों को निरंतर निरादर दिया जाता रहा। इसी निरादर एवं शोषण के कारण बाँगलादेश का जन्म हुआ।

पाकिस्तान में 1958 से ही सैनिक तानाशाही का बोलबाला शुरू हो गया था। उसी समय से, बल्कि उसके भी पूर्व से पूर्वी पाकिस्तान के साथ राजनीतिक एवं प्रशासनिक भेदभाव बरता जाता था। राष्ट्र के विकास के लिए अधिकांश व्यय पश्चिमी पाकिस्तान के द्वारा ही किया जाता। पूर्वी पाकिस्तान का आर्थिक शोषण तो निरंतर किया जाता; परंतु विकास की सीमा से उसे दूर रखा जाता। इसका खाका इस बात से स्पष्ट होता है कि पाकिस्तान की प्रशासकीय सेवाओं में 94%, विदेशी सेवाओं में 85% तथा सेनाओं में 95% पद पश्चिमी पाकिस्तान के निवासियों द्वारा भरे जाते थे। जबकि पूर्वी तथा पश्चिमी भागों की जनसंख्या का अनुपात 60 तथा 40 था। 60% जनता बंगाली होते हुए भी उस पर उर्दू भाषा थोपी गई; और उसे ही राष्ट्रीय भाषा का दरजा दिया गया; जिससे दोनों क्षेत्रों के मध्य निरंतर तनाव बढ़ते गए। बंगाली भी अपने हक के लिए कुरबानी पर उतर आए और युद्ध के रूप में इसका परिणाम सामने आया।

राष्ट्रपति याह्या खाँ को पाकिस्तान का 1968 में एक मार्शल लॉ प्रशासक नियुक्त किया गया। उन्होंने पूर्व राष्ट्रपति अयूब खाँ से भी बढ़कर कदम रखने शुरू कर दिए और पूर्वी पाकिस्तान के बंगालियों की भेदभाव के विरुद्ध उठाई आवाज को कुचलना शुरू कर दिया। जनता के बढ़ते हुए रोष को देखते हुए 17 दिसंबर, 1970 को पाकिस्तान में आम चुनाव संपन्न हुए। कुल 313 सीटों में शेख मुजीबुर्रहमान तथा उनकी अवामी लीग पार्टी को 167 सीटें तथा शेष अन्य 10 पार्टियों को केवल 146
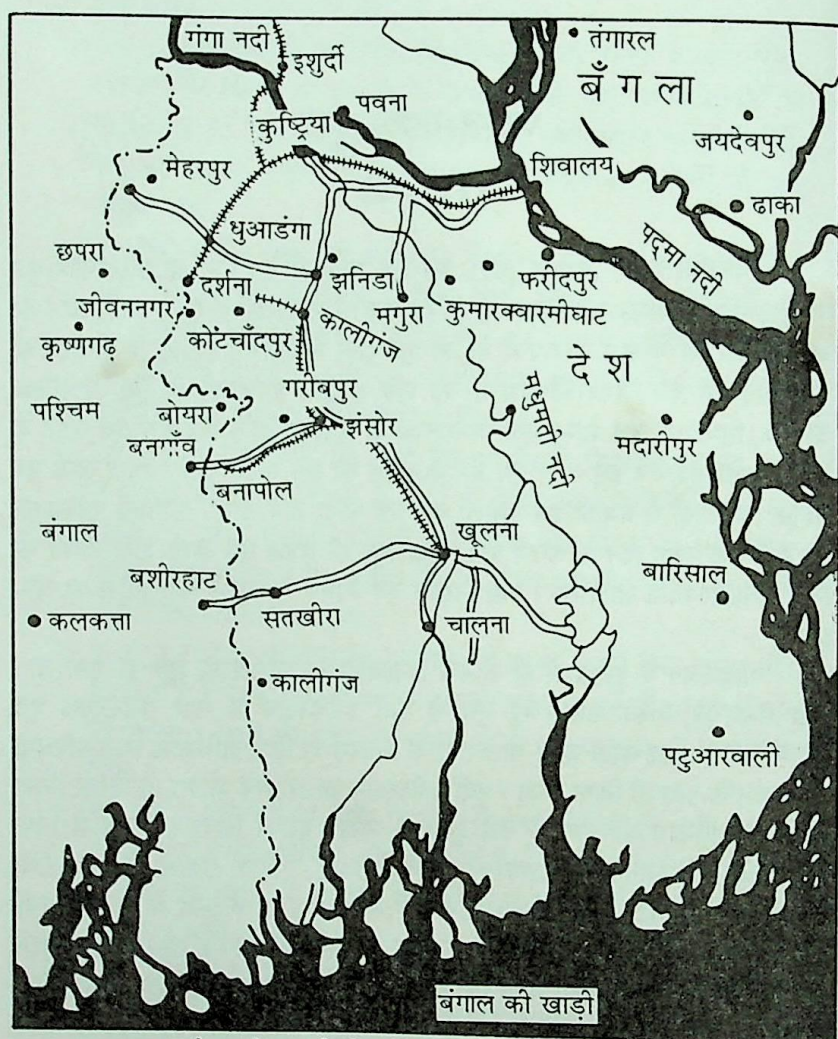
बँगलादेश की स्थिति (1971 का युद्ध)

सीटें मिलीं। इसमें जुल्फिकार अली भुट्टो की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी की 66 सीटें भी सम्मिलित थीं। इस जनमत के आधार पर अवामी लीग पार्टी की सरकार का गठन होना चाहिए था। किंतु पाकिस्तान में पश्चिमी क्षेत्र के हाथों में सत्ता रखने के लिए याह्या खाँ तथा भुट्टो ने मिलकर एक षड्यंत्र रचा और शेख मुजीबुर्रहमान को बंदी बना लिया गया। साथ ही पूर्वी पाकिस्तान की जनता को दबाने के लिए 25 मार्च, 1971 को लेफ्टीनेंट जनरल टिक्का खाँ को वहाँ का नया मार्शल लॉ प्रशासक नियुक्त किया

गया। उन्होंने अपनी सैनिक कार्यवाही एवं दमन नीति से जनादेश को दबाने का सिलसिला शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप जहाँ लाखों की संख्या में लोग मारे गए, वहाँ करोड़ों की संख्या में बेघर-बार बाँगला जनता भारत की शरण में आनी शुरू हो गई। पूर्वी पाकिस्तान की जनता इस भयानक एवं बीभत्स अमानवीय दमन से कराह उठी थी।

लगातार बढ़ते सैनिक अत्याचार से तंग आकर पूर्वी पाकिस्तान की जनता सीमाओं को पार कर भारत की शरण में आने लगी। इन नंगे-निहत्थे लोगों पर भारत प्रतिबंध नहीं लगा सका, क्योंकि यह सदैव से मानवता का अटूट पुजारी रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय में ही इन शरणार्थियों की संख्या 90,00,000 तक पहुँच गई, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था भी हिलने लगी। भारत के सामने आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक समस्याएँ खड़ी हो गईं। जहाँ इन असहाय एवं बीमार लोगों की आपूर्ति-व्यवस्था का प्रश्न था, वहाँ शरणार्थियों के वेश में अनेक ऐसे तत्त्व भी प्रवेश कर गए जो तोड़-फोड़ करने लगे। अनेक घुसपैठिए गुप्तचरी भी करने लगे। इसका निवारण यही था कि इन शरणार्थियों की तुरंत वापसी हो। भारत सरकार ने पाकिस्तान से अनुरोध किया कि वह इन्हें यथाशीघ्र वापस बुला ले, तो पाकिस्तान के तत्कालीन विदेशमंत्री श्री भुट्टो ने इन शरणार्थियों को पाकिस्तानी मानने से ही इनकार कर दिया।

अब भारत पर इस कार्यवाही का सीधा प्रभाव पड़ने लगा था, क्योंकि पूर्वी पाकिस्तान की सीमाएँ तीन ओर से भारत से मिलती थीं। इन सीमाओं से लगे भारतीय राज्यों की संस्कृति, भाषा, जाति, रीति-रिवाज तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ पूर्वी पाक के इन शरणार्थियों से पूरी तरह से मिलती-जुलती थीं। अतः भारत के पश्चिमी बंगाल में ये शरणार्थी पूरी तरह से छा गए। अब भारत के लिए उन्हें हटाने के सिवाय कोई चारा नहीं था। भारत की ओर से लगातार शांति प्रयास जारी रहे; परंतु पाकिस्तान के शासकों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। एक वर्ष तक भारत 1,00,00,000 पाकिस्तानी जनता का बोझ उठाता रहा, किंतु 25 नवंबर, 1971 को याह्या खाँ की इस टिप्पणी ने भारत को चौकन्ना अवश्य कर दिया, "अगले 10 दिनों में मैं यहाँ रावलपिंडी में न होकर युद्धक्षेत्र में होऊँगा।"

पाकिस्तान ने भारत के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए अनेक आरोप लगाने भी शुरू कर दिए कि भारत ने ही पूर्वी पाकिस्तानी जनता को भड़काया है तथा मुक्तिवाहिनी संगठन को खुलकर हथियार एवं आवश्यक सामग्री के साथ ही प्रशिक्षण प्रदान कर रहा है। इसके पूर्व पाकिस्तान ने 30 जनवरी, 1970 को भारत के श्रीनगर से जम्मू जानेवाले यात्री-विमान का अपहरण करके लाहौर के हवाई अड्डे पर जला दिया और उसके चित्रों को अपने दूरदर्शन के माध्यम से दिखाया। उसके नापाक इरादों ने निरंतर बचकानी हरकतें की थीं।

पश्चिमी पाकिस्तान के प्रभुत्व के विरोध में पूर्वी पाकिस्तानी जनता के बढ़ते आक्रोश तथा शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में बढ़ती आस्था के साथ ही शेख के छः सूत्रीय कार्यक्रम ने भी युद्ध का प्रारूप तैयार कर दिया था। इस कार्यक्रम की रूपरेखा

इस प्रकार की थी—

1. संविधान में यह व्यवस्था हो कि लाहौर प्रस्ताव के आधार पर सही अर्थों में संघीय शासन तंत्र की स्थापना की जाए, निर्वाचित विधान मंडल की सर्वोपरिता पर आधारित लोकतंत्रीय सरकार बने और ऐसे विधान मंडल का आधार व्यापक वयस्क मताधिकार हो।
2. संघीय सरकार के अधीन केवल रक्षा एवं पर-राष्ट्र कार्य होने चाहिए।
3. पूर्वी तथा पश्चिमी पाकिस्तान में अलग-अलग दो रिजर्व बैंक होने चाहिए।
4. कर लगाने का अधिकार संघ के सहायक राज्यों को होगा। संघीय सरकार को इसमें से हिस्सा मिलेगा, जिससे वह अपने वित्तीय दायित्वों की पूर्ति कर सके।
5. पूर्वी तथा पश्चिमी पाकिस्तान के मध्य आर्थिक विषमताएँ हटाने के लिए व्यवस्था की जाए।
6. पूर्वी पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए सेना अथवा अर्द्धसैन्य बल का गठन होना चाहिए।

छः सूत्रीय कार्यक्रम के साथ ही अवामी लीग नेता शेख मुजीबुर्रहमान ने चार अन्य माँगें भी रखीं—

1. सैनिक शासन तुरंत समाप्त किया जाए।
2. सैनिकों को बैरकों में वापस लौटाया जाए।
3. हत्या एवं लूटमार की जाँच करवाई जाए।
4. जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को सत्ता सौंपी जाए।

पश्चिमी पाकिस्तान को छः सूत्रीय कार्यक्रम तथा शेख मुजीबुर्रहमान की चार माँगें कदापि स्वीकार नहीं थीं, इसीलिए उसने 25 मार्च, 1971 की काली रात्रि को भयंकर खूनी रात्रि में बदल दिया। जैसे ही सूर्य ढला कि पाकिस्तानी सेना ने अपनी तोपों एवं टैंकों का मुँह ढाका पर खोल दिया। लाखों की संख्या में निरीह लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस सुनियोजित कत्लेआम, सामूहिक विनाश, लूटपाट तथा बलात्कार आदि से मानवता कराह उठी। परिणामस्वरूप 'मुक्तिवाहिनी' सेना का गठन किया गया। बेसहारा तथा कमजोर जनता जान बचाकर भारत में शरण लेने लगी तो पाकिस्तान ने खिसियाकर भारत पर आक्रमण करना चाहा और अपनी गुप्त योजना के आधार पर भारत के प्रमुख केंद्रों पर इजराइल की भाँति आक्रमण करने का निश्चय किया।

दूसरी ओर भारत ने शांतिपूर्ण हल निकालने के लिए अनेक प्रयास किए तथा विदेशों से भी बाँगलादेश की मुक्ति के लिए दबाव बढ़ने लगा। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसकी चर्चा होने लगी तथा पाकिस्तान ने अमेरिका से सैनिक सहायता के द्वारा समस्या का हल निकालना चाहा। 25 मई, 1971 को तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने लोकसभा में स्पष्ट रूप से कहा, "हम जानते हैं कि बाँगलादेश की समस्या का कोई

सैनिक समाधान नहीं हो सकता। जो लोग शक्ति रखते हैं उन्हें राजनीतिक हल सामने लाना चाहिए। भारत की धरती पर आए ये शरणार्थी यहाँ पर अस्थायी रूप से हैं, उन्हें अपने घरों को वापस जाना होगा और यह तभी संभव होगा जब इस्लामाबाद शेख मुजीबुर्रहमान और उनकी अवामी लीग के निर्वाचित प्रतिनिधियों को सत्ता सौंप दे।"

संयुक्त राष्ट्रसंघ की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समिति (यूनेस्को) ने 20 नवंबर, 1971 को बाँगलादेश की इस समस्या के लिए बैठक बुलाई; परंतु चीन ने पाकिस्तान का पूरा समर्थन किया। सुरक्षा परिषद् भी कोई कठोर कदम नहीं उठा सकी। इस प्रकार लगातार भारत-पाक सीमाओं पर सैनिकों का जमाव बढ़ता गया। नवंबर 1971 तक दोनों देशों ने अपनी पूरी सैनिक तैयारी शुरू कर दी थी।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

इस ऐतिहासिक युद्ध में भारतीय सेनाएँ पूर्णरूप से सजग एवं तैयार थीं, क्योंकि पाकिस्तान के नापाक इरादों से भारत भलीभाँति परिचित हो गया था। इस युद्ध की रूपरेखा जनरल (बाद में फील्ड मार्शल) सैम मानेकशा द्वारा तैयार की गई थी। इस समय भारतीय सैन्य-शक्ति इस प्रकार थी—

थलसेना : 8,28,000।

जिसमें 2 कवचित डिवीजन, 13 पैदल डिवीजन, 10 पर्वतीय डिवीजन, स्वतंत्र ब्रिगेड तथा 2 पैरा ब्रिगेड व 20 तोपखाना यूनिट भी सम्मिलित थीं।

टैंकों की संख्या इस प्रकार थी—सेंचूरियन एम. के. 5/7—200, शर्मन—250, टी-54 व टी-55 श्रेणी के—450, विजयंत—300, मध्यम श्रेणी के—350, एम. एम.—100, फ्रांसीसी टैंक—13 आदि प्रमुख रूप से थे।

वायुसेना : भारतीय वायुसेना में लगभग 92,000 सैनिक, युद्धक-विमान—650, 4 लाइट बमवर्षक स्क्वैडर्न। 2 लड़ाकू बमवर्षकों के साथ ही मिग-21, नेट, सुखाई-7, हंटर, मारुत तथा कैनबरा आदि प्रमुख लड़ाकू वायुयान थे। संचार-व्यवस्था के लिए राडार तथा शत्रु की निगरानी के लिए पृथ्वी से वायु में मार करनेवाले प्रक्षेपास्त्र भी तैनात थे।

नौसेना : लगभग 40,000 सैनिक, 1 विमानवाहक पोत 'विक्रांत', 2 क्रूजर, 3 विध्वंसक, 2 विध्वंसक अनुरक्षी नौपोत, 4 रूसी पनडुब्बी, 8 माइंस स्वीपर, 6 पेट्रौल बोट, 9 गश्ती नौकाएँ, 1 लेंडिंग शिप मिसाइल बोट तथा 2 लेंडिंग क्राफ्ट थे।

इसके अलावा पेरा मिलिट्री फोर्स तथा सीमा सुरक्षा बल (बी.एस.एफ.) के 1,00,000 सैनिक भी तैनात थे।

पाकिस्तान की सेना में सैन्य-शक्ति इस प्रकार थी—

थलसेना की संख्या—3,92,000।

इसके साथ ही कवचित डिवीजन तथा कवचित ब्रिगेड की अलग से व्यवस्था थी।

टैंक : पाकिस्तान के पास अमेरिकन पैटन टैंक के अतिरिक्त चीन व रूस में

निर्मित टी-50 तथा टी-55 भी सम्मिलित थे। कुछ संख्या में शर्मन टैंक भी थे। पैटन टैंकों का एक डिवीजन था। 6 तोपखाने के रेजीमेंट, कुछ स्वतंत्र मॉर्टार तथा मैदानी तोपखाना भी था।

वायुसेना में लगभग 15,000 सैनिक तथा 280 लड़ाकू विमान थे, जिसमें मिराज, मिग-19, सेवर श्रेणी के विमान तथा 17 स्क्वैडर्न थे। इसके साथ राडार व्यवस्था भी उच्च श्रेणी की थी।

नौसेना के रूप में लगभग 9,500 सैनिक, 4 प्रमुख पनडुब्बियाँ; जिनमें 1 अमेरिकन 'गाजी' तथा 3 फ्रांस निर्मित थीं। 1 क्रूजर, 2 विध्वंसक, 3 विध्वंसक अनुरक्षी पोत, 2 तीव्रगामी ब्रिगेड नौपोत तथा 4 गश्ती नौकाएँ व कुछ माइंस स्वीपर भी थे।

इसके साथ ही पाकिस्तान के पास अर्द्धसैनिक बल के रूप में 2,50,000 सैनिक थे।

भारतीय युद्ध योजना

भारतीय सेनाओं के समक्ष तीन राजनीतिक लक्ष्य स्पष्ट कर दिए गए थे—

1. बाँगलादेश को यथाशीघ्र स्वतंत्र कराना।
2. आक्रमण की स्थिति में उत्तर तथा पश्चिम क्षेत्र में प्रत्याक्रमण करके कार्यवाही की जाए।
3. पश्चिमी क्षेत्र में पाक सेनाओं को रोकनेवाली कार्यवाही की जाए तथा सीमित लाभ प्राप्त करके पाक द्वारा अधिकृत भारतीय भू-भाग से उसकी सौदेबाजी की जाए। इसके साथ ही समझौता-वार्त्ता में पाकिस्तान के ब्लैक-मेल से बचा जा सके।

वास्तविक संघर्ष

3 दिसंबर, 1971 को पाकिस्तान के बमवर्षक एवं लड़ाकू विमानों ने भारत के श्रीनगर, अवंतीपुर, पठानकोट, फरीदकोट, उत्तरलाई, आगरा, अंबाला, अमृतसर तथा बाड़मेर शहरों में आकस्मिक आक्रमण करके युद्ध की शुरुआत कर दी। इस युद्ध की परिकल्पना इजराइल के मिस्र पर हवाई आक्रमण के तहत नियोजित थी। भारत ने स्थिति का जायजा लेते हुए एयर चीफ मार्शल पी. सी. लाल को पूर्वी तथा पश्चिमी मोरचों पर अपनी सेना को जवाबी हमले का आदेश प्रसारित कर दिया तथा वायुसेना को प्रत्याक्रमण की अनुमति भी दे दी। भारतीय पश्चिमी एयर कमांड के एयर मार्शल एम. ए. इंजीनियर ने अपने वायुसैनिकों को संदेश दिया, "हमें आज आनेवाली पीढ़ियों का ऋण चुकाना है और ऐसा तभी हो सकता है, जब हम उस दुष्ट और युद्धकारी मशीन का सफाया कर दें, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में शांति को बराबर भंग किया है।"

इसी संदेश के साथ हमारे वायुसैनिकों ने पूर्वी क्षेत्र में 180 तथा पश्चिमी क्षेत्र में

500 हमले 24 घंटे के अंदर कर दिए, जिससे पाकिस्तानी सेना के कान भी खड़े हो गए।

थलसेना ने भी पाकिस्तानी सेनाओं का मुँहतोड़ जवाब देना शुरू कर दिया। भारतीय सेना ने जम्मू क्षेत्र की धारनला स्थित पाकिस्तानी चौकी पर अधिकार जमा लिया। पाकिस्तान के उरी तथा पुंछ क्षेत्र के आक्रमणों को भी विफल कर दिया। इस कार्यवाही में अनेक पाकिस्तानी सैनिक मारे गए तथा बंदी बनाए गए। भारतीय थलं सेनाध्यक्ष जनरल मानेकशा ने अपनी पूर्वी कमांड जनरल ऑफिसर कमांडिंग इन चीफ लेफ्टीनेंट जनरल जगजीतसिंह अरोरा, पश्चिमी कमांड लेफ्टीनेंट जनरल के. पी. कांडेथ, दक्षिणी कमांड लेफ्टीनेंट जनरल वेवूर तथा केंद्रीय कमांड लेफ्टीनेंट जनरल पी. एस. भगत आदि के नेतृत्व में सौंपी।

भारतीय नौसेना एडमिरल एस. एम. नंदा के नेतृत्व में थी, जिसमें पूर्वी कमांड वाइस एडमिरल एन. कृष्णन तथा पश्चिमी कमांड वाइस एडमिरल एस. एन. कोहली के अधीन थी। विमानवाहक पोत ने पाकिस्तानी सेना के जवाब के लिए आगे बढ़ना शुरू कर दिया और विशाखापट्टनम के प्रवेशद्वार की ओर शत्रु की पनडुब्बी का पता लगाया। भारतीय विध्वंसक ने अपने डेफ्थ चार्ज के द्वारा पाकिस्तान की प्रसिद्ध पनडुब्बी 'गाजी' को उड़ा दिया, जिससे पाकिस्तान के 200 नौसैनिक भी मारे गए।

4 दिसंबर—भारतीय वायुसेना ने कराची के पश्चिम में स्थित कियामारी तेल भंडारों पर आक्रमण किया और पूर्वी क्षेत्र के सभी पाकिस्तानी हवाई अड्डों को नष्ट कर दिया तथा इस क्षेत्र में नभ प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस दौरान पाकिस्तान के 33 वायुयान भी नष्ट कर दिए।

भारतीय थलसेना ने उरी तथा हाजी पीर के बीच की पहाड़ी पर अधिकार कर लिया। छंब क्षेत्र में पाकिस्तान ने आक्रमण किया; किंतु भारतीय वायुसेना ने उसके 1 लड़ाकू विमान तथा 6 टैंकों को नष्ट करके उसके इरादों को विफल कर दिया। उसी दिन हुसैनीवाला सेक्टर पर पाकिस्तान के आकस्मिक एवं अप्रत्याशित आक्रमण से हमें भारी नुकसान उठाना पड़ा तथा पीछे भी हटना पड़ा। उस हमले में हुसैनीवाला पुल को भी नष्ट कर दिया गया। भारतीय नौसेना का विमानवाहक पोत, जो काक्स बाजार में था, के सी-हॉक विमानों ने उड़ान भरकर सुबह 10.30 बजे पाकिस्तान के बंदरगाह में स्थित जलपोत, हैंगर में खड़े वायुयानों, युद्धपोतों एवं तेल भंडारों को ध्वस्त कर दिया और 'विक्रांत' ने 3 बजे चटगाँव पर आक्रमण करके वहाँ के बंदरगाह, हवाई पट्टी तथा वायरलेस केंद्र को भी नष्ट कर दिया। भारतीय नौसेना ने 4 दिसंबर को कराची की घेराबंदी करके पाकिस्तानी सेना के एक बड़े भाग को नष्ट कर दिया था। तब से 4 दिसंबर 'भारतीय नौसेना दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा।

5 दिसंबर—पाकिस्तान ने हमारे 4 हवाई अड्डों पर रात्रि में आक्रमण किया; पर कामयाब नहीं हो पाया। भारतीय वायुयानों ने पाकिस्तान के 6 हवाई अड्डों को अपना

लक्ष्य बनाया और उन्हें ध्वस्त कर दिया। इसके अलावा भारतीय सैनिक सैनिक महत्त्व के अनेक स्थानों और सैनिक छावनियों पर धुआँधार बम बरसाते रहे। पूर्वी पाकिस्तान की सेना के मुख्यालय जमालपुर को हमांरी वायुसेना ने ध्वस्त कर दिया। पूर्वी क्षेत्र के इस हवाई हमले ने पाकिस्तान की वायु शक्ति को प्रभावित किया। हवाई आक्रमण से शत्रु के अनेक टैंकों एवं युद्धपोतों को भी क्षति पहुँची। रामगढ़ में टैंकों की भयानक लड़ाई हुई, भारतीय थलसेना ने राजस्थान क्षेत्र में एक नया मोरचा खोला तथा पाकिस्तान के गदरा, खोरहरापार आदि नगरों पर अधिकार कर लिया तथा लंबे क्षेत्र में अधिकार करके साथ ही शत्रु के अनेक टैंकों को भी उड़ा दिया। भारत ने अपनी सेना को पाकिस्तान के क्षेत्रों पर बढ़ने एवं दबाव डालने का प्रयास जारी रखा। इस अभियान में दोनों पक्षों को भारी नुकसान हुआ।

भारतीय नौसेना के युद्धपोतों को पाकिस्तान के महत्त्वपूर्ण बंदरगाह कराची में स्थित 4 जलयानों को नष्ट करने में सफलता मिली। पाकिस्तान के विशाल जलयान 'शाहजहाँ' व 'खैबर' भी इस अभियान में नष्ट कर दिए गए। हमारी नौसेना ने पाकिस्तान के पेट्रोल टैंकों को भी जला दिया।

6 दिसंबर—भारत ने बाँगलादेश को मान्यता दे दी। 24 घंटे में पुनः सुरक्षा परिषद् में युद्ध विराम प्रस्ताव अमेरिका द्वारा रखा गया; परंतु इस बार भी सोवियत संघ द्वारा 'वीटो' का प्रयोग करने से प्रस्ताव पारित न हो सका। उधर भारतीय वायुसेना ने आक्रमण करके पाकिस्तान के अनेक टैंकों को नष्ट कर दिया। पश्चिमी क्षेत्र के शत्रु के अनेक ठिकानों को नष्ट कर दिया। खेमकरन के दक्षिण में सहोरा नामक स्थान तथा डेराबाबा नामक पुल पर भारतीय सेना ने अधिकार कर लिया; लेकिन पुंछ क्षेत्र में पाकिस्तान ने भारतीय सेना पर पीछे से हमला करके काफी नुकसान पहुँचाया। छंब क्षेत्र के पूर्व में भारत के चिकननैक नामक स्थान पर पाकिस्तान ने अधिकार जमा लिया। लौंगेवाला क्षेत्र में दोनों के मध्य भयंकर टैंक-युद्ध हुआ, परंतु भारतीय वायुसेना के सहयोग से शत्रु के लगभग 38 टैंक नष्ट कर दिए गए। सिंध क्षेत्र में 5 चौकियाँ भी भारत के अधिकार में आ गईं। स्यालकोट क्षेत्र में भी पाक के अमराचक रेलवे स्टेशन पर अधिकार करके 17 कि. मी. अंदर तक प्रवेश करने में भारतीय सेना को सफलता मिली।

7 दिसंबर—पाकिस्तान ने छंब क्षेत्र से भारत पर 4 बटालियनों द्वारा आक्रमण किया, परंतु भारतीय सेना ने उसके इरादों को विफल कर दिया और उसके 12 टैंकों तथा 7 विमानों को भी नष्ट कर दिया। कच्छ के क्षेत्र में हमारी सेना ने छाटवेट पर अधिकार कर लिया। जिस समय पाकिस्तानी सेना का एक ब्रिगेड मुनव्वरतवी नदी को पार कर गया उसी समय भारतीय सेनाओं ने अपनी वीरता का अनूठा उदाहरण दिखाते हुए उन्हें मार-मारकर पीछे ढकेल दिया। स्यालकोट क्षेत्र में शत्रु की रक्षा व संचार-व्यवस्था को भंग कर भारतीय सेना आगे बढ़ गई। भारतीय वायुसेना ने पूर्वी क्षेत्र में जहाँ अपना पूरा

प्रभुत्व बनाए रखा, वहाँ पश्चिमी क्षेत्र में थलसेना को सक्रिय सहयोग देकर आगे बढ़ाया और दुश्मन को भारी क्षति पहुँचाई। मौलवी बाजार को स्वतंत्र करा दिया गया। चटगाँव तथा ढाका के मध्य यातायात व संचार-व्यवस्था भंग कर दी गई। पूर्वी क्षेत्र जैसोर में भी हवाई हमला करके उसे नष्ट कर दिया। साथ ही पैराशूट के माध्यम से सैनिकों, तोपों एवं हलकी श्रेणी के टैंकों को उतारकर सिलहट पर भी भारतीय सेना ने अधिकार कर लिया।

8 दिसंबर—भारतीय सेना ने सांभा-माधोपुर तथा खेमकरन क्षेत्र में अधिकार जमाते हुए तथा सैनिकों को आगे बढ़ाते हुए शत्रु की अनेक चौकियों पर कब्जा कर लिया। डेराबाबा नामक क्षेत्र के अंदर 20 कि.मी. से अधिक दूर तक प्रवेश करके भारतीय सेना ने तख्तपुर चौकी पर भी अधिकार कर लिया। इसके साथ शत्रु के विशाल क्षेत्र पर अधिकार करते हुए भारतीय सेना ने 'छोर' नामक अड्डे पर भी कब्जा जमा लिया। भारतीय थलसेनाध्यक्ष जनरल मानेकशा ने शत्रु से आत्मसमर्पण की माँग की तथा ऐसा न करने पर शत्रु को घातक परिणाम की चेतावनी दी।

9 दिसंबर—कच्छ क्षेत्र में 'नगर परकार' नामक कस्बे को अधिकार में करती हुई भारतीय सेना 15 कि.मी. तक प्रवेश कर गई। लौंगेवाला क्षेत्र में दोनों के मध्य जोरदार मुठभेड़ हुई, जिसमें भारतीय वायुसेना ने शत्रु के 9 टैंकों को ध्वस्त कर दिया। पूर्वी क्षेत्र में ढाका पर अंतिम आक्रमण के लिए भारतीय सेना मेघना नदी की ओर बढ़ने लगी। बाड़मेर क्षेत्र की शत्रु की सभी चौकियों पर भारतीय सेनाओं का अधिकार हो गया। लद्दाख तथा कारगिल क्षेत्र में भी पाकिस्तान की अनेक चौकियों को भारतीय सैनिकों ने हथिया लिया था। वायुसेना के द्वारा शत्रु के अनेक जलपोतों को जलमग्न कर दिया गया तथा भारतीय नौसेना ने भी बंगाल की खाड़ी तथा कराची से ईरान तक की नाकेबंदी करके पाकिस्तान को घेर लिया। अब पाकिस्तान को अपनी स्थिति अत्यंत नाजुक नजर आने लगी थी; क्योंकि दोनों मोरचों पर उसे बराबर असफलता ही मिल रही थी। जनरल मानेकशा ने पुनः पाकिस्तान को आत्मसमर्पण की चेतावनी दी; क्योंकि पूर्वी क्षेत्र से सैनिक तेजी के साथ पलायन कर रहे थे। भारत ने नई दिल्ली में बाँगलादेश दूतावास (मिशन) खोलने की अनुमति दी। कराची बंदरगाह से विदेशी जलयानों को दूर रहने के आदेश दे दिए गए।

10 दिसंबर—ढाका की पूर्ण नाकेबंदी हो गई तथा उसका संपर्क सभी जगह से समाप्त हो गया। भारत तथा बाँगलादेश में संयुक्त सैनिक कमान पर सहमति हो गई। छंब क्षेत्र में चौथी बार दोनों सेनाओं के मध्य जमकर युद्ध हुआ, जिसमें भारतीय सेनाओं को भारी हानि उठानी पड़ी। इसमें पाकिस्तान के 5 टैंक तथा 1 सेवर जेट विमान को नष्ट कर दिया गया। इस अभियान में पाकिस्तान को भी भारी आघात लगा। पाक सेनाओं ने उरी क्षेत्र के कुरनालो गाँव में आक्रमण किया; किंतु वह भी विफल रहा। अमृतसर क्षेत्र में पाक के आक्रमण को भी नाकामयाब कर दिया गया तथा स्यालकोट की ओर हमारी

सेना मीलों अंदर तक प्रवेश कर गई। इसके बाद पाकिस्तान ने प्रतिरक्षात्मक स्थिति अपनानी आरंभ कर दी। संबा क्षेत्र में भारतीय सेना ने आक्रमण करके शत्रु के 7 पैटन टैंकों को नष्ट कर दिया। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सभा में चीन ने भारत को युद्ध विराम की धमकी दी, किंतु भारत ने उसकी परवाह नहीं की।

11 दिसंबर—भारतीय सेनाओं ने राजस्थान, पंजाब तथा कश्मीर क्षेत्र तक अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लिया था और पाकिस्तान की सीमा में भारतीय सेना का प्रवेश आरंभ हो गया था। पूर्वी क्षेत्र में अनेक नगरों को अधिकार में कर लिया गया। वहाँ अनेक सैनिकों ने भी आत्मसमर्पण करना शुरू कर दिया। अनेक सैनिकों को बंदी बना लिया गया। पूर्वी पाकिस्तान का संपर्क अब पश्चिमी भाग से पूरी तरह से कट चुका था। मुक्तिवाहिनी के सहयोग से शत्रु के गुप्त स्थानों को भी नष्ट करना शुरू हो गया था। इसी समय भारतीय थलसेना अध्यक्ष ने पाकिस्तानी सैनिकों को बेमौत मरने से बचाने के लिए आत्मसमर्पण का संदेश प्रसारित किया। भारतीय वायुसेना ने शत्रु की वायुसेना पर भारी सैनिक एवं मनोवैज्ञानिक दबाव डाल दिया था, जिससे उनकी हिम्मत जवाब दे रही थी।

12 दिसंबर—भारतीय वायुसेना ने छंब क्षेत्र में आक्रमण करके शत्रु की बख्तरबंद गाड़ियों, टैंकों तथा पेट्रोल डिपो को नष्ट कर दिया। इसी के साथ ही कारगिल तथा टिथवाल क्षेत्र की 3 चौकियों पर भी कब्जा कर लिया। राजस्थान के छाटवेट क्षेत्र के लगभग 150 वर्ग मील क्षेत्र को हथिया लिया। पाकिस्तान की स्थिति अत्यंत नाजुक हो गई। ढाका के आसपास बड़ी संख्या में सैनिक आत्मसमर्पण करने लगे। पश्चिमी पाकिस्तान से संपर्क टूट जाने के कारण उनके पास कोई उपाय नहीं था। भारत की चेतावनी का आज अंतिम दिन था।

13 दिसंबर—पुंछ क्षेत्र में तैनात पाकिस्तानी सेना की आपूर्ति-व्यवस्था को खत्म कर दिया गया तथा छंब क्षेत्र में मुनव्वरतवी नदी के पश्चिमी किनारे पर भारतीय सेना ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी। इधर पाकिस्तान से मुठभेड़ में भारत ने उसके 2 टैंकों को नष्ट कर दिया तथा 1 टैंक पर अधिकार कर लिया। राजस्थान क्षेत्र में नयाछोड़ की दक्षिण की ओर पर्वतअली पर अधिकार करके पाकिस्तानी सेना की अनेक चौकियों को भी अधिकृत कर लिया। कारगिल क्षेत्र में शत्रु की 2 चौकियों पर अधिकार कर लिया। जनरल मानेकशा ने पाकिस्तानी सेना को पुनः आत्मसमर्पण की चेतावनी दी, जिसके परिणामस्वरूप बाँगलादेश में तेजी के साथ पाक सैनिक आत्मसमर्पण करने लगे; लेकिन अभी 'खुलना' के लिए उनका संघर्ष चल रहा था।

14 दिसंबर—ढाका की नाकेबंदी समाप्त हो गई। पाकिस्तानी सेनाएँ संघर्ष के साथ ही चटगाँव तथा अन्य क्षेत्रों से पीछे हटने लगीं। कारगिल क्षेत्र में भारतीय सेनाओं ने पाकिस्तान की 31 चौकियों तथा जम्मू क्षेत्र में 3 चौकियों पर अधिकार कर लिया। कारगिल की 2 चौकियों पर भी कब्जा हो गया था। छंब क्षेत्र में भी भारतीय सेना ने

पाकिस्तानी सेना के इरादों को नाकामयाब करके उसे भागने के लिए मजबूर कर दिया था। पूर्वी पाकिस्तान के कमांडर लेफ्टीनेंट जनरल नियाजी ने स्वयं युद्ध विराम के लिए कहा तो भारतीय थलसेनाध्यक्ष जनरल मानेकशा ने 16 दिसंबर को प्रातः 9 बजे तक बिना शर्त के आत्मसमर्पण की पेशकश की। चटगाँव बंदरगाह नष्ट कर दिया गया। ढाका से भारतीय सेना केवल 2 किलोमीटर की दूरी पर ही थी। अब हवाई आक्रमण भी ढाका में रोक दिए गए।

15 दिसंबर—भारतीय सेनाओं ने स्यालकोट के शकरगढ़ को भी घेर लिया तथा प्रवेश जारी रखा, जिसमें प..किस्तान के 6 टैंकों को नष्ट कर दिया गया तथा 1 टैंक को सुरक्षित अधिकार में ले लिया गया। नैनाकोट की सफलता में शत्रु के 13 टैंकों तथा शकरगढ़ युद्ध में 15 टैंकों को नष्ट कर दिया गया। पाकिस्तान की सेना का घेराव लगातार जारी रहा। बाड़मेर तथा अमृतसर क्षेत्र में पाकिस्तानी बमवर्षकों को उड़ा दिया गया। पाकिस्तानी कमांडर जनरल नियाजी ने भागने के लिए अमेरिका के सातवें बेड़े का सहयोग चाहा; परंतु रूस के विरोध से वह भी आगे नहीं बढ़ सका, अतः जनरल नियाजी के समक्ष आत्मसमर्पण या मौत शेष थी।

16 दिसंबर—शकरगढ़ युद्धक्षेत्र में बासंतार नदी के उस पार दोनों राष्ट्रों के मध्य जोरदार टैंक-युद्ध हुआ। इस एक दिन के युद्ध में पाकिस्तान के 45 टैंक नष्ट हुए। यह टैंकों की लड़ाई की एक ऐतिहासिक घटना थी। कारगिल क्षेत्र में भारतीय सेना ने शत्रु की 33 चौकियों पर अधिकार जमा लिया। लेफ्टीनेंट जनरल नियाजी के नेतृत्व में 93,000 सैनिकों ने भारतीय पूर्वी क्षेत्र के कमांडर लेफ्टीनेंट जनरल जगजीतसिंह अरोरा के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इसी के साथ एकतरफा युद्धबंदी की घोषणा हो गई।

17 दिसंबर—आज के दिन सायंकाल 8 बजे बाँगलादेश को स्वतंत्र राष्ट्र घोषित करके युद्ध विराम हो गया। इस 14 दिन तक चलनेवाले ऐतिहासिक युद्ध का सुखद एवं निर्णायक अंत हुआ, जिसे जनरल याह्या खाँ ने भी तुरंत स्वीकार कर लिया।

परिणाम

इस युद्ध के परिणामस्वरूप बाँगलादेश का उदय हो गया और पाकिस्तान का यह हिस्सा सदा के लिए उससे अलग हो गया। पाकिस्तान ने भारत के लगभग 126 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया; जबकि भारत ने पाकिस्तान के पश्चिमी मोरचे पर लगभग 3,600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया था।

संक्षेप में भारत द्वारा पाकिस्तान के निम्न क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया गया था—

1. कारगिल क्षेत्र की 4 चौकियाँ।
2. गुरेज क्षेत्र की 56 चौकियाँ।
3. पुंछ, राजौरी व नौशेरा क्षेत्र की चौकियाँ।

4. अखनूर की पट्टी।
5. जम्मू की कुछ चौकियाँ।
6. शकरगढ़ क्षेत्र पर अधिकार।
7. डेराबाबा नामक बस्ती पर अधिकार।
8. अमृतसर, असवाला, फिरोजपुर तथा खेमकरन क्षेत्र की चौकियाँ।
9. बीकानेर क्षेत्र की अनेक चौकियाँ।
10. जैसलमेर क्षेत्र की अनेक चौकियाँ।
11. बाड़मेर क्षेत्र की चौकियों पर अधिकार।
12. कच्छ क्षेत्र में छाटवेट नगर परकार का क्षेत्र।

जबकि पाकिस्तान ने भारत के तीन प्रमुख क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाया था—

1. छंब की ओर का कुछ क्षेत्र।
2. हुसैनीवाला तट की छोटी बस्ती।
3. फजिल्का की ओर का क्षेत्र।

भारत के सैनिकों की संख्या; जिन्हें शहीद, घायल तथा लापता होना पड़ा, उसका विवरण क्षेत्र के आधार पर इस प्रकार है—

	पश्चिमी क्षेत्र	पूर्वी क्षेत्र	कुल योग
शहीद हुए	1,426	1,047	2,473
घायल हुए	3,611	3,050	6,661
लापता	2,153	90	2,243
कुल योग	7,190	4,187	11,377

दोनों देशों की सैनिक-शक्ति की हानि

	भारत	पाकिस्तान
टैंक	73	244
विमान	44	94
विध्वंसक जलपोत	01	02
माइंस स्वीपर	–	02
पनडुब्बी	–	02
अन्य पोत	–	28

सैन्य शिक्षाएँ

इस ऐतिहासिक युद्ध से हमें निम्नलिखित सैन्य शिक्षाएँ मिलती हैं—

1. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि निर्धारित योजना के आधार पर लड़े गए युद्ध में सदैव सफलता मिलती है; जैसे भारत ने योजनाबद्ध तरीके से कार्यवाही करके शत्रु को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर कर दिया।
2. युद्ध में सफलता का प्रमुख आधार आक्रामक कार्यवाही को माना जाता है; जैसे इस युद्ध में भारत ने यद्यपि आक्रमण की पहल नहीं की, परंतु फिर भी बाँगलादेश में तेजी से विस्मय में डालनेवाली आक्रामक कार्यवाही कर भारतीय सेनाओं ने मात्र 14 दिनों में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त कर ली।
3. किसी भी युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण होता है कि राजनीतिक लक्ष्य और युद्धनीति में संघर्ष के समय सही संतुलन बना रहना चाहिए; जैसे भारतीय सेनाओं एवं सरकार के मध्य संतुलन रहा।
4. युद्धों में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि स्पष्ट राजनीतिक लक्ष्य के आधार पर सैनिक कार्यवाही की जाए। जैसे यह सुनिश्चित था कि बाँगलादेश की मुक्ति के लिए भारत-पाक संघर्ष अवश्य होगा। अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही युद्ध-योजना निर्धारित की गई, अंतरराष्ट्रीय जनमत को अपने पक्ष में किया गया और अप्रत्याशित सफलता हासिल की गई।
5. युद्ध में समय के आधार पर ही तुरंत कार्यवाही करके सफलता प्राप्त करना सरल हो जाता है; जैसे भारत ने पाकिस्तान को अमेरिका तथा चीन की सहायता मिलने के पूर्व ही उसे घुटने टेकने के लिए मजबूर कर दिया था।
6. सेनाओं के आपसी सहयोग के सिद्धांत के द्वारा की गई कार्यवाही सदैव सफलता की सूचक होती है; जैसे इस युद्ध में भारत की सेनाओं का तालमेल ऐसा था कि शत्रु की हर हरकत को नाकामयाब कर दिया और सीमित समय में निर्णायक सफलता प्राप्त कर ली।
7. युद्ध में भौगोलिक स्थिति के आधार पर सेनाओं की कार्यवाही से सदैव सफलता मिलती है; जैसे इस युद्ध में भारतीय नौसेना ने अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में जोरदार नाकेबंदी करके शत्रु को रोककर सफलता प्राप्त की। भारतीय सुरक्षा में इसकी अहम भूमिका है—यह भी प्रमाणित हो गया।
8. किसी भी क्षेत्र में लड़ाई लड़ने के पूर्व वहाँ की स्थानीय जनता का सहयोग सफलता की प्रमुख कड़ी होती है, जैसे बाँगलादेश की जनता, मुक्तिवाहिनी संगठन का सहयोग भी हमारी सफलता का एक प्रमुख आधार था।
9. युद्ध में वास्तविक तथ्यों के आधार समाचार-पत्रों एवं प्रेस के कुशल

संचालन से विश्व जनमत द्वारा अप्रत्याशित सहयोग प्राप्त किया जा सकता है; जैसे भारत ने विश्व के अनेक संवाददाताओं को आँखोंदेखा हाल वर्णन करने के लिए बुलाया, जिससे भारत की निष्पक्षता, सेनाओं की कार्य-कुशलता तथा अनुशासन-बद्धता का विश्व-भर में वर्णन हुआ।

10. श्रेष्ठ गुप्तचर एवं संचार-व्यवस्था सदैव सफलता में सक्रिय भूमिका निभाती है; जैसे इस युद्ध में भारतीय गुप्तचर एवं संचार-व्यवस्था ने शत्रु के इरादों को बताकर उनके विरुद्ध वैसे ही कार्यवाही करके, समस्त योजनाओं को विफल करके निर्णायक एवं ऐतिहासिक सफलता हासिल की।
11. शत्रु को धोखे में डालना सदैव लाभकारी होता है; जैसे भारत ने पाकिस्तान को हर मोरचे में अप्रत्याशित ढंग से चकित करके उसे निराश किया तथा सफलता प्राप्त की।
12. शत्रु पर मनोवैज्ञानिक दबाव डालकर अपनी सफलता को सुनिश्चित किया जा सकता है; जैसाकि भारत ने इस युद्ध में पाकिस्तान के विरुद्ध किया।

इस युद्ध के संदर्भ में मेजर जनरल डी. के. पालित का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है—"दुनिया के लंबे इतिहास में पहले ऐसा कभी नहीं हुआ कि इतने थोड़े दिनों में किसी ने साढ़े सात करोड़ लोगों को आजाद करा दिया हो।"

ईरान-इराक युद्ध

(1980 से 1988 ई. तक)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद खाड़ी में ईरान एवं इराक के मध्य जो भीषण एवं लंबी अवधि तक संघर्ष हुआ उससे मानव सभ्यता एवं अर्थव्यवस्था को भारी आघात पहुँचा। यह सर्वविदित तथ्य है कि पश्चिमी एशिया के रेगिस्तान में छिपा तेल ही सारी समस्याओं की जड़ रहा है। पश्चिमी एशिया के दो प्रमुख तेल उत्पादक देशों के मध्य जो युद्ध हुआ वह महाशक्तियों की स्पर्धा का ही एक प्रमुख कारण था। आधुनिक विकास का प्रमुख आधार तेल से प्राप्त ऊर्जा है। यदि पश्चिमी एशिया से सस्ते तेल की आपूर्ति ठप्प हो जाए तो इसके वर्तमान स्वरूप को कायम रखना संभव न होगा।

खाड़ी क्षेत्र की धरती के नीचे विश्व के अब तक के ज्ञात तेल भंडार का 58% भाग पाया जाता है। 1950 के दशक से ही कच्चा तेल अथवा काला सोना ऊर्जा का प्रमुख वैकल्पिक स्रोत बन गया। 1970 के दशक में खाड़ी के ईरान, इराक, कुवैत, कतर, बहरीन, ओमान, सऊदी अरब तथा संयुक्त अरब अमीरात आदि देशों ने तेल के महत्त्व पर विशेष ध्यान दिया और इसकी कीमत भी बढ़ानी शुरू कर दी। विश्व की महाशक्तियों—अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस तथा पूर्व सोवियत संघ के हित खाड़ी क्षेत्र में तेल को लेकर ही टकराते रहे हैं। पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिका कच्चे तेल के आयात पर इतने अधिक निर्भर हैं कि किसी भी आपूर्ति-बाधा का प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। यही वजह है कि खाड़ी देशों के तेल उद्योग में पश्चिम की महाशक्तियों ने भारी पूँजी निवेश किया है। यद्यपि पूर्व सोवियत संघ की विदेश नीति में खाड़ी के तेल की भूमिका ईंधन के रूप में कम रही है, क्योंकि रूस के पास अपने पर्याप्त तेल भंडार हैं; किंतु खाड़ी तेल पर सतर्क निगाह पूर्व सोवियत संघ को पश्चिमी राष्ट्रों के साथ सामरिक एवं राजनयिक नीति के निर्धारण में भारी मदद करती है। खाड़ी तेल के प्रश्न पर मास्को तथा वाशिंगटन के प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टिकोण खाड़ी देशों को दुःस्वप्न की भाँति सताते रहे हैं।

1979 में धार्मिक नेता अयातुल्ला खुमैनी के आगमन तथा ईरान की सफल क्रांति ने तेल को अपने द्वारा निर्धारित मूल्य पर निर्यात करने के लिए विशेष जोर दिया; जिससे संसार में हड़कंप-सा मच गया। खाड़ी क्षेत्र की राजनीति में तेल की इस महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण ही इस क्षेत्र की राजनीति को तेल-राजनीति की संज्ञा दी गई है। तेल की बिक्री से प्राप्त 'पेट्रो डॉलर' ने इस क्षेत्र के देशों को आर्थिक संपन्नता और वैभव का जीवन तो दिया; परंतु इस क्षेत्र की राजनीति को अस्थिर बना दिया और लगता है, इस

क्षेत्र की शांति सदा के लिए छीन ली है। यही कारण है कि 21 सितंबर, 1980 से आरंभ होनेवाला युद्ध जुलाई 1988 में समाप्त हुआ।

इस युद्ध के विवेचन के पूर्व वे प्रमुख कारण भी उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने इस भीषण एवं भयानक युद्ध को जन्म दिया—

1. भौगोलिक कारण

ईरान तथा इराक की आपसी सीमाएँ लंबी दूरी तक जुड़ी हुई हैं, जो विवाद की एक प्रमुख जड़ रही हैं। फारस की खाड़ी से लगी समुद्री सीमा काफी अंदर तक स्थल क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है तथा दजला-फरात नदियाँ भी इधर ही अपना मुहाना बनाती हैं। लगभग 100 कि. मी. लंबा व सँकरा जलमार्ग भी यहीं पर है, जिसे 'शत-अल-अरब' के नाम से जाना जाता है। इराक का आर्थिक आधारवाला शहर बसरा तथा ईरानी आर्थिक आधारावाला शहर अबादान भी इसी के साथ बसे हुए हैं। इन दोनों के आपसी स्वार्थों की टकराहट से केवल खाड़ी के देश ही प्रभावित नहीं होते; बल्कि समस्त संसार के लिए तेल आयात का संकट खड़ा हो जाता है। महाशक्तियाँ इसी कारण अपनी सीधी दखलंदाजी भी इस क्षेत्र में करने लगती हैं, जो टकराव का एक प्रमुख आधार बन जाती हैं।

2. सामरिक कारण

इस ऐतिहासिक युद्ध का दूसरा प्रमुख कारण जहाँ ईरान द्वारा अपनी आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने का प्रयास रहा, वहाँ सैनिक शक्ति की वृद्धि भी विशेष महत्त्व रखती है। सऊदी अरब सहित खाड़ी क्षेत्रों के अन्य राष्ट्रों ने अपने 'खाड़ी सहयोग परिषद्' नामक संगठन को सामरिक बनाने की तैयारी कर ली, जिसके कारण सभी देशों ने अपने तटों की सुरक्षा हेतु एक सामूहिक सेना बना ली तथा आधुनिक हथियारों का आयात भी आरंभ कर दिया। इस प्रकार सुरक्षा के नाम पर हथियारों के जमाव का सिलसिला शुरू हो गया। ईरान की सैन्य-शक्ति भी इतनी बढ़ चुकी थी कि वह 1970 तक खाड़ी राष्ट्रों में सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया था। साथ ही 1978-79 की क्रांति ने ईरान को अपने सैनिक व्यय में कमी लाने को मजबूर कर दिया, जिससे उसकी सैन्य-शक्ति कमजोर हो गई। ईरान की सैन्य-शक्ति को उस समय एक और धक्का लगा जब अमेरिका ने नवंबर 1979 में राजनयिकों के तेहरान में बंधक बनाए जाने के विरोध में उसके हथियारों की आपूर्ति पर भी रोक लगा दी, जिससे ईरान और कमजोर हो गया था।

3. धार्मिक कारण

मुसलमानों के धार्मिक मतभेद भी इस युद्ध के लिए काफी हद तक उत्तरदायी रहे। शिया-सुन्नी के मध्य आपसी मतभेद स्थिति को लगातार तनावपूर्ण बनाते गए।

ईरान में शिया संप्रदाय के लोग हैं और इराक मुख्य रूप से सुन्नियों का राष्ट्र है; लेकिन इराक में शिया संप्रदाय के लोग भी हैं, जो अयातुल्ला खुमैनी को अपना मसीहा मानते थे। जिस समय ईरान के शाह मोहम्मद रजा पहलवी थे, उन्होंने खुमैनी को देश से निकाल दिया था, तब खुमैनी ने इराक में ही शरण ली और वहाँ रहकर ही शिया मुसलमानों को राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के विरुद्ध भड़काने की कार्यवाही की। इससे राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन और शिया धार्मिक नेता अयातुल्ला खुमैनी एक-दूसरे के विरोधी बन गए। सद्दाम हुसैन ने ईरान के पश्चिमी भाग में स्थित अरबों को भड़काने का प्रयास किया, जो कि स्थिति को तनावपूर्ण बनाता गया। कुर्द जाति की समस्या, जो इराक-कुवैत युद्ध के समय उठी, इस युद्ध के पीछे एक कारण बनी थी। इस प्रकार धार्मिक, जातीय एवं सांस्कृतिक मतभेदों ने इस युद्ध की ज्वाला को तेजी के साथ प्रज्वलित होने को मजबूर कर दिया। इस समय इसलामी कट्टरवाद से भी मुसलिम देश अत्यंत भयभीत हो गए थे।

4. राजनीतिक कारण

युद्ध आरंभ होने के पूर्व इस क्षेत्र की राजनीतिक परिस्थितियाँ भी अत्यंत जटिल हो गई थीं। इराक में जहाँ प्रतिबंधित लोकतंत्र था वहाँ उसकी बागडोर राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के हाथों में थी। सद्दाम हुसैन ने अपने हथियारों में निरंतर वृद्धि करके आसपास के राष्ट्रों को आतंकित कर दिया था। जिससे वे उसके पतन के लिए राजनीतिक दाँव-पेच आजमाने लगे थे। इन राष्ट्रों ने इराक को ईरान के प्रति भड़काया, ताकि अपने ऊपर आनेवाले संकट के बादलों को भविष्य के लिए हटाया जा सके। यही कारण था कि इराक अरब राष्ट्रों की ओर से ईरान को 'सबक' सिखाना चाहता था।

5. महाशक्तियों के स्वार्थ

इस युद्ध को भड़काने में महाशक्तियों (अमेरिका एवं रूस) का स्वार्थ छिपा था। अमेरिका अपने राजनयिक बंधकों का बदला लेने के लिए इराक के द्वारा अपना उल्लू सीधा करना चाहता था। ईरानी धार्मिक नेता अयातुल्ला खुमैनी खुलकर अमेरिका के विरुद्ध आग उगल रहे थे। इसी कारण इराक अमेरिका की ओर निरंतर झुकता जा रहा था और भारी मात्रा में शस्त्रास्त्रों के जखीरे जमा करने में भी सफल हो गया था। इधर पूर्व सोवियत रूस भी इस क्षेत्र में दोनों देशों के मध्य युद्ध चाहता था; क्योंकि उसे ईरान की सीमा से लगे अपने देश के मुसलमानों के बढ़ते संगठन से मुक्ति की संभावना थी। सोवियत संघ का एक और स्वार्थ यह भी था कि अफगानिस्तानियों, जो कि पाकिस्तान की तरह ईरान में अपने अड्डों से हमले कर रहे हैं, पर अंकुश लग जाएगा; क्योंकि ईरान स्वयं की समस्या में उलझकर इन अफगानिस्तानी लोगों को सैनिक सामग्री मुहैया नहीं करा सकेगा; और इससे रूस को

राहत मिलेगी। फारस की खाड़ी पर दोनों ही महाशक्तियाँ अपनी पैनी निगाहें लगाए रखना चाहती थीं तथा अमेरिका इस बात से भी परेशान था कि इराक रूसी साम्यवाद की ओर झुक रहा है। अतः भविष्य के लिए समस्या खड़ी हो जाएगी।

6. सीमा समस्या

ईरान तथा इराक के मध्य शत-अल-अरब को लेकर आपसी मतभेद थे, जिसके समाधान के लिए अलजीरिया के राष्ट्रपति बौमेडियन की अध्यक्षता में 6 मार्च, 1975 को एक समझौता हुआ, जिसे 'अलजीरिया समझौता' के नाम से जाना गया। इससे सीमा विवाद समाप्त हो गया। इराक ने ईरान का समान अधिकार भी स्वीकार कर लिया। किंतु इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन नहीं चाहते थे कि शत-अल-अरब पर ईरान का भी समान अधिकार रहे। वे इस बात पर जोर देते रहे थे कि शत-अल-अरब में बह रही नदियाँ इराक की हैं। अतः मुहाने पर भी इराक का अधिकार होना चाहिए। राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार बनाए रखने के लिए 17 सितंबर, 1980 को अलजीरिया समझौते को समाप्त करते हुए घोषणा की, 'अब शत-अल-अरब मार्ग से गुजरनेवाले सभी जलयान इराक का झंडा लगाकर ही गुजरेंगे।' इस प्रकार यह भी युद्ध का प्रमुख कारण बन गया; क्योंकि ईरान उसे बरदाश्त नहीं कर सकता था।

7. तात्कालिक कारण

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण कारणों के साथ ही कुछ तात्कालिक ऐसी घटनाएँ भी घटित हुईं, जिनसे युद्ध जरूरी हो गया। संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है—

1. इराक द्वारा अलजीरिया समझौते का उल्लंघन करते हुए इस क्षेत्र पर अपने अधिकार का दावा।
2. एक सामान्य धारणा फैल गई कि समस्त इसलामिक राष्ट्रों में इसलामिक कट्टरवाद पुनः स्थापित होने जा रहा है और वहाँ शासकों से प्रमुख धार्मिक नेता जवाबदेही कर सकते हैं। खुमैनी का भय या आतंक इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण बना हुआ था।
3. इराक को भी अपने यहाँ धार्मिक संघर्ष छिड़ जाने का भय हो गया था कि खुमैनी शिया संप्रदाय के लोगों को इराक में भड़काकर समस्या खड़ी कर सकते हैं।
4. अमेरिका तथा मित्र राष्ट्रों के द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों से ईरान की सैनिक क्षमता अत्यंत कमजोर हो गई थी तथा ईरान में सत्ता हथियाने के अंतरिम प्रयासों ने भी इसे शक्तिहीन बना दिया था।
5. सोवियत रूस भी अफगान समस्या में उलझा हुआ था, अतः उसने भी इराक

को ईरान के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए उकसाया और 'बाथ पार्टी' को अपनी ओर मिलाया।

6. इराक ने ईरान स्थित खुर्रम शहर पर भी अपना दावा प्रस्तुत किया।

तुलनात्मक सैन्य-शक्ति

जिस समय इस भीषण एवं भयानक युद्ध की शुरुआत होने जा रही थी, उस समय इराक तथा ईरान की कुल सैन्य-शक्ति इस प्रकार थी—

ईरानी सैन्य-शक्ति

कुल जनसंख्या	—	38.3 (मिलियन)
जी. एन. पी.	—	76.1 (मिलियन डॉलर)
रक्षा-व्यय	—	4.2 (मिलियन डॉलर)
कुल सैनिक संख्या	—	2,40,000

थलसेना (आर्मी)

कवचित डिवीजन	3
पैदल तथा मैकनाइजट डिवीजन	3
आत्मनिर्भर ब्रिगेड	4
कुशल स्थल सैनिक	1,50,000
आरक्षित सेना	4,00,000
मीडियम टैंक	1,735
कवचित वाहन	1,075
स्वचालित तोपें	482
संबद्ध तोपें	1,072

वायुसेना (एयर फोर्स)

वायुसैनिक संख्या	70,000
कुल लड़ाकू विमान	445
आक्रामक एवं बमवर्षक विमान	354
वायु प्रतिरक्षा विमान	77
निगरानीवाले विमान	14
हेलीकॉप्टर (स्थल व वायुसेना)	746

नौसेना (नेवी)

नौसैनिक संख्या	—	20,000
प्रक्षेपास्त्रयुक्त विध्वंसक	—	3
प्रक्षेपास्त्रयुक्त फ्रिगेड	—	4
कारवैड जलयान	—	4
प्रक्षेपास्त्रयुक्त गश्ती नौकाएँ	—	9
बड़ी गश्ती नौकाएँ	—	7
मैरी टाइम गश्ती वायुयान	—	6

इराकी सैन्य-शक्ति

कुल जनसंख्या	—	13.1 (मिलियन)
जी. एन. पी.	—	21.4 (मिलियन डॉलर)
रक्षा-व्यय	—	2.7 (मिलियन डॉलर)
कुल सैनिक संख्या	—	2,42,200

थलसेना (आर्मी)

कवचित डिवीजन	—	4
पैदल तथा मैकनाइजट डिवीजन	—	4
पर्वतीय डिवीजन	—	4
आत्मनिर्भर ब्रिगेड	—	3
कुशल स्थल सैनिक	—	2,00,000
आरक्षित सेना	—	2,50,000
मीडियम टैंक	—	2,600
कवचित वाहन	—	2,500
स्वचालित तोपें	—	240
संबद्ध तोपें	—	1,040

वायुसेना (एयर फोर्स)

वायुसैनिक संख्या	—	38,000
कुल लड़ाकू विमान	—	332
आक्रामक एवं बमवर्षक विमान	—	217
वायु प्रतिरक्षा विमान	—	115
निगरानीवाले विमान	—	0
हेलीकॉप्टर (स्थल व वायुसेना)	—	276

नौसेना (नेवी)

नौसैनिक संख्या	—	4,250
प्रक्षेपास्त्रयुक्त विध्वंसक	—	0
प्रक्षेपास्त्रयुक्त फ्रिगेड	—	0
कारवैड जलयान	—	0
प्रक्षेपास्त्रयुक्त गश्ती नौकाएँ	—	12
बड़ी गश्ती नौकाएँ	—	5
मैरी टाइम गश्ती वायुयान	—	0*

किसी भी युद्ध में सैन्य-शक्ति एवं संख्या के साथ-साथ उसमें निहित सैनिक नेतृत्व, युद्धाभ्यास, प्रशिक्षण, कमांड तथा नियंत्रण आदि तत्त्वों की भी विशेष भूमिका होती है। शत्रु की वास्तविक स्थिति का पता लगाकर उसी के अनुरूप कार्यवाही की जाए तो सफलता के अवसर बढ़ जाते हैं, अन्यथा असफलता का ही मुँह देखना पड़ता है। जैसे इस युद्ध के आरंभ में जहाँ इराक को सफलता मिली वहाँ ईरान ने अपनी कुशल कूटनीतिक प्रतिभा के बल पर सैन्य-संचालन करके इराकी इरादों को विफल ही नहीं कर दिया, बल्कि युद्ध का रुख ही बदल दिया। इराक के अल-कुरतब तथा अल-उजागर क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा लिया।

वास्तविक संघर्ष

जब ईरान के धार्मिक नेता अयातुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में धार्मिक एवं कट्टरवादी राष्ट्र की परिकल्पनाओं के आधार पर कार्यवाही जारी थी, तब 21 सितंबर, 1980 को अचानक इराकी नौसेना ने ईरान की 5 तोप नौकाओं को विनष्ट कर दिया तथा दूसरे दिन ही, यानी 22 सितंबर, 1980 को इराकी लड़ाकू विमानों ने ईरान के 10 शहरों पर एक साथ हवाई हमले करके ईरान सरकार को हतप्रभ कर दिया। ईरान को इस प्रकार के हमले की कतई आशंका नहीं थी। इराक ने इजराइल की भाँति ईरान को प्रथम आक्रमण में ही कमजोर करने की पद्धति अपनाई। इराक ने विवादित क्षेत्र 'शत-अल-अरब' पर चार स्थानों से हमला किया—

1. उत्तर की ओर कास-रे-शिरीन के मध्य से।
2. दक्षिण की ओर मेहरान के निकट से।
3. दक्षिण की ओर ही डेजफुल की ओर से।
4. पर्शिया की खाड़ी में खुर्रम शहर तथा अबादान के तेल बंदरगाहों की ओर से।

इराक के इस हमले के जवाब में ईरानी लड़ाकू वायुयानों ने भी जोरदार कार्यवाही

* सूचना स्रोत—आई. आई. एस. एस. (इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्ट्रेटेजिक स्टडीज) मिलिट्री बैलेंस।

की; परंतु उन्हें कोई सफलता न प्राप्त हो सकी; क्योंकि असंगठित एवं अनियंत्रित सेना इस आकस्मिक आक्रमण का सामना नहीं कर पाई। उधर इराक को आरंभ में सफलता मिलती गई और अक्टूबर 1980 के मध्य तक उसकी सेनाएँ खुर्रम शहर, डेजफुल तथा आहवाज तक पहुँच गई थीं। अबादान के प्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय बंदरगाह को भी इराकी लड़ाकू विमानों ने नष्ट कर दिया था। एक महीने के युद्ध में ही इराक ने 'शत-अल-अरब' सहित ईरान के अनेक शहरों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

इराक ने इस आक्रामक पहल के द्वारा जहाँ सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्षेत्र 'शत-अल-अरब' पर अपना अधिकार कर लिया, वहाँ कुर्द विद्रोही भी इस कार्यवाही से भयभीत एवं शांत हो गए थे। इराक के गुप्त सहयोगी राष्ट्र भी मन में प्रसन्न थे कि धार्मिक कट्टरवादी ईरानी इसलामी क्रांति का हौवा अब खड़ा नहीं हो सकेगा। खाड़ी देशों में सऊदी अरब, कुवैत, बहरीन, ओमान, संयुक्त अरब अमीरात तथा कतर आदि इराक के युद्ध को समर्थन दे रहे थे। अतः इराक ने स्थिति का जायजा लेते हुए युद्ध विराम की पेशकश ईरान के समक्ष रखी; परंतु इराक के इस रवैए से ईरान में राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के लिए 'जेहाद' के तहत सेना में तेजी से भरती ही नहीं हुई, बल्कि सेना करारा जवाब देने के लिए आमादा हो गई। ईरानी सेना ने नवंबर 1980 में ही इराकी सेना के बढ़ते कदमों पर अंकुश लगा दिया और उसे घेरने की कार्यवाही आरंभ कर दी।

जिस समय ईरानी अल्प प्रशिक्षित व मनोबलयुक्त सेना ने अपनी सैनिक कार्यवाही की, तो आरंभ में उसे अत्यधिक हानि उठानी पड़ी; परंतु उसने अपने दृढ़ इरादे एवं इराक की आपूर्ति-व्यवस्था को देखते हुए अपना सैनिक अभियान लगातार जारी रखा। खाड़ी के जो राष्ट्र इराक को सहायता दे रहे थे वे खुलकर ईरान का विरोध नहीं कर रहे थे, इसी कारण युद्ध को और तेज कर दिया था।

जनवरी 1981 में दोनों देश खुलकर एक-दूसरे के आर्थिक ठिकानों को नष्ट करने लगे। ऊर्जा के प्रमुख स्रोत तेल के भविष्य के लिए एक भीषण खतरा उत्पन्न हो गया, जिससे महाशक्तियों ने भी अपनी दखलंदाजी शुरू कर दी। ईरान ने होरमुज जल-डमरूमध्य को बंद करने की चेतावनी दे दी; जिससे महाशक्तियों की घबराहट और भी बढ़ गई। जहाँ ईरान अपने छीने गए क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने के लिए पूरी तरह से आमादा हो गया, वहाँ इराक में युद्ध की बढ़ती अवधि से घबराहट बढ़ गई।

यह एक ऐसा ऐतिहासिक युद्ध था जिसे दोनों राष्ट्रों ने अपनी यौद्धिक क्षमता के अभाव में एक लंबी अवधि तक खींचा। यद्यपि सामरिक दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व नहीं है; क्योंकि इस युद्ध में न तो विशेष प्रकार की सामरिक चालों और न ही अति आधुनिक हथियारों का प्रयोग हुआ। 8 वर्षों के इस युद्ध ने मानव के लिए आर्थिक संकट एवं अकाल मृत्यु अवश्य ही खड़ी कर दी।

अब हम संक्षेप में वर्ष के अनुसार प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करते हैं—

वर्ष 1980

सितंबर 21 इराकी नौसेना द्वारा अचानक हमला करके ईरान की 5 तोप नौकाओं को जलमग्न किया।

22 इराक ने शत-अल-अरब सहित ईरान के 10 हवाई अड्डों पर एक साथ बमबारी करके तेहरान के समस्त संपर्क साधन तोड़ दिए।

28 इराकी राष्ट्रपति ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहा कि इराकी सीमा का लक्ष्य प्राप्त हो गया है और वे युद्ध विराम के लिए तैयार हैं।

अक्टूबर 5 ईरान द्वारा इराक के युद्ध विराम प्रस्ताव को ठुकरा दिया गया।

6 जोरदार संघर्ष शुरू तथा ईरान के खुर्रम शहर को इराकी सेनाओं द्वारा घेर लिया गया।

11 इराकी सेनाओं की सफलता जारी रही और वे करुन नदी को पार कर गईं।

15 ईरान ने होरमुज जलडमरूमध्य को बंद करने की धमकी दी।

23 इराकी सेनाएँ खुर्रम शहर, डेजफुल तथा आहवाज तक पहुँच गई थीं।

25 इराक द्वारा प्रक्षेपास्त्रों का प्रयोग किया गया।

नवंबर 10 ईरान ने इराकी सेना का प्रबल प्रवाह रोक दिया और उसको पीछे से घेरने की तैयारी भी शुरू कर दी।

18 ईरान में सेनाओं का तेजी के साथ गठन किया जाने लगा।

24 ईरान-इराक युद्ध ने एक नया मोड़ ले लिया; क्योंकि एक-दूसरे के तेल ठिकानों को अपना लक्ष्य बनाया जाने लगा।

दिसंबर 30 ईरानी कमांडोज ने इराक की तेल लेडिंग क्षमताओं को नष्ट किया।

7 इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने घोषणा की कि उनकी सेना ने सभी सीमांतों पर अपना अधिकार कर लिया है; परंतु अब उनकी सेनाएँ आक्रमण के लिए आगे नहीं बढ़ेंगी और प्रतिरक्षात्मक कूटयोजना को अपनाएँगी।

11 हवाई आक्रमण थम गया तथा कई सप्ताह तक किरकुक की तेल सुविधा को रोककर ईरान ने एक सफलता प्राप्त कर ली।

12 तोपखानों का खुलकर प्रयोग शुरू हो गया तथा ईरान ने आक्रामक स्थिति अपना ली थी।

वर्ष 1981

जनवरी 5 ईरान ने अपना पहला जवाबी आक्रमण किया, किंतु अल्प प्रशिक्षित ईरानी सैनिक भारी संख्या में हताहत हुए और ईरान को यह अनुभव हुआ कि उसकी सैन्य-शक्ति की अपेक्षा इराक की सैन्य-शक्ति अधिक है।

11 ईरान को इस बात का पता लगा कि बढ़ती हुई इराकी सेना की पीछे से सहायता की कोई उचित व्यवस्था नहीं है।

फरवरी 18 ईरान के नेतृत्व ने अब दीर्घकालीन युद्ध की तैयारी आरंभ कर दी और सीमा की मुठभेड़ों को विस्तार से लड़े जाने का प्रयास किया।

मार्च 19 ईरान द्वारा ससनगर्द पर असफल आक्रमण किया गया।

27 ईरानी वायुसेना ने अपनी तीव्र कार्यवाही के द्वारा इराक के लिए रुकावटें डालनी शुरू कर दीं, ताकि वह अपना संतुलन खो बैठे।

अप्रैल 4 ईरान ने वायुसेना की आक्रामक कार्यवाही के द्वारा इराक के भीतरी भागों में प्रवेश करके उसके 46 विमानों को जमीन में ही ध्वस्त कर देने का दावा किया।

जून 28 युद्ध विराम की इराकी पेशकश को पुनः ईरान द्वारा ठुकरा दिया गया।

जुलाई 12 ईरानी हवाई हमले के द्वारा इराक को पुनः भारी नुक़सान उठाना पड़ा।

सितंबर 27 ईरानी सेनाओं द्वारा अबादान की घेराबंदी को तोड़ दिया गया और इराकी सेनाएँ करुन नदी के पश्चिम की ओर मुड़ गईं।

30 इराक ने दावा किया कि गोरेह स्थित आयल पंपिंग स्टेशन की हड़ताल को खर्ग के ईरानी टर्मिनल द्वारा सहायता प्रदान की जा रही है।

नवंबर 5 मुहर्रम पर इराकी युद्ध विराम की पेशकश को पुनः ईरान द्वारा ठुकरा दिया गया।

29 ईरान ने इराक पर येरूसलम मार्ग से कार्यवाही करनी शुरू कर दी, जो एक सप्ताह तक चली।

दिसंबर 8 ईरान ने इराकी हवाई हमले के जवाब में उसके ऊर्जा केंद्रों पर तेजी से बमबारी की।

19 दोनों राष्ट्रों के मध्य जोरदार संघर्ष जारी हो गया और ईरान ने पहली बार ताश के पत्तों की तरह तुरुप चाल चली।

वर्ष 1982

मार्च 22 यह युद्ध का तृतीय चरण था। जिसमें 11 दिन की आक्रामक स्थिति में ईरानी सेना ने डेजफुल शुश क्षेत्र से इराकी सेना को खदेड़कर पुनः अपना अधिकार जमा लिया। इस युद्ध में ईरान ने समरतांत्रिक एवं विस्मयपूर्ण आक्रमण के द्वारा कार्यवाही की।

अप्रैल 12 इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने घोषणा की कि इराक अपनी सेनाओं को मोरचे से हटा लेगा, यदि ईरान युद्ध विराम की गारंटी ले।

24 ईरान ने एक सप्ताह में ही सीमा से लगे 35 किलोमीटर के भाग को पुनः प्राप्त कर लिया, जो हुसैनियाँ तथा खुर्रम शहर के बीच में स्थित था।

30 ईरान ने इराकी युद्ध विराम की पेशकश के उत्तर में पुनः आक्रामक कार्यवाही की।

मई 3 ईरान ने अपनी वायु शक्ति को इराकी काउंटर अटैक के जवाब में आक्रामक एवं प्रतिरक्षात्मक स्थिति अपनाकर पहल की।

7 लगभग 60,000 ईरानी सैनिक तथा 200 टैंक तेहरी तथा हलोब के पास करुन नदी के पश्चिमी किनारे पर तैनात कर दिए गए।

9 होवेजेह के प्रमुख मार्ग काटकर इराकी सेना को तितर-बितर करके ईरान ने एक प्रमुख सफलता प्राप्त कर ली।

12 ईरान ने 'शत-अल-अरब' के निकट खुजेस्तान पर अपना अधिकार जमा लिया, जो बसरा से केवल 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित था।

21 खुर्रम शहर के लिए वास्तविक लड़ाई आरंभ हुई।

24 ईरान ने पुनः खुर्रम शहर पर अपना अधिकार जमा लिया, जो इराक के अधिकार में बचा था। इसमें लगभग 12,000 इराकी सैनिक बंदी बना लिये गए।

29 ईरान ने 'शत-अल-अरब' के बीच से होते हुए इराकी सुविधाओं को समाप्त करने का अपना अभियान तेज कर दिया।

जून 10 इराक ने पुनः युद्ध विराम की घोषणा की; परंतु ईरान द्वारा इसे भी ठुकरा दिया गया।

20 इराक ने घोषणा की कि सभी इराकी सेनाएँ 10 दिन के अंदर ही अपनी धरती पर होंगी।

28 ईरान ने निम्न शर्तों पर युद्ध विराम की पेशकश की—

(i) इराक 1975 के समझौते के आधार पर सीमा पर समान अधिकार स्वीकार करे।

(ii) इराक बगदाद द्वारा निकाले गए 1,00,000 इराकी लोगों को वापस बुलाए।

(iii) इराक 100 मिलियन डॉलर युद्ध के हरजाने के रूप में देना स्वीकार करे।

यदि इराक इन शर्तों को स्वीकार नहीं करता तो इराक पर आक्रमण अभियान जारी रहेगा।

जुलाई 13 बसरा को इराक से अलग करने के लिए ईरान ने अपना प्रथम हवाई हमला किया।

21 इराक को परेशान करने के लिए दूसरा हवाई हमला किया, जो 8 कि.मी. के क्षेत्र में फैला रहा।

28 ईरान द्वारा तीसरा हवाई हमला किया गया; जिसमें इराकी सेना को भारी हानि उठानी पड़ी।

अगस्त 2 लगातार हवाई हमलों से ईरान को कुछ लाभ अवश्य ही मिल गया; परंतु उसे इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी।

सितंबर 30 ईरान ने आक्रामक कार्यवाही कसर-ई-शिरीन कस्बे की सीमा में की, जहाँ इराकी मंडली की प्रमुख प्रतिरक्षात्मक टुकड़ियाँ तैनात थीं। उसमें दोनों पक्षों को भारी हानि हुई।

अक्टूबर 10 द्वितीय आक्रमण अभियान जारी हुआ, जिससे युद्ध पूरी तरह से खुलकर लड़ा जाने लगा।

नवंबर 2 ईरान ने जगरोस पहाड़ी के सबसे छोटे टीले को पार कर तथा फूका के निकट पार करते हुए एक नया आक्रमण इराक पर कर दिया, जिसमें कुछ हद तक उसे सफलता भी प्राप्त हुई।

वर्ष 1983

फरवरी 16 ईरानी आक्रामक कार्यवाही मुसियान के दक्षिणी क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी।

अप्रैल 17 अभारा के निकट दक्षिणी क्षेत्र में भी ईरानी आक्रमण असफल रहा।

जून 7 इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने पुनः युद्ध विराम की पेशकश की; परंतु ईरान द्वारा इस बार भी इसे नामंजूर कर दिया गय।

जुलाई 20 इराकी विदेशमंत्री तारिक अजीज ने घोषणा की कि इराक ईरान के तेल पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए युद्ध जारी रखेगा।

30 कुर्दिस्तान के क्षेत्र में ईरानी सेना ने हमला किया और इराक में 9 मील अंदर तक प्रवेश कर गई तथा हज ओमरान की रक्षा के लिए तैनात सेना को भी अपने अधीन कर लिया।

अगस्त 9 मेहरान के क्षेत्र के केंद्रीय मोरचे पर ईरानी आक्रमण सफल नहीं हो सका।

अक्टूबर 20 पेंजविन क्षेत्र को प्राप्त करने के लिए उत्तर की ओर की गई ईरानी आक्रामक कार्यवाही का प्रथम चरण आरंभ हुआ।

नवंबर 21 ईरानी सेनाओं द्वारा उत्तर की ओर की गई आक्रामक कार्यवाही के द्वारा इराकी सेनाओं को केवल कुछ किलोमीटर तक ही पीछे की ओर ढकेला जा सका।

दिसंबर 11 इराक ने अपनी पराजय का अनुभव करते हुए ईरान के आर्थिक क्षेत्रों को अपना लक्ष्य बनाना शुरू कर दिया। तेल के लगातार निर्यात में कमी आने के कारण दोनों देशों को आर्थिक संकट से गुजरना पड़ रहा था। परंतु अपनी साख बनाए रखने के लिए युद्ध जारी रखना था।

वर्ष 1984

फरवरी 7 जमीनी जंग की पुनः शुरुआत हो गई, जिसमें ईरान को बसरा के निकट मार्सलैंड पर अधिकार करने में सफलता मिली। इराक को 15 कि.मी.

पीछे ढकेल दिया तथा बसरा एवं बगदाद के प्रमुख सड़क मार्ग पर अधिकार करने की धमकी भी दी।

फरवरी 15 ईरानी सेना की सबसे बड़ी आक्रामक कार्यवाही शुरू कर दी गई; किंतु इसमें कोई विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी।

फरवरी 24 ईरान के द्वारा इराक के विरुद्ध कार्यवाही हेतु ऑपरेशन 'खैबर' की योजना बनाई गई।

मार्च 27 इराक ने घोषणा की कि वह अपने अत्यंत घातक एक्सोसेट हथियारों का पहली बार प्रयोग कर रहा है।

अप्रैल 18 एक नवीन युद्ध की धारा उस समय प्रवाहित हुई जब खर्ग के बाहर पैनामियन टैंकर को इराक द्वारा नष्ट कर दिया गया।

मई 27 ईरान ने कुवैत के टैंकर को भी बहरीन के निकट नष्ट कर दिया।

अक्टूबर 22 इराक ने पुनः अपने हवाई हमले शुरू कर दिए, जिससे ईरान-इराक युद्ध ने एक बार फिर खतरनाक मोड़ ले लिया।

नवंबर 17 संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा लगातार शांति प्रयास जारी रहे। परंतु कोई निश्चित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

वर्ष 1985

फरवरी 28 इराक द्वारा प्रथम आक्रमण 1980 के बाद केंद्रीय कमांड के विरुद्ध किया गया, परंतु सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

मार्च 11 ईरानी सेनाओं द्वारा बसरा के क्षेत्र में जोरदार आक्रमण किया गया; परंतु इसका भी कोई सफल परिणाम नहीं रहा।

25 दोनों पक्षों के द्वारा नागरिक ठिकानों पर भी हमले किए जाने लगे, जो एक लंबे समय तक यानी 30 जून तक जारी रहे। लेकिन इन हमलों की कार्यवाही सीमित ही रही।

जून 5 सऊदी लड़ाकू विमान, जो अवाक्स तथा अमेरिकी वायुसेना द्वारा संचालित किया जा रहा था, ने ईरान के एक लड़ाकू विमान को खाड़ी के मध्य क्षेत्र में मार गिराया।

10 कुवैत के एक टैंकर को कतर के पास ईरानी सेनाओं द्वारा नष्ट कर दिया गया।

20 अमेरिका ने घोषणा की कि सऊदी अरब ने एक 'वायु प्रतिरक्षात्मक बाधा क्षेत्र' में एफ-15 लड़ाकू विमानों, जिन्हें अवाक्स द्वारा संचालित किया जा रहा है, को इस क्षेत्र में घूमने की पूरी अनुमति दे दी है।

अगस्त 16 खुर्रम द्वीप के लिए ईरानी वायुसेना की आक्रामक कार्यवाही लगातार जारी रही, जो लगभग दो माह तक चली।

दिसंबर 28 खर्ग द्वीप पर नौसेना के द्वारा भी ईरानी सेना की कार्यवाही जारी रही।

वर्ष 1986

फरवरी 9 ईरानी सेनाओं द्वारा इराक के दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया गया।

24 ईरानी सेनाओं की लगातार आक्रामक कार्यवाही के द्वारा ही उसे फा पेनिनसुला पर अधिकार कर लेने में सफलता प्राप्त हुई।

25 ईरान ने इराक के कुर्द क्षेत्र पर आक्रमण किया तथा सुलेमनियेह से कुछ मील तक पीछे ले गए और इसके बाद पीछे ढकेल दिया।

मई 17 इराक के द्वारा मेहरान क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया गया। इराक द्वारा पर्यटन व्यापार की पेशकश की गई; परंतु ईरान ने इसे नामंजूर कर दिया।

जुलाई 9 मेहरान के क्षेत्र पर इराक द्वारा पुनः अधिकार कर लिया गया।

अगस्त 12 इराक द्वारा होर्मुज की घाटी के 150 मील उत्तर की ओर ईरान के सिर्री द्वीप पर स्थित आयल टर्मिनल पर सफलतापूर्वक हवाई कार्यवाही की गई।

सितंबर 1 ईरान द्वारा कुर्द क्षेत्र पर पुनः आक्रमण किया गया।

3 ईरानी सेनाओं ने करबला संक्रिया के द्वारा पेनिनसुला पर्यटन क्षेत्र पर जोरदार आक्रमण किया।

वर्ष 1987

फरवरी 18 तेल के निर्यात में टैंकरों पर हो रहे आक्रमण से सर्वाधिक हानि कुवैत को हो रही थी। इसलिए उसने अमेरिका तथा सोवियत संघ से सुरक्षा हेतु सहायता का अनुरोध किया।

मार्च 5 अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने ईरान शस्त्र सौदे में गलती को स्वीकार किया।

जुलाई 21 संयुक्त राष्ट्रसंघ में ईरान-इराक के मध्य चले आ रहे 7 वर्षों के युद्ध को रोकने के लिए प्रस्ताव संख्या 598 पारित किया गया।

नवंबर 5 ईरान की गनबोट द्वारा संयुक्त राज्य के टैंकर पर गोलाबारी की गई।

वर्ष 1988

जनवरी 17 अमेरिका ने ईरान पर शांतिवार्त्ता के लिए दबाव डालने की नीति अपनाई।

फरवरी 8 अमेरिका ने खाड़ी में तैनात अपने युद्धपोतों से ईरान के तेल संयंत्रों पर बमबारी की और ईरानी युद्ध नौकाओं की गति पर अंकुश लगा दिया।

मार्च 13 अमेरिका द्वारा इराक को गुप्तचर सहायता प्रदान की जाने लगी, जिससे इराक ने अपने खोए हुए क्षेत्रों पर पुनः अधिकार प्राप्त कर लिया।

जुलाई 3 संयुक्त राज्य के नेवी कंबेट शिप विनसेन्नेस ने पर्शियन खाड़ी पर गलती से ईरान की एक एयरबस को मार गिराया, जिससे 290 यात्री मारे गए।

27 संयुक्त राष्ट्रसंघ मध्यस्थता में ईरान-इराक युद्ध समाप्ति के लिए न्यूयार्क में बातचीत शुरू हुई।

अगस्त 20 संयुक्त राष्ट्रसंघ की मध्यस्थता में ईरान-इराक के मध्य चले आ रहे 8 वर्षों के युद्ध की समाप्ति हो गई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रस्ताव

21 जुलाई, 1987 को पारित प्रस्ताव संख्यां 598 को दोनों पक्षों द्वारा आखिर 20 अगस्त, 1988 को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया गया। प्रस्ताव इस रूप में पारित किया गया था—

—माँग की जाती है कि ईरान-इराक युद्ध विराम की घोषण करके बातचीत के द्वारा समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास करें।

—संयुक्त राष्ट्र महासचिव से अनुरोध किया जाता है कि वे संयुक्त राष्ट्र पर्यवेक्षण दल को युद्ध विराम की पुष्टि तथा देख-रेख के लिए भेजें।

—महासचिव से अनुरोध किया जाता है कि वे ईरान-इराक से बातचीत करके निरपेक्ष दल, जिस पर दोनों को विश्वास हो, बनाएँ जो यह बता सके कि युद्ध के लिए कौन उत्तरदायी है?

—महासचिव से अनुरोध है कि ईरान-इराक तथा इस क्षेत्र के अन्य राष्ट्रों से संपर्क करके इस क्षेत्र में सुरक्षा एवं शांति बनाए रखने के उपाय आँकें।

इस प्रकार 25 अगस्त, 1988 को संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव जेवियर पेरेज दा कुइयार की उपस्थिति में ईरान-इराक में जेनेवा में प्रत्यक्ष बातचीत आरंभ हो गई। इराक-कुवैत युद्ध आरंभ होने के पूर्व इराक ने सभी ईरानी युद्धबंदियों को भी बिना शर्त रिहा कर दिया।

परिणाम

इस लंबे समय तक लड़े जानेवाले युद्ध में जहाँ लाखों की संख्या में दोनों देशों के सैनिक एवं नागरिक काल-कवलित हो गए, वहाँ दोनों राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था भी बुरी तरह से चरमरा गई। इस युद्ध में सैनिक ठिकानों के साथ ही आर्थिक स्रोतों को भी अपना लक्ष्य बनाया गया। सऊदी अरब और कुवैत ने इराक को इस युद्ध के दौरान 10 अरब डॉलर प्रतिवर्ष की आर्थिक सहायता प्रदान की। जब यह कर्ज वापस देने की नौबत आई तो इराक ने कुवैत को अपने अधीन करने की नाकाम कोशिश की। इस युद्ध ने सैनिक दृष्टिकोण से सद्दाम हुसैन को अवश्य ही तानाशाह बना दिया था; जिसके कारण तेल की कीमत बढ़ गई तथा अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए इस युद्ध के

सहायक देशों को ही आँखें दिखाईं।

सैन्य शिक्षाएँ

समरतांत्रिक दृष्टिकोण से यह युद्ध कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता; परंतु ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर इसकी विशेष भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। अब हम संक्षेप में इस युद्ध की सैन्य शिक्षाओं का उल्लेख करते हैं—

1. किसी भी युद्ध के लिए सर्वप्रथम लक्ष्य का निर्धारण तथा उसी के अनुरूप निर्वाह करना चाहिए; तभी सफलता मिलती है, अन्यथा युद्ध को बिना किसी निर्णय के ही इस युद्ध की भाँति लंबा चलाया जा सकता है।
2. किसी भी कार्यवाही में सफलता पाने के लिए आवश्यक है कि शत्रु की हर हरकत पर निगरानी रखी जानी चाहिए; इसमें जब भी ढील हुई तो पराजय के भी अवसर बढ़ जाते हैं; जैसाकि प्रथम अभियान में इराक को सफलता मिली; परंतु बाद में पुनः जीते हुए क्षेत्र भी खोने पड़े।
3. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि आक्रामक कार्यवाही के द्वारा ही शत्रु के क्षेत्र पर अधिकार किया जा सकता है; जैसे प्रारंभ में ही इराक ने आक्रामक कार्यवाही अपनाकर ईरान के 'शत-अल-अरब' क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया। इसी कारण ईरान ने भी आक्रामक कार्यवाही अपनाकर जवाबी कार्यवाही की थी।
4. किसी यौद्धिक कार्यवाही के कुशल संचालन के लिए आवश्यक है कि आपूर्ति-व्यवस्था को बनाए रखा जाए। इसके अभाव में असफलता ही हाथ लगती है; जैसे इस युद्ध के दौरान इराक को एक बार भारी हानि उठानी पड़ी थी; क्योंकि उसकी आपूर्ति-व्यवस्था ठप्प पड़ गई थी।
5. किसी भी कार्यवाही में जहाँ श्रेष्ठ नेतृत्व की आवश्यकता होती है वहाँ सैनिकों की आपूर्ति के लिए पर्याप्त शस्त्रास्त्र भी होने चाहिए; जैसे इस युद्ध का लंबी अवधि तक चलने का प्रमुख कारण था कि दोनों राष्ट्र ही हथियारों के आयात पर निर्भर थे। जब हथियार समाप्त हो जाते तो प्रतीक्षा करते और युद्ध का निर्णय अधर में ही लटककर रह जाता।
6. युद्ध में सफलता का प्रमुख आधार विशाल सैन्य-शक्ति एवं शस्त्रास्त्रों पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि उस देश के नागरिकों की भावना एवं एकता भी महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करती है, नहीं तो ईरान तुरंत ही आत्मसमर्पण कर गया होता।
7. किसी भी युद्ध में शत्रु को धोखे में डालकर कार्यवाही करने पर सफलता के अवसर अधिक बढ़ जाते हैं; जैसे इस युद्ध में ईरान ने इराक पर हमेशा अप्रत्याशित आक्रमण किया और इसी कारण इराक को अनेक मोरचों पर

पराजय देखनी पड़ी।

8. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि महाशक्तियाँ स्वार्थवश अपनी इच्छानुसार युद्ध लड़ने के लिए मजबूर करती हैं, अतः विकासशील राष्ट्रों को चेतावनी मिल गई, जब तक वे स्वावलंबी नहीं होंगे, वे जीती हुई बाजी हार सकते हैं।
9. सफलता के लिए श्रेष्ठ साधनों के साथ-ही-साथ उच्च श्रेणी की समरतांत्रिक चालों का अपनाया जाना भी विशेष महत्त्वपूर्ण एवं हितकारी होता है।

खाड़ी युद्ध
(1990-91 ई.)

पश्चिम एशिया क्षेत्र विगत अनेक वर्षों से युद्ध की खींचतान में उलझा था, किंतु इस बार अमेरिका ने प्रत्यक्ष रूप से इसे अपनी प्रतिष्ठा के साथ जोड़ा और एक महाविनाश का खतरनाक खेल खेला। इस क्षेत्र का युद्ध से जुड़ने का प्रमुख कारण इराक, इजराइल, ईंधन, इसलाम और ईरान रहा है। इराक-कुवैत विवाद की जड़ एक यह भी थी कि 1923 में इराक-कुवैत का सीमांकन सही रूप में नहीं किया गया था, इसी कारण इराक के प्रधानमंत्री नूरी असअद ने 1954 में कुवैत को बगदाद समझौते में शामिल करने का सुझाव दिया; ताकि सीमा समस्या का हल किया जा सके। इराक ने कुवैत के समक्ष यह भी प्रस्ताव रखा कि वह इराक को बारवाह द्वीप दें दे तथा इसके बदले में इराक उसे शत-अल-अरब दरिया का पेयजल प्रदान करता रहेगा, किंतु कुवैत ने इसे स्वीकारा नहीं।

25 जून, 1961 को जब ब्रिटेन द्वारा कुवैत को पूर्ण स्वतंत्र राज्य घोषित किया गया तो तत्कालीन इराकी प्रधानमंत्री अब्दुल करीम कासिम ने यह घोषणा कर दी कि उन्हें कुवैत की स्वतंत्रता स्वीकार नहीं और कुवैत इराक का अंग है। इस प्रतिक्रिया पर कुवैत के शेख ने 7 जुलाई, 1961 को लगभग 6,000 सैनिक ब्रिटेन से बुलाकर सीमा पर तैनात कर दिए। 17 जून, 1961 में 'ब्रिटेन-कुवैत संधि' के आधार पर कुवैत ने ब्रिटिश सैनिक सहायता प्राप्त की थी। प्रधानमंत्री अब्दुल करीम कासिम के अपदस्थ होने पर मामला शांत हो गया। 1973 ई. में अस-समिथ नामक सीमा-क्षेत्र पर कुवैत-इराक के मध्य सैनिक झड़पें हुईं, जिससे विवाद की जड़ों को विकसित होने का अवसर मिलता रहा। इराक-कुवैत के मध्य अस्पष्ट सीमा बुबियान और बारवाह द्वीप विवाद के मुख्य कारण रहे।

इस युद्ध की शुरुआत हेतु कुछ तात्कालिक कारण भी उत्तरदायी थे; जैसे—इराक 8 वर्षों तक ईरान से युद्ध में उलझा रहा था, जिससे उसकी अर्थव्यवस्था को गहरा आघात लगा था जिसे संतुलित करने के लिए कुवैत पर आरोप लगाया कि कुवैत ने रुमाइल्ला संयुक्त तेल क्षेत्र से 24 अरब डॉलर तेल की चोरी की है तथा उस क्षेत्र पर सैनिक अड्डा बनाने का प्रयास कर रहा है। दूसरा आरोप था कि कुवैत तथा संयुक्त अरब अमीरात ने तेल का अधिक उत्पादन किया तथा मूल्य भी कम दिया, जिससे इराक को 14 अरब डॉलर की हानि हुई। कुवैत ने 'ओपेक' द्वारा निर्धारित कोटे में 25% वृद्धि

की; जिससे विश्व-बाजार में तेल की कीमत में कमी आई। इस आरोप का वास्तविक उद्देश्य यह था कि इराक कुवैत तथा अन्य देशों द्वारा लिये गए कर्ज को चुकाने से बचना चाहता था, जिसे ईरान-इराक युद्ध के दौरान लिया था।
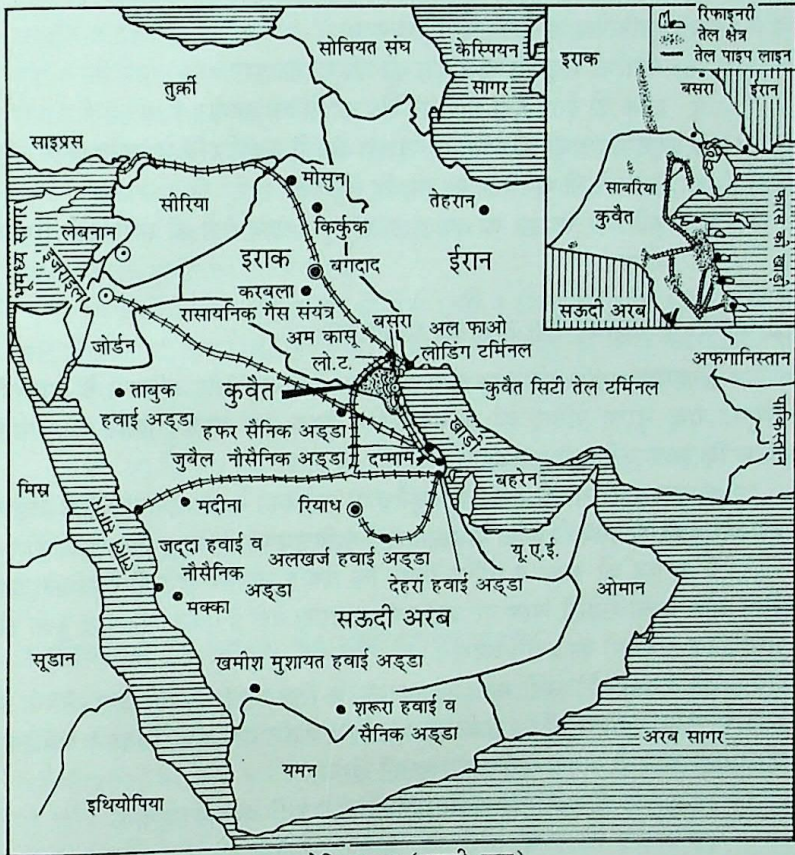
इराक-अमेरिका युद्ध (खाड़ी-युद्ध)

इस युद्ध का एक प्रमुख कारण यह भी था कि इराक के पास बसरा को छोड़कर कोई महत्त्वपूर्ण तेल टर्मिनल खाड़ी क्षेत्र में नहीं है। अतः कुवैत के बुबियान तथा बारवाह द्वीपों पर अधिकार जमाना सामरिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से इराक के हित में था; क्योंकि इससे उसे चौड़ा जलमार्ग मिल जाता। यदि हम संक्षिप्त में कहें तो युद्ध के प्रमुख कारण निम्न थे—

1. तेल राजनीति।

2. इराक की आर्थिक विपन्नता और कुवैत की आर्थिक संपन्नता
3. सद्दाम हुसैन की हठवादिता।
4. इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन की त्रुटिपूर्ण सामरिक एवं राजनीतिक योजना।
5. अमेरिका के अंकुश के इशारे से चलता राष्ट्रसंघ।
6. गुटनिरपेक्ष आंदोलन की निष्क्रियता।
7. अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश की प्रतिष्ठा का प्रश्न।
8. इराक को ईरान तथा सोवियत संघ का नैतिक सहयोग।
9. यूरोपीय राष्ट्रों की पश्चिमी एशिया क्षेत्र में बढ़ती रुचि के कारण फ्रांस तथा ब्रिटेन ने भी अमेरिका का समर्थन किया।
10. कुवैत की समस्या को इजराइल अधिकृत अरब क्षेत्रों की समस्या से संलग्न करना।

2 अगस्त से दिसंबर '90 तक का घटनाक्रम

2 अगस्त, 1990 को इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण और अधिकार के साथ ही संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की आपातकालीन बैठक तथा प्रस्ताव संख्या 660 पास किया कि इराक कुवैत को तुरंत खाली करे।

8 अगस्त को सऊदी अरब के अनुरोध पर अमेरिका ने अपनी सेना भेजनी आरभ की और आज ही इराक ने कुवैत के अपने राष्ट्र में विलय की विधिवत् घोषणा कर दी।

9 अगस्त को इराक ने घोषित किया कि स्थिति सामान्य होते ही सेना को हटा लेगा और उसका सऊदी अरब पर आक्रमण का इरादा नहीं है; किंतु यदि युद्ध हुआ तो रासायनिक हथियारों का प्रयोग करेगा।

11 अगस्त को सऊदी अरब की सहायता के लिए मिस्र, मोरक्को तथा सीरिया ने सेना भेजने की घोषणा की। 12 अगस्त को ईरान, जोर्डन तथा ट्यूनीसिया ने अमेरिका को सऊदी अरब से अपनी सेना वापस बुलाने को कहा।

14 अगस्त को अमेरिकी अस्त्रों सहित सेना सऊदी अरब में पहुँची।

17 अगस्त को इराक के विरुद्ध आर्थिक नाकेबंदी को लागू करवाने के लिए नाकेबंदी की घोषणा अमेरिका ने की। 21 अगस्त को खाड़ी युद्धवार्त्ता का इराकी प्रस्ताव अमेरिका ने ठुकरा दिया।

24 अगस्त को इराकी सेनाओं ने कुवैत में स्थित पश्चिमी दूतावासों को घेर लिया; जिससे पश्चिमी राष्ट्र एकजुट हो गए।

28 अगस्त को इराक ने कुवैत को अपना उन्नीसवाँ राज्य घोषित कर दिया। इस प्रक्रिया से तनाव निरंतर बढ़ता गया।

9 सितंबर को फिनलैंड में अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश तथा सोवियत राष्ट्रपति

गोर्बाचोव की शिखर वार्त्ता तथा आज ही ईरान एवं इराक के मध्य चले आ रहे युद्ध को औपचारिक रूप से समाप्त करने की घोषणा तथा युद्धबंदियों की रिहाई की घोषणा। शांति के लिए प्रयास जारी और 'तेल के लिए खून नहीं' का नारा गूँज रहा था। युद्ध रोकने के निरंतर बढ़ते दबाव।

1 अक्टूबर को सद्दाम हुसैन ने 'अरबों की धरती से विदेशी वापस लौटें' की आवाज उठाई। 5 अक्टूबर को इराक ने कहा कि उनका देश आत्मसमर्पण की बजाय युद्ध करना पसंद करेगा। 26 अक्टूबर को अमेरिका ने सऊदी अरब में एक लाख और सैनिक तैनात करने का निर्णय लिया।

6 नवंबर को अमेरिकी विदेशमंत्री जेम्स बेकर और सऊदी अरब के शाह फैद की वार्त्ता। 29 नवंबर को सुरक्षा परिषद् ने प्रस्ताव संख्या 678 पारित करके इराक के विरुद्ध सभी आवश्यक कदम उठाने की अनुमति दी तथा 15 जनवरी तक का समय दिया कि इराक तब तक कुवैत को खाली कर दे।

23 दिसंबर को खाड़ी परिषद् के सभी राष्ट्रों ने इराक को कुवैत खाली करने की कड़ी चेतावनी दी तथा निर्धारित तिथि 15 जनवरी के पश्चात् हर संभव कदम उठाने को कहा। दूसरी ओर इराकी राष्ट्रपति ने कहा कि यदि युद्ध हुआ तो उनका पहला आक्रमण इजराइल पर होगा।

इस वर्ष के अंत तक विश्व की निगाहें लगातार इराक की ओर टकटकी लगाकर देख रही थीं कि इराक निर्धारित तिथि से पूर्व शायद अपनी हठता छोड़कर एक महाविनाश को टाल दे, अन्यथा अहं के टकरावों से मानवीय मूल्यों को भारी आघात अवश्य लगेगा।

2 जनवरी से 16 जनवरी '91 तक का घटनाक्रम

खाड़ी संकट की शुरुआत अगस्त 1990 से शुरू हो गई थी; परंतु इसका भीषण प्रकोप जनवरी से अपने रंग दिखाने लगा था। अंततः रंगों की सुर्खियाँ लाल रंग में 17 जनवरी, 1991 को स्पष्ट रूप से ही नहीं दिखाई दीं; बल्कि खून के धब्बे की तरह अंकित हो गईं। अब हम संक्षिप्त में युद्ध से पूर्व जनवरी-फरवरी मास में कब, कहाँ और क्या हुआ? उसका उल्लेख करते हैं—

2 जनवरी—'नाटो' की रक्षा योजना समिति ने अपने राष्ट्र तुर्की की इराक के संभावित खतरे के विरुद्ध बेल्जियम, जर्मनी, इटली के युद्धक विमानों को दक्षिणी-पूर्वी तुर्की पर तैनात किया।

3 जनवरी—इस्लामाबाद में पाकिस्तान, ईरान एवं तुर्की के विदेशमंत्रियों की एक दिवसीय त्रिपक्षीय वार्त्ता में कुवैत से इराक की वापसी, संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों तथा इस्लामिक कान्फरेंस संगठन की घोषणा के अनुरूप कुवैत की संप्रभुता व स्वतंत्रता की पुनः बहाली का प्रस्ताव पारित किया गया।

अमेरिका के अधीन प्रक्षेपास्त्रों की श्रेणी

जमीन से हवा में मार करनेवाले (S.A.M)	हवा से जमीन में मार करनेवाले (A.S.M)	हवा से हवा में मार करनेवाले (A.A.M)	टैंकों को मार गिरानेवाले (A.T.M)
1. पैट्रियाट (यू. एस. ए)	1. कॉरमोरेन (जर्मनी)	1. ए. आई. एम. फोनिक्स (यू. एस. ए.)	1. हैल्फायर (यू. एस. ए.)
2. हॉकि (यू. एस. ए)	2. पेव वे II (यू. एस.)	2. ए. आई-एम 9 स्पैरो (यू. एस. ए.)	2. टी (यू. एस. ए.)
	3. हार्म (यू. एस. ए.)	3. ए. आई. एम.—7 एम साइड विंडर (यू. एस. ए.)	3. स्विंगफायर (ब्रिटेन)
	4. एक्सोसेट (फ्रांस)		4. टॉमहाक-क्रूज मिसाइल (यू. एस. ए.)
	5. हारपून (यू. एस. ए.)		
	6. एर्लाम (ब्रिटेन)		
	7. पैंग्विन (नार्वे)		
	8. मैविरिक (यू. एस. ए.)		
	9. हैलफायर (यू. एस. ए.)		

अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने जेनेवा में इराक के विदेशमंत्री तारिक अजीज से बातचीत करने के लिए अपने विदेशमंत्री जेम्स बेकर को भेजने की घोषणा की।

4 जनवरी—अमेरिकी विदेशमंत्री जेम्स बेकर ने इराक को चेतावनी दी कि वह कुवैत से हट जाए, अन्यथा इसके बुरे परिणाम भुगतने होंगे। अपनी निर्धारित 15 जनवरी के संकट का हवाला भी दिया।

ऑर्गनाइजेशन ऑफ इस्लामिक कान्फरेंस (ओ.आई.सी.) के विदेशमंत्रियों ने घोषणा की कि "इराक इस्लामी एकता की भावना पर चलते हुए कुवैत से बिना शर्त हटकर क्षेत्र को एक बड़ी विपत्ति से बचा ले।"

इराक ने जेनेवा में अपने विदेशमंत्री तारिक अजीज को अमेरिकी विदेशमंत्री जेम्स बेकर के साथ बातचीत करने की सहमति प्रकट की।

5 जनवरी—अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने पुनः इराक को तुरंत कुवैत खाली करने की चेतावनी दी।

संयुक्त राष्ट्र महासभा के अध्यक्ष गुड्डो डे मार्को ने इस मसले पर विचार करने के लिए अंतरराष्ट्रीय शांति सम्मेलन का आह्वान किया।

खाड़ी युद्ध की तैयारियाँ इराक तथा विदेशी सैन्य संगठन की तरफ से तेजी से चल रही थीं।

6 जनवरी—इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने अपनी सेना से युद्ध करने हेतु तैयार रहने को कहा तथा कुवैत आइंदा भी इराक के मातहत और इराक के भूगोल व राजनीतिक प्रासाद का एक अभिन्न अंग बना रहेगा—कहा।

जापान के पूर्व प्रधानमंत्री यासुहिरो नाकासोने ने खाड़ी समस्या के समाधान हेतु बगदाद में एक अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधि मंडल भेजने का सुझाव दिया।

7 जनवरी—पुर्तगाल के प्रधानमंत्री कावाको सिल्वा ने विपक्षी नेताओं से वार्त्ता में खाड़ी समस्या पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों तथा मिली-जुली कार्यवाही का समर्थन किया और सहयोग के लिए तत्परता जताई।

नार्वे के विदेशमंत्री थोर्वाल्ड सोल्टर्न बर्ग ने कहा कि पाँच नार्डिग देश पश्चिम एशिया में दीर्घकालीन सुरक्षा-व्यवस्था के विकास के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ को राजनीतिक, आर्थिक एवं व्यावहारिक समर्थन देने को तैयार हैं। इन देशों ने इराक की वापसी हेतु शांति सेना तथा प्रेक्षक संयुक्त राष्ट्र के झंडे तले भेजने की पेशकश भी की।

8 जनवरी—जेनेवा में वार्त्ता के लिए अमेरिका एवं इराक के विदेशमंत्रियों की बैठक हुई। अमेरिकी राष्ट्रपति बुश ने इसे संकट के शांतिपूर्ण समाधान का अंतिम अवसर कहा।

राष्ट्रपति बुश ने अमेरिकी कांग्रेस से अपील की कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के 678वें प्रस्ताव को इराक से मनवाने के लिए हर संभव तरीका अपनाने के पक्ष में प्रस्ताव पारित करे।

इराक के प्रमुख प्रक्षेपास्त्रों की श्रेणी

जमीन से आकाश में मार करनेवाले (S.A.M)	ए. एस. एम.	ए. ए. एम.	ए. टी. एम.
1. रोलैंड (जर्मनी, फ्रांस, यू. एस. ए.)	1. ए. एस.-4 किचेन (यू. एस. एस. आर.)	1. ए ए-7 रोपेक्स (यू. एस. एस. आर.)	1. हॉट (फ्रांस, जर्मनी)
2. एस. ए.-9 गास्कीन (यू. एस. एस. आर.)	2. एक्सोसेट (फ्रांस)	2. आर 530	2. मिलॉन (फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन)
3. एस. ए.-9 गोआ (यू. एस. एस. आर.)	3. ए. एस.-30 लेजर (फ्रांस)	3. ए. ए.-2 स्टॉल (यू. एस.)	3. ए. टी.—3 सैगर (यू. एस. एस. आर.)
	4. सी-601 (चीन)	4. आर 550 (फ्रांस)	

जमीन से जमीन में मार करनेवाले
(एस. एस. एम.)

1. स्कड-बी (यू. एस. एस. आर.)
2. फ्रॉग (यू. एस. एस. आर.)

ब्रिटिश प्रधानमंत्री जान मेजर ने सऊदी अरब में ब्रिटिश सेनाओं का मोरचे पर निरीक्षण किया।

9 जनवरी—जेनेवा में अमेरिका एवं इराक के विदेशमंत्रियों की वार्त्ता विफल रही। अमेरिकी राष्ट्रपति बुश ने इस वार्त्ता के निष्कर्ष को निराशाजनक कहा।

इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने बगदाद में कहा कि यदि युद्ध शुरू हो गया तो हम अमेरिकियों को उनके ही खून में तैरने के लिए मजबूर कर देंगे।

संयुक्त राष्ट्र महासचिव जेवियर पेरेज दा कुइयार ने 15 जनवरी से पूर्व बगदाद में शांति दल भेजने की घोषणा की।

10 जनवरी—जापान के प्रधानमंत्री तोशिकी काइफू ने जेनेवा वार्त्ता विफल होने पर निराशा व्यक्त की और कहा कि इराक को जानना चाहिए कि अगर उसने सुरक्षा परिषद् के प्रस्तावों का पालन नहीं किया तो इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

मिस्र ने अपने 1,000 और सैनिक सऊदी अरब भेजे, जिससे इराक के विरुद्ध बहुराष्ट्रीय सेनाओं में उसके सैनिकों की कुल संख्या 8,000 हो गई।

ईरान ने कुवैत पर इराकी हमले की निंदा की, लेकिन साथ ही अमेरिकी सेना से खाड़ी छोड़ने की माँग की तथा कहा कि ईरान खाड़ी में अमेरिकी तानाशाही को सहन नहीं करेगा।

इराक के विदेशमंत्री ने जेनेवा में कहा कि खाड़ी संकट का हल फिलिस्तीनी मसले के प्रस्ताव पर निर्भर है तथा इराक इस मुद्दे को राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण मानता है।

11 जनवरी—अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने इजराइल को संयम बरतने की सलाह दी और कहा कि वह इराक के विरुद्ध पहले हमला न करे; बावजूद इसके कि उसका घोषित इरादा इजराइल पर हमला करना है।

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री जान मेजर ने वार्त्ता की असफलता पर खेद व्यक्त किया और कहा कि युद्ध अपरिहार्य नहीं है। सद्दाम हुसैन के पास अब भी सोचने का वक्त है।

संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने उम्मीद जाहिर की कि उनका शांति-प्रयास अवश्य ही सफल होगा।

12 जनवरी—अमेरिकी कांग्रेस ने सदन में 250 मतों के मुकाबले 183 मतों से और सीनेट में 52 के मुकाबले 47 वोटों से संयुक्त प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रपति जार्ज बुश को इराकी सेना को कुवैत से हटाने के लिए सैन्य बल प्रयोग के अधिकार प्रदान कर दिए।

कुवैत से हटने की संयुक्त राष्ट्र की अंतिम समय सीमा की अवहेलना करते हुए इराक ने धमकी दी कि यदि उस पर खाड़ी में तैनात अमेरिकी बहुल सेना ने हमला किया तो वह इजराइल को नष्ट कर देगा।

पाकिस्तान ने सऊदी अरब में दो-तीन दिन के अंदर 5,000 और सैनिकों को

दोनों देशों की सेनाएँ

थलसेना

देश	संख्या
अमेरिका	4,30,000
गल्फ कौंसिल	1,50,000
ब्रिटेन	35,000
मिस्र	20,000
सीरिया	19,000
फ्रांस	10,000
बाँगलादेश	2,000
मोरक्को	1,700
सेनेगल	500
नाइजर	480
चेकोस्लोवाकिया	200
हांडूरास	150
अर्जेंटीना	100
कुल	**6,69,130**

इराक

नियमित	5,10,000
सुरक्षित	4,80,000
युद्ध प्रशिक्षण प्राप्त	8,50,000

युद्धपोत

देश	संख्या
अमेरिका	55
गल्फ कौंसिल	36
ब्रिटेन	16
फ्रांस	14
इटली	6
बेल्जियम	3
कनाडा	3
नीदरलैंड	3
स्पेन	3
आस्ट्रेलिया	2
अर्जेंटीना	2
सोवियत संघ	2
डेनमार्क	1
ग्रीस	1
नार्वे	1
पुर्तगाल	1
कुल	**149**
इराक	**15**

टैंक

देश	संख्या
अमेरिका	2,000
गल्फ कौंसिल	800
मिस्र	400
सीरिया	270
ब्रिटेन	163
फ्रांस	40
कुल	**3,673**
इराक	**5,500**

विमान

देश	संख्या
अमेरिका	1,300
गल्फ कौंसिल	330
ब्रिटेन	54
फ्रांस	36
कनाडा	18
इटली	8
कुल	**1,746**
इराक	**700**

बहुराष्ट्रीय सेना के जलयान

1. लड़ाकू जलयान	2
2. क्रूजर मिसाइल युक्त	3
3. कारवेटीज पोत	3
4. विमानवाहक पोत	6
5. विध्वंसक पोत	13
6. माइंस स्वीपर	16
7. फ्रिगेड	29

इराकी जलयान

1.	फ्रिगेड	5
2.	कारवेटज	6
3.	माइंस स्वीपर	8

अमेरिका के नेतृत्व में विमानों की श्रेणी

1.	एवी-8 वीं हैरियर युद्धक बमवर्षक 80	(यू. एस. ए. ब्रिटेन)
2.	एफ-16 फैल्कॉन युद्धक बमवर्षक 190	(यू. एस. ए.)
3.	एफ-14 रॉम्कैट युद्धक-114	(यू. एस. ए.)
4.	एफ / ए-18 हॉरनेट युद्धक-128	(यू. एस. ए.)
5.	एफ 117 / ए स्टेल्थ युद्धक बमवर्षक 56	(यू. एस. ए.)
6.	एफ 111 युद्धक बमवर्षक 83	(यू. एस. ए.)
7.	इ ए-6 बी प्राडलर इलेक्ट्रॉनिक काउंटर मेर्जेस-30	(यू. एस. ए.)
8.	टॉरनेडो युद्धक बमवर्षक 75	(ब्रिटेन, जर्मनी, इटली)
9.	एफ-15 ईगल स्ट्राइव 150	(यू. एस. ए.)
10.	सी-130 ट्रांसपोर्ट	(यू. एस. ए.)
11.	एफ-5 इ टाइगर युद्धक बमवर्षक-60	(यू. एस. ए.)
12.	मिराज 2000 युद्धक विमान-10	(फ्रांस)
13.	मिराज एफ-1 युद्धक विमान 27	(फ्रांस
14.	बुकानेर युद्धक बमवर्षक-6	(ब्रिटेन)
15.	इ-3 एवॉक कमांड-10	(यू. एस. ए.)
16.	इ-27 हॉक कमांड एंड कंट्रोल-30	(यू. एस. ए.)
17.	जगुआर युद्धक बमवर्षक-40	(यू. एस. ए.)
18.	ए-4 स्काईहॉक युद्धक बमवर्षक-20	(यू. एस. ए.)
19.	टी. आर. 1	(यू. एस. ए.)
20.	ए-10 थंडरबोल्ट युद्धक बमवर्षक-180	(यू. एस. ए.)
21.	बी-52 स्टार्टोट्रेस बमवर्षक-48	(यू. एस. ए.)
22.	यू. एच. 1 - एपॉ	(यू. एस. ए.)
23.	ए. एच. - 1 डब्ल्यू सुपर कोबरा	(यू. एस. ए.)
24.	ए. एच. 644 एपॉक	(यू. एस. ए.)

इराक के नेतृत्व में विमानों की श्रेणी

1.	मिग-29 फलक्रम युद्धक 30	(यू. एस. एस. आर)
2.	एस. यू. 24 युद्धक बमवर्षक 16	(यू. एस. एस. आर)
3.	एस. यू. - 20 फिटर युद्धक बमवर्षक 70	(यू. एस. एस. आर)
4.	मिग-21 फिशबेड युद्धक 150	(यू. एस. एस. आर)
5.	टी. यू. 16 बैजर युद्धक-4	(यू. एस. एस. आर)
6.	एस. यू. - 25 युद्धक बमवर्षक 60	(यू. एस. एस. आर)
7.	जे -7 युद्धक 30	(चीन)
8.	मिराज एफ -1 युद्धक 30	(फ्रांस)
9.	मिग-25 फॉक्सबैट युद्धक 30	(यू. एस. एस. आर)
10.	टी. यू. - 22 बलाइंडर बमवर्षक 8	(यू. एस. एस. आर)
11.	मिग-23 फ्लॉगर युद्धक बमवर्षक 90	(यू. एस. एस. आर)
12.	एम. आई. - 24 हिंद	(यू. एस. एस. आर)
13.	आई. एल. - 76 मेनस्टे शीघ्र चेतावनी 2	(यू. एस. एस. आर)
14.	एस. ए. - 342 गैजेला	(फ्रांस)

अमेरिका के अधीन तोपों की श्रेणी

1.	ए. एम. × 30	(फ्रांस)
2.	चीफटेन	(ब्रिटेन)
3.	वी.-60	(यू. एस. ए.)
4.	एम.-109	(यू. एस. ए.)
5.	एम.-113	(यू. एस. ए.)
6.	एम.-901	(यू. एस. ए.)
7.	एम.-110	(यू. एस. ए.)
8.	एम.-60 ए-1	(यू. एस. ए.)
9.	एम.-27 मल्टीपल लांच राकेट सिस्टम	(जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, यू. एस. ए.)
10.	एल. ए. वी.	(कनाडा)
11.	एल बी टी पी 7	(यू. एस. ए.)
12.	एम. 198, 195 मि. मी.	(यू. एस. ए.)
13.	एम-1 ए - 1 अब्रांस टैंक	(यू. एस. ए.)
14.	एम-60 ए - 1	(यू. एस. ए.)
15.	चैलेंजर	(ब्रिटेन)
16.	एम-3 ब्रैडली	(यू. एस. ए.)

इराक के अधीन तोपों की श्रेणी

1.	टी-72	(यू. एस. एस. आर.)
2.	टी-62	(यू. एस. एस. आर.)
3.	टी-59	(चीन)
4.	चीफटेन	(ब्रिटेन)
5.	टी-69	(यू. एस. एस. आर.)
6.	टी-69	(चीन)
7.	एम-110	(यू. एस. ए.)
8.	एम-109	(यू. एस. ए.)
9.	एम-109	(यू. एस. ए.)
10.	जी. सी. टी.	(फ्रांस)
11.	जी- 5-155 मि. मी.	(दक्षिण अफ्रीका)
12.	वी. टी. आर. -60	(यू. एस. एस. आर.)

भेजने की घोषणा की; जबकि 6,000 सैनिक पहले ही भेज चुका था। पाक विदेश सचिव ने कहा कि सैनिकों को भेजने का उद्देश्य मक्का-मदीना सहित सऊदी अरब की सुरक्षा करना है।

13 जनवरी—संयुक्त राष्ट्र महासचिव जेवियर पेरेज दा कुइयार ने इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन से बगदाद में युद्ध टालने के लिए साढ़े तीन घंटे तक बातचीत की; लेकिन इसका कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकला, फिर भी शांति के लिए आशावान् है।

मिस्र के राष्ट्रपति हुसनी मुबारक ने अमेरिकी विदेशमंत्री से काहिरा में कहा कि आवश्यकता पड़ने पर मिस्र इराक के विरुद्ध कार्यवाही में शामिल होने को तैयार है।

14 जनवरी—इराक की राष्ट्रीय असेंबली ने ध्वनिमत से कुवैत से हटने की अमेरिकी माँग पर झुकने की बजाय युद्ध करने की बात का प्रस्ताव पारित किया। राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने देशवासियों से अंतिम साँस तक लड़ने को कहा तथा इस बात पर जोर दिया कि यदि अमेरिकी युद्ध चाहते हैं तो कोई शक्ति इसे रोक नहीं सकती।

इराक के संभावित खतरे का अनुमान लगाकर इजराइली सशस्त्र सेना को आज सतर्क कर दिया गया।

इस्लामिक कान्फरेंस संगठन के महासचिव हमीद अल्जविद ने युद्ध टालने की अपील पुनः दोहराई।

यूरोपीय समुदाय के 12 देशों के विदेशमंत्रियों ने अंतिम क्षणों में बगदाद में शांति मिशन नहीं भेजने का निर्णय लिया।

राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने कहा कि अगर खुदा ने चाहा तो हम कुवैत, फिलिस्तीन, गोलन हाइट्स और लेबनान में भी जीतेंगे।

15 जनवरी—सऊदी अरब ने घोषणा की कि वह इराक के विरुद्ध किसी भी युद्ध का आयोजन करेगा तथा खाड़ी में अमेरिकी सैनिकों की तैनाती पर आए कुल व्यय का आधा व्यय अपने कोष से अदा करेगा।

खाड़ी युद्ध को टालने के लिए अंतिम क्षणों में फ्रांस ने यह प्रस्ताव रखा कि इराक कुवैत से हटने के इरादे की घोषणा कर दे और संयुक्त राष्ट्र वचन दे कि पश्चिमी एशिया के मुद्दे पर एक शांति सम्मेलन बुलाया जाएगा।

ईरान के विदेशमंत्री अली अकबर बिलायती ने कहा कि उन्हें उम्मीद है कि अंतिम क्षणों में इराक का हृदय-परिवर्तन होगा, वह कुवैत से हट जाएगा।

इजराइल ने अपनी सुरक्षा के लिए पूरी तौर से सैनिक तैयारी कर ली।

16 जनवरी—कुवैत से इराक की वापसी की समय सीमा का अल्टीमेटम समाप्त होने के बाद अब अरब के रेगिस्तान में तनावपूर्ण खामोशी के बीच कोई 12,00,000 से अधिक सैनिक युद्ध के इंतजार में आमने-सामने खड़े थे और युद्ध किसी समय भी छिड़ सकता था।

इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने सेना की कमान स्वयं सँभाल ली और अपने

सैनिकों को आश्वासन दिया कि वे लड़ाई के लिए तैयार हैं।

वाशिंगटन में लाखों लोगों ने युद्ध के विरोध में प्रदर्शन किया और राजनयिक प्रयास जारी रखने का सुझाव दिया।

जोर्डन के शाह हुसैन ने कहा कि उनका देश इजराइली हमले का पूरी शक्ति के साथ मुकाबला करेगा।

संयुक्त राष्ट्रसंघ महासचिव ने इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन से घटनाक्रम का रुख मोड़कर विनाश रोकने की अंतिम अपील की तथा कुवैत से तुरंत सेना हटाने की शुरुआत करने की भी अपील की।

अंततः 17 जनवरी को तबाही लेकर आ गया सद्दाम व बुश के अहं का टकराव।

वास्तविक संघर्ष

कुवैत से इराकी वापसी की समय सीमा (अल्टीमेटम) समाप्त होते ही अब अरब के रेगिस्तान में तनावपूर्ण खामोशी के बीच लगभग 12,00,000 से भी अधिक सैनिक युद्ध के लिए आमने-सामने मोरचे पर डटे थे और युद्ध शुरू होने की प्रतीक्षा बड़ी बेसब्री के साथ हो रही थी। 16 जनवरी को इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने अपनी सेना की कमांड स्वयं सँभाल ली थी और अपने सैनिकों को आश्वासन दिया कि वे जंग के लिए तैयार हैं। इसके साथ ही इराक के अधिकारों के संबंध में कोई समझौता नहीं किया जाएगा। बगदाद की ऊँची इमारतों पर विमानभेदी वेट्रीज के पीछे सशस्त्र सैनिक तैनात थे और ए.के.-47 राइफल सहित सैकड़ों सैनिक सड़कों पर घूम रहे थे।

उधर इजराइल ने इराक के हमले से बचाव के लिए डिब्बाबंद खाद्य सामग्री एकत्रित करके घरों की खिड़कियों को भी बंद कर लिया। सारा इजराइल युद्ध की प्रतीक्षा कर रहा था, जबकि उनके नेताओं ने कहा था कि हमारी सेना हर हमले के लिए पूरी तरह से तैयार है।

खाड़ी में विनाशकारी युद्ध की शुरुआत के लिए एक अरसे से इंतजार की घड़ी व्हाइट हाउस की उस घोषणा के साथ आई और गुजर गई कि 15 जनवरी की आधी रात को समाप्त होनेवाली समय सीमा का अल्टीमेटम इराक का कुवैत से हटने के लिए था, न कि किसी जंगी कार्यवाही का। युद्ध के पूर्व युद्ध की शुरुआत का जरा भी संकेत बुश प्रशासन द्वारा नहीं प्राप्त हुआ था। राष्ट्रपति जार्ज बुश ने जीरो ऑवर तक गुप्त रखा और लगा कि अभी भी इराक के लिए कुवैत से हटने के द्वार खुले हैं; परंतु खाड़ी की आकस्मिक कार्यवाही को गोपनीयता के साथ संचालित करके 17 जनवरी को अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं के अति आधुनिक लड़ाकू विमानों के द्वारा बगदाद पर तड़के आक्रमण कर दिया गया और इराक ने भी जवाबी कार्यवाही करके विनाशकारी

युद्ध का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अब हम इस विनाशकारी युद्ध के 42 दिनों की घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख करते हैं—

17 जनवरी—'ऑपरेशन टेजर्ट स्टार्म' के साथ अमेरिकी नेतृत्ववाली सेनाओं का हवाई हमला बगदाद में हुआ और इराक ने भी जवाबी हमला किया। यह भारतीय समय के अनुसार प्रातः 3.20 बजे शुरू हुआ था। प्रथम हवाई बमबारी लगातार तीन घंटे तक चलती रही। इस प्रथम शुरुआत में ही तेजी के साथ बम विस्फोटों के कारण पश्चिम एशिया का यह क्षेत्र काँप गया। आज के दोनों पक्षों के दावे संक्षिप्त में इस प्रकार रहे—

1. प्रथम दिन के आक्रमण में अमेरिका ने दावा किया कि उसके अस्सी प्रतिशत हवाई हमले कारगर सिद्ध हुए तथा आज इराक पर 400 हवाई हमले किए गए।
2. इराक ने दावा किया कि उसने शत्रु के 14 लड़ाकू विमानों को मार गिराया है तथा सऊदी अरब के अनेक तेल भंडारों को नष्ट कर दिया गया है।

18 जनवरी—आज युद्ध ने एक नया मोड़ लिया। इसमें इराक ने इजराइल को अपना निशाना बनाया तथा अपने प्रसिद्ध प्रक्षेपास्त्र 'स्कड' के द्वारा तेलअवीव, हैफा बंदरगाह तथा येरूसलम पर अपना कहर ढाया। आज इराक ने इस युद्ध को अरब-इजराइल युद्ध बनाने की एक कूटनीतिक चाल चली। दूसरी ओर अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने भी इराकी ठिकानों पर अपने जोरदार हमले जारी रखे।

1. अमेरिका ने आज दावा किया कि उसके हवाई हमलों के कारण इराक में भारी तबाही हुई है और इराक के स्कड प्रक्षेपास्त्र को बीच में ही नष्ट कर दिया है।
2. आज के प्रहार से जहाँ इजराइल को भारी हानि उठानी पड़ी, वहाँ बहुराष्ट्रीय सेनाओं के 5 और लड़ाकू विमान मार गिराए।

19 जनवरी—आज इराक ने पुनः अपने लगभग 11 'स्कड' प्रक्षेपास्त्र इजराइल में दागे तथा अपने राकेट भी छोड़े, जिससे लगभग 10 इजराइली मारे गए। अमेरिका ने आज इराक के 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों का सामना करने के लिए इजराइल को प्रक्षेपास्त्र विरोधी प्रक्षेपास्त्र 'पेट्रियाट' भेजे। इसके साथ ही मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने आज भी अपने जोरदार हवाई हमले किए तथा जमीनी जंग की तैयारी भी शुरू कर दी। आज दोनों ओर से दावे इस प्रकार से पेश किए गए—

1. आज इराक ने दावा किया कि अब तक की लड़ाई में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के लगभग 101 लड़ाकू विमानों को मार गिराया है तथा इजराइल व सऊदी अरब में भीषण तबाही फैल चुकी है।
2. आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अपना हवाई हमला और तेज कर दिया तथा इराक के कुवैत स्थित अड्डों को भी लक्ष्य बनाया। इराक के रासायनिक हथियारों के भंडार का अधिकांश भाग नष्ट होने की बात कही।

20 जनवरी—बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने आज इराकी थलसेना को अपना लक्ष्य बनाया तथा इराक के प्रमुख सामरिक ठिकानों पर भी हवाई हमले किए। इराकी सेनाओं ने भी जवाबी कार्यवाही की तथा बहुराष्ट्रीय सेनाओं के 12 विमानों को मार गिराया और अब तक 154 विमानों को नष्ट करने में कामयाबी मिली। रियाद और देहरान पर इराकी स्कड हमलों को विफल कर दिया गया। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अपनी थलसेना के आक्रमण के लिए तैयारी भी शुरू कर दी और कुवैत की सीमा में अमेरिकी नौसेना ब्रिगेड प्रतिरक्षात्मक गड्ढे खोदने में जुट गई।

21 जनवरी—आज के युद्ध में अमेरिकी नौसेना ने जहाँ लाल सागर में पहली बार अपने एक युद्धपोत से एक नवीन दूर संवेदी प्रक्षेपास्त्र का प्रक्षेपण किया; वहाँ बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने सऊदी अरब में पहली बार इराक के बड़े हमले को विफल कर दिया और 10 इराकी 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों के परखच्चे उड़ा दिए। अपनी हवाई बमबारी से अनेक इराकी सैनिक ठिकानों को आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं द्वारा लक्ष्य बनाया गया।

दूसरी ओर इराक ने आज बहुराष्ट्रीय सेना के बंदी बनाए गए वायुसैनिकों को उसके ही हमलों के विरुद्ध ढाल की तरह प्रयोग करने का निर्णय लिया। इराक ने आज बहरीन पर भी स्कड प्रक्षेपास्त्र दागा; किंतु अपने लक्ष्य से चूक जाने के कारण समुद्र में जा गिरा।

22 जनवरी—खाड़ी युद्ध का छठवाँ दिन और भी विध्वंसक तथा भयानक घटनाओं के साथ घटित हुआ। इराक ने आज कुवैत के अनेक तेल कुओं में आग लगा दी तथा सऊदी अरब में अपने 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों द्वारा तीन अलग-अलग हमले किए। इसके जवाब में अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अपने विमानों द्वारा इराक के सामरिक ठिकानों पर जोरदार हवाई हमले किए। अमेरिकी 'पेट्रियाट' प्रक्षेपास्त्र इराकी 'स्कड' प्रक्षेपास्त्र को रोकने तथा नष्ट करने में सफल रहे।

इराक ने अब तक बहुराष्ट्रीय सेना के 160 से अधिक लड़ाकू विमानों को मार गिराने का दावा किया, परंतु बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अब तक केवल 16 विमानों के नष्ट होने या मार गिराने की पुष्टि की है। अमेरिका ने दावा किया कि बहुराष्ट्रीय सेनाओं का नभ प्रभुत्व स्थापित हो गया है। अतः अब इराक ज्यादा कुछ कर पाने में समर्थ नहीं है।

23 जनवरी—खाड़ी युद्ध के सातवें दिन उस समय नया मोड़ आया जब इराकी थल सेनाओं ने सऊदी अरब की सीमा में प्रवेश कर न केवल अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं पर बड़ा जोरदार प्रहार किया, बल्कि इसकी सीमा से बहुत आगे बढ़कर सऊदी अरब के क्षेत्र तथा अनेक सीमावर्ती चौकियों पर अपना अधिकार कर लिया। इराकी 'स्कड' के हमले लगातार इजराइल पर जारी रहे। आज अमेरिका ने युद्ध विराम संबंधी विकासशील देशों के प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। इराक के विरुद्ध एक सप्ताह में सफलता न मिलने के कारण अमेरिका की बौखलाहट अब अधिक बढ़ गई। इसी के परिणामस्वरूप इराक के एक नागरिक ठिकाने पर बमबारी की, जिससे 41 लोग

मारे गए तथा 141 लोग बुरी तरह से घायल हो गए। बहुराष्ट्रीय सेना के विमानों ने अब तक 10,000 हवाई उड़ानें भरीं।

24 जनवरी—खाड़ी युद्ध आज दूसरे सप्ताह में प्रवेश कर गया। इराक ने आज आधी रात से अब तक इजराइल व सऊदी अरब पर अपने 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों से दो अलग-अलग हमले किए। इसके साथ ही कुवैत सीमा पर अपनी सेनाओं की मजबूत दीवार बना दी। दूसरी ओर आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने दक्षिणी-पूर्वी इराक के शहरों एवं सामरिक महत्त्व के ठिकानों पर लगातार दो बार तेज हवाई हमले किए, जिससे इराक को काफी हानि उठानी पड़ी और वह इसके लिए जवाबी कार्यवाही नहीं कर सका। आज फ्रांस तथा कनाडा के जेट विमानों ने इराक के विरुद्ध बहुराष्ट्रीय सेनाओं के हवाई हमलों में पहली बार भाग लिया। इसके साथ ही संयुक्त सेना के प्रमुखों के अध्यक्ष जनरल कालिन पावेल ने जमीनी जंग जल्दी ही शुरू होने का संकेत दिया। आज का युद्ध वास्तव में इराकी वायुमंडल में ही लड़ा गया।

25 जनवरी—खाड़ी युद्ध के आज नवें दिन इराक ने स्वीकार किया कि बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने खाड़ी में कुवैत के एक छोटे से द्वीप 'कुराह' पर अपना कब्जा कर लिया है; परंतु इसे बहुराष्ट्रीय सेनाओं की विजय का प्रतीक नहीं माना। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने जमीनी जंग शुरू करने के लिए अपनी नई व्यूह-रचना आरंभ कर दी। इराक पर हवाई हमला करनेवाले फ्रांसीसी लड़ाकू विमानों ने कुवैती सीमा के निकट इराक के रिपब्लिकन गार्डों पर जोरदार प्रहार किए। बहुराष्ट्रीय सेनाओं के विमानों ने आज 111 उड़ानें भरकर इराक पर प्रहार किए। दूसरी ओर इराक ने आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं के 14 विमानों तथा प्रक्षेपास्त्रों को मार गिराने का दावा किया। इराक ने आज इजराइल पर पाँचवाँ ('स्कड' प्रक्षेपास्त्रों से) हमला किया तथा आज ही (इराक ने) समुद्र में भारी मात्रा में तेल बहाया।

26 जनवरी—आज के खाड़ी युद्ध में इराक ने सऊदी अरब की राजधानी रियाद पर अपने प्रसिद्ध 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों को दागा तथा एक राकेट से इजराइल पर हमला किया। इराक ने इस युद्ध को 'जेहाद' का नारा देते हुए अरब सैनिकों से अपनी ओर से लड़ने का अनुरोध किया। आज इराक के 7 लड़ाकू विमान ईरान की सीमा में उतरने से खाड़ी युद्ध की स्थिति और जटिल हो गई; क्योंकि ईरान अभी तक तटस्थ बना हुआ था। खाड़ी में बह रहे कुवैती तेल की एक मोटी परत सऊदी अरब के किनारे पहुँचनी शुरू हो गई, जिससे बहुराष्ट्रीय सेनाओं के लिए जल-आपूर्ति में बाधा उत्पन्न होने का भारी खतरा हो गया। आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अब तक के युद्ध में अपने 22 विमानों के नष्ट होने की पुष्टि की; परंतु इराक ने अब तक 180 विमानों को मार गिराने का दावा किया। इराक ने आज सऊदी अरब के दम्माम तथा देहरान क्षेत्रों पर अपने दो प्रक्षेपास्त्र दागे। लगातार बहुराष्ट्रीय सेनाओं के हवाई हमलों से इराक को भारी क्षति उठानी पड़ी।

27 जनवरी—युद्ध के ग्यारहवें दिन इराक ने एक नया मोड़ देने के लिए यह धमकी दी कि

यदि बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने कुवैत व बसरा में अपने हवाई हमले जारी रखे तो वह बहुराष्ट्रीय सेना तथा इजराइल के विरुद्ध अपरंपरागत हथियारों का प्रयोग करेगा। इराक ने आज पुनः इजराइल व सऊदी अरब पर अपने 'स्कड' प्रक्षेपास्त्र छोड़े। और इराक ने कहा कि इसके प्रहार से विरोधी को भारी नुकसान हुआ है। आज इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने देश छोड़कर भागनेवाले को 'सजा-ए-मौत' देने की घोषणा की। अमेरिका तथा उसकी सहयोगी सेनाओं पर उसके नागरिक ठिकानों पर हमला करने का आरोप लगाया।

अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अपने विमानों तथा प्रक्षेपास्त्रों द्वारा आज इराक के दक्षिणी नगर बसरा पर जोरदार प्रहार किए। इराक ने संयुक्त राष्ट्र महासचिव पर भी युद्ध का आरोप लगाया।

28 जनवरी—आज खाड़ी युद्ध में बहुराष्ट्रीय सेनाओं द्वारा इराकी शहर बादरा तथा जोरबालिया पर अपने जोरदार हवाई हमले जारी रखे। आज यह पहला अवसर था, जब इराक ने इजराइल तथा सऊदी अरब पर अपने 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों से हमला नहीं किया; परंतु आज अपने अपरंपरागत हथियार के इस्तेमाल की धमकी को अवश्य दोहराया। फ्रांस के प्रसिद्ध मिराज एवं जगुआर विमानों ने इराकी बख्तरबंद यूनिटों व भूमिगत कमांड चौकियों पर हमले किए तथा कुवैत में तैनात रिपब्लिकन गार्डों को भी आज निशाना बनाया गया। इराक ने दावा किया कि उसने शत्रु के 3 विमानों को आज मार गिराया है। उसने कहा कि बहुराष्ट्रीय सेनाओं के विमानों ने आज हमला करने के लिए 118 उड़ानें भरी थीं।

अमेरिका पर आज भी नागरिक ठिकानों पर हवाई हमले का आरोप लगाया गया। आज खाड़ी में फैले तेल को रोकने के लिए जोरदार प्रयास किए गए।

29 जनवरी—खाड़ी युद्ध के तेरहवें दिन युद्ध ने एक राजनीतिक मोड़ उस समय ले लिया जब फ्रांस के रक्षामंत्री ने सेनाओं को उद्देश्य से हटने का आरोप लगाते हुए त्याग-पत्र दे दिया। इराक ने भी अमेरिका तथा उसकी सहयोगी सेनाओं पर आरोप लगाया कि वह अपना लक्ष्य सैनिक ठिकानों की बजाय नागरिक ठिकानों को बना रही हैं। इराक ने आज भी अपने 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों का प्रहार इजराइल तथा सऊदी अरब पर किया।

फ्रांस के लडाकू विमानों ने इराक के प्रसिद्ध रिपब्लिकन गार्डों पर हमले किए। आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं के हवाई हमले से इराक द्वारा बंधक बनाए गए उसी के सैनिक घायल हो गए। जमीनी जंग की तैयारी भी बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने तेज कर दी। अमेरिका ने दावा किया कि उसने इराक के 4 लड़ाकू विमानों को आज मार गिराया। अब तक इराक 25 स्कड इजराइल पर तथा 26 स्कड प्रक्षेपास्त्र सऊदी अरब पर दाग चुका था। युद्ध में इजराइली विमानों को भी शामिल होने का आरोप इराक द्वारा लगाया गया। बहुराष्ट्रीय सेनाओं का इराकी तेल-शोधक कारखाने पर हमला।

30 जनवरी—खाड़ी युद्ध के चौदहवें दिन इराकी सेनाएँ कुवैत की सरहदों के करीब

सऊदी अरब के समुद्री तट पर बसे अल-खाफजी शहर में प्रवेश कर गईं तथा वहाँ पर तैनात बहुराष्ट्रीय सेनाओं के सभी सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। इसके साथ ही वहाँ के तेल-शोधक कारखानों में आग लगा दी। खाड़ी युद्ध शुरू होने के बाद यह पहला अवसर था जब इराकी सेना ने बड़े पैमाने पर जमीनी हमला करके बहुराष्ट्रीय सेनाओं के इतने अधिक सैनिकों को हताहत किया। इसके साथ ही शत्रु के 3 विमानों को मार गिराने का दावा भी इराक ने किया। एक और अन्य हमले में इराकी सेनाओं ने कुवैत के पास सऊदी रेगिस्तान की जंग में बहुराष्ट्रीय सेनाओं के अनेक ठिकानों को नष्ट कर दिया तथा 200 सैनिकों को बंदी बना लिया। इसके साथ ही बहुराष्ट्रीय सेनाओं पर लगातार नागरिक ठिंकानों पर हवाई हमले जारी रखने का आरोप लगाया।

बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने कुवैती तट के पार इराक के 17 सशस्त्र नौकाओं के एक दल पर अपने प्रक्षेपास्त्रों द्वारा प्रहार किया और इराक की 5 नौकाओं को डुबो दिया तथा 12 अन्य को भारी क्षति पहुँचाई। फ्रांस ने युद्ध समाप्ति के लिए पहल करने की इच्छा व्यक्त की।

31 जनवरी—खाड़ी युद्ध के पंद्रहवें दिन बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने कुवैती सीमा के निकट अल-खाफजी से इराकी सेना के कब्जे को हटाने के लिए दो बार जोरदार प्रयास किए; परंतु इराकी सेना ने बखूबी के साथ उसके इरादों को विफल कर दिया। इराक के राकेटों के प्रहार के कारण बहुराष्ट्रीय सेना के अनेक सैनिक हताहत हो गए। आज की इस लड़ाई में इराक के लगभग 1,500 सैनिकों तथा 80 टैंकों ने भाग लिया, इसके साथ ही इराक ने शत्रु के 10 विमानों एवं प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट कर देने का दावा किया तथा इसे अपनी अप्रत्याशित सफलता कहा। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने आज के इस संघर्ष में 12 अमेरिकी तथा कुछ सऊदी सैनिक मारे जाने अथवा लापता होने की बात स्वीकार की। सऊदी अरब ने दावा किया कि 24 घंटे के इस संघर्ष में अल-खाफजी शहर को इराकियों से मुक्त करा लिया गया है। महासचिव ने इराक से युद्ध रोकने की पुनः अपील की तथा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की बैठक बुलाई। इराक ने इजराइल पर 8 राकेट दागे।

1 फरवरी—आज खाड़ी युद्ध सोलहवें दिन में प्रवेश कर गया तथा एक 17 किलोमीटर लंबा इराकी बख्तरबंद काफिला सऊदी अरब की सीमा की ओर बढ़ा। इस काफिले में लगभग 60,000 सैनिक होने का अनुमान था जिससे घमासान जमीनी जंग होने के आसार नजर आने लगे थे। दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने जमीनी जंग शुरू होने से पूर्व ही अपने हवाई हमले लगातार जारी रखे और अभी कम-से-कम दो सप्ताह तक जारी रखने की संभावना भी व्यक्त की। अमेरिका ने अपनी नौसेना के द्वारा भी आक्रामक पहल जारी रखी। जिस समय इराकी बख्तरबंद सेना आगे बढ़ रही थी उसी समय अमेरिका के बी-52 तथा जगुआर लड़ाकू विमानों ने भीषण बमवर्षा कर दी। इसके परिणामस्वरूप जहाँ अनेक इराकी सैनिक हताहत हुए, वहाँ उसके 100 टैंक तथा अन्य वाहनों को भी भारी क्षति पहुँची। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने आज इराक की सेना को

अल-खाफजी से खदेड़ने में सफलता प्राप्त कर ली। इसमें इराक के 200 सैनिक मारे गए तथा 400 सैनिक बंदी बना लिये गए। तेल के समुद्र में फैले होने के कारण उसके कुप्रभावों से बचने के प्रयास जारी रहे। इराक ने शत्रु के 3 विमानों को मार गिराने का दावा किया।

2 फरवरी—खाड़ी युद्ध का सत्रहवाँ दिन भी भीषण तबाही की चपेट में रहा। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने दक्षिणी इराक के बसरा बंदरगाह तथा अबू-अल-खासिब शहर पर अपने प्रक्षेपास्त्रों से प्रहार किए। इसके साथ ही अपने आधुनिकतम लड़ाकू विमानों से भी हवाई हमले जारी रखे। फ्रांसीसी विमानों ने आज कुवैत की ओर बढ़ रही इराकी बख्तरबंद सेना एवं रिपब्लिकन गार्ड पर हमले किए और कुवैत में स्थित इराकी शस्त्रास्त्र भंडार को भी उड़ा दिया तथा खाड़ी में तैनात अमेरिकी युद्धपोतों से छोड़े गए 2 'टाम-ए-हॉक' प्रक्षेपास्त्रों से बगदाद में अनेक इमारतों को भारी क्षति हुई। इराक ने कहा कि बहुराष्ट्रीय सेनाओं द्वारा नागरिकों के मारे जाने का बदला अवश्य लेगा। संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने आज शांति के नए प्रयासों का सुझाव दिया। आज भी समुद्री तेल का बहाव लगातार जारी रहा। इजराइल ने भी युद्ध में कूदने की धमकी दी।

3 फरवरी—आज अठारहवें दिन बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराक के दो प्रमुख प्रक्षेपास्त्र प्रक्षेपण केंद्रों को अपने हवाई हमले से नष्ट कर दिया। इराक ने इन्हीं केंद्रों से इजराइल और सऊदी अरब पर अपने 'स्कड' प्रक्षेपास्त्र दागे थे। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने कुवैत में स्थित इराकी ठिकानों पर अपना हवाई हमला जारी रखा तथा रिपब्लिकन गार्डों को अपना मुख्य लक्ष्य बनाया। अमेरिका ने कहा कि उसकी सेनाओं का जल तथा वायु में वर्चस्व स्थापित हो गया है।

इराक ने आज पुनः अपने 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों द्वारा इजराइल तथा सऊदी अरब में हमला किया। दोनों पक्षों ने इससे हानि न होने का दावा किया। इराक ने पुनः बहुराष्ट्रीय सेनाओं पर अपने रिहायशी इलाकों को निशाना बनाने की बात कही। इराक ने दावा किया कि उसके द्वारा नष्ट किए गए विमानों के 7 चालक पैराशूट से सीरिया में उतरे। अमेरिका ने 20 दिन के अंदर ही जमीनी जंग शुरू होने का संकेत दिया। इराक ने हज के दौरान युद्ध विराम के लिए स्वीकृति दी।

4 फरवरी—आज इराक ने बहुराष्ट्रीय सेनाओं को पुनः ललकारते हुए चुनौती दे दी कि यदि उनमें दम है तो वे जमीनी जंग शुरू करके इसका फैसला करके देख लें। बहुराष्ट्रीय सेना के नौसैनिकों ने आज प्रातःकाल की बेला में अक-वाफरा के निकट स्थित कुवैत के उम गुदैर तेल क्षेत्र के पास इराकी थलसेना की टुकड़ियों व राडार पर अपनी तोपों से प्रहार किया। इसके जवाब में इराकी सेना ने भी अपनी बैटरियाँ दागीं। अमेरिका के 2 बमवर्षक विमानों ने 1 इराकी राकेट लांचर को पूरी तरह नष्ट कर दिया।

आज अमेरिकी नौसेना ने अपने 'मिसूरी' युद्धपोत के द्वारा 16 इंची तोपों से 7 भारी गोले दागे तथा बी-52 विमान से बगदाद पर तीन ओर से हवाई हमले किए। इस
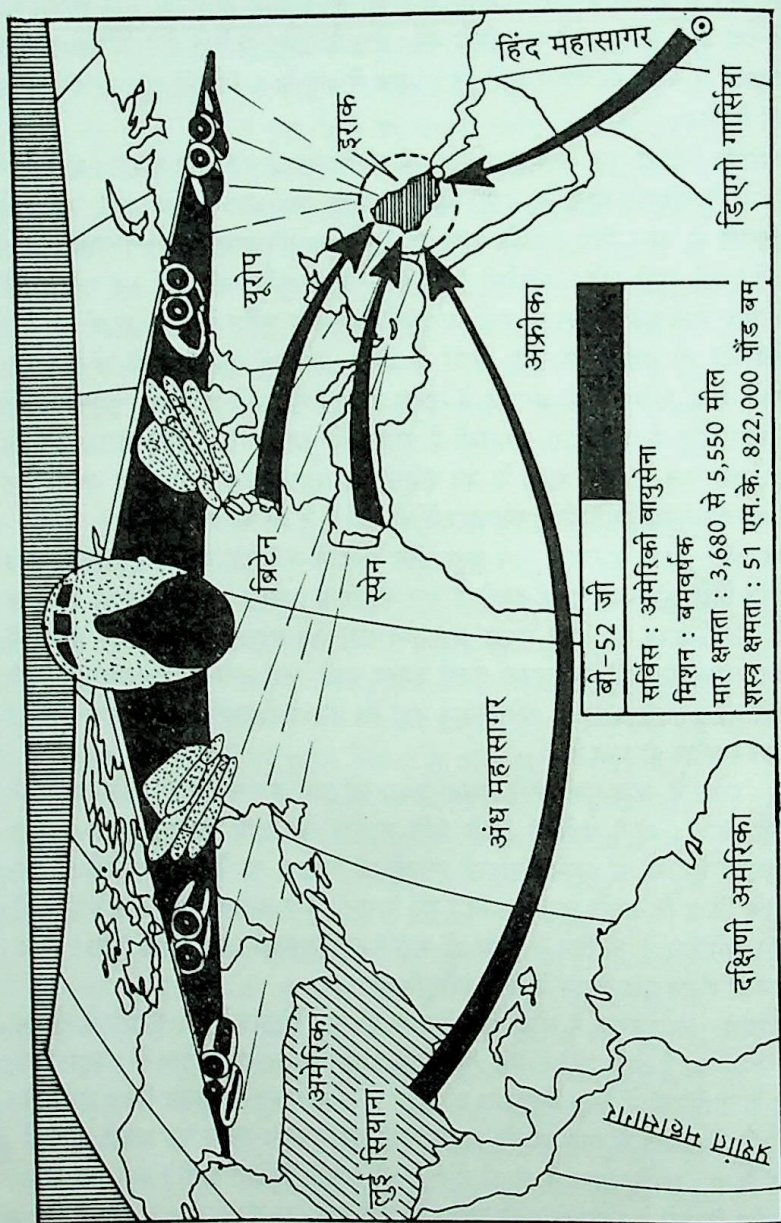
अमेरिकी बी–52 बमवर्षकों का इराक पर चार तरफ से हमला

प्रकार घमासान युद्ध कार्यवाही जारी रही। इराक ने दावा किया कि शत्रु के विमानों ने 77 हवाई हमले किए तथा उसके 9 विमानों को आज मार गिराया गया। आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने दावा किया कि अब तक इराक के 126 विमानों को नष्ट किया जा चुका है तथा 630 से अधिक इराकियों को बंदी बनाया गया है।

5 फरवरी—आज खाड़ी युद्ध का बीसवाँ दिन भी जोरदार संघर्ष के साथ शुरू हुआ। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराक के महत्त्वपूर्ण ठिकानों; जैसे—नागरिकों, लांचरों तथा रिपब्लिकन गार्डों पर अपने हवाई हमले लगातार जारी रखे। इससे इराकी राष्ट्रपति परेशान हो गए और उन्होंने हर नागरिक की मौत का बदला लेने का संकल्प दोहराया। आज की लड़ाई में इराक के लगभग 320 सैनिक हताहत हुए। आज बहुराष्ट्रीय सेना ने फाव, तिकरित तथा बसरा शहरों में भीषण बमबारी की और 373 हवाई हमले किए। इराक ने शत्रु के 4 विमानों को नष्ट करने का दावा किया। इस युद्ध को रोकने के लिए ईरान ने मध्यस्थता का प्रस्ताव पेश किया, जिसे अमेरिका ने नामंजूर कर दिया; परंतु सोवियत संघ तथा संयुक्त राष्ट्र ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया। 'ओपेक' राष्ट्रों ने भी युद्ध को रोकने के लिए अपने प्रयास तेज किए।

6 फरवरी—आज भी अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं का हवाई हमला जारी रहा। आज दक्षिणी इराक के अनेक शहरों तथा बसरा क्षेत्र पर प्रहार किए गए। इसके विरोध में इराकी सेनाओं ने जवाबी कार्यवाही की; परंतु विमानभेदी प्रणाली शांत रही। इराक ने दावा किया कि उसके द्वारा दागे गए 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों ने इजराइल के परमाणु रियेक्टर केंद्र को नष्ट कर दिया तथा भारी क्षति पहुँचाई है। इराक ने युद्ध को 'जेहाद' का नारा दिया तथा इसे गतिशील बनाने का प्रयास किया। इसीलिए विश्व-भर के मुसलिम लोगों को एकजुट होने का आह्वान किया।

अमेरिकी प्रसिद्ध युद्धपोत 'मिसूरी' ने लगातार तीसरे दिन आज अपनी बड़ी तोपों से कुवैत के तट के पास से प्रहार किए; जिससे इराकी राडार केंद्र, टैंक, प्रक्षेपास्त्र प्रक्षेपण केंद्र तथा बंकरों को भारी नुकसान हुआ। हवाई हमले ने भी भारी नुकसान पहुँचाया। अमेरिका ने अब तक 817 इराकी सैनिकों को बंदी बनाने का दावा किया। खाड़ी में शांति के लिए ईरान एवं सोवियत संघ के प्रयास जारी रहे।

7 फरवरी—आज खाड़ी युद्ध के बाईसवें दिन भी अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराक पर जोरदार बमबारी की तथा बगदाद, बसरा, फाव, तनोम तथा सलेहाबाद सहित अनेक शहरों पर जबरदस्त हमले किए। इसके साथ ही कुवैत के समुद्री तट में खड़े अमेरिकी युद्धपोतों ने भी अपने प्रहार किए। इसके कारण आज 200 इराकी सैनिक मारे गए तथा उसके तीन महत्त्वपूर्ण पुल भी नष्ट हो गए।

दूसरी ओर इराक ने कुवैत के अनेक तेल ठिकानों को जला दिया तथा सऊदी अरब की सीमा पर जोरदार प्रहार करके शत्रु के 40 सैनिकों को मार देने तथा 38 सैनिकों को घायल करने का दावा किया। इसके साथ ही इराक ने आज शत्रु के 6 विमानों को

मार गिराने का दावा किया। इराक ने अमेरिका एवं उसकी सहयोगी सेनाओं पर आरोप लगाया कि वे उसके रिहायशी क्षेत्रों पर गोले बरसा रही हैं। उधर आज भी शांति के प्रयास जारी रहे।

8 फरवरी—आज इराक ने सऊदी अरब की राजधानी रियाद पर स्कड प्रक्षेपास्त्रों से प्रहार किए तथा बहुराष्ट्रीय सेना के 1 लड़ाकू विमान को मार गिराए जाने का दावा किया। इसके साथ ही इजराइल की पश्चिमी सीमा पर भी अपने स्कड प्रक्षेपास्त्र दागे। इराक ने दावा किया कि बहुराष्ट्रीय सेना के विमानों ने 138 हमले आबादीवाले क्षेत्रों में किए हैं। इराक ने कहा कि अब तक उसने शत्रु के 320 लड़ाकू विमानों तथा प्रक्षेपास्त्रों को मार गिराया है। जबकि बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने केवल 32 विमानों के नष्ट होने की पुष्टि की।

दूसरी ओर अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेना ने अपने हवाई हमले जारी रखे तथा आज जमीनी लड़ाई में कुवैत सीमा पर स्थित इराकी ठिकानों पर तोपों से जोरदार फायर किए। अमेरिकी नौसेना के विमानों ने भी बमबारी करके भारी नुकसान किया। आज अमेरिकी टास्क फोर्स ने इस अभियान में 4 इराकी सैनिकों को सीमा चौकी के पास बंदी बना लिया। जमीनी युद्ध शुरू करने के लिए अमेरिकी रक्षामंत्री डिक चैनी तथा सेना के प्रमुख जनरल वावेल जायजा लेने हेतु सऊदी अरब पहुँचे।

9 फरवरी—आज इराक ने पुनः इजराइल को युद्ध में घसीटने के लिए तेलअवीव पर प्रक्षेपास्त्र दागे। यह उसका इकतीसवाँ प्रक्षेपास्त्र प्रहार था। सऊदी अरब में भारी गोले दागकर बहुराष्ट्रीय सेनाओं को भारी नुकसान पहुँचाया। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अपना हवाई हमला आज भी लगातार जारी रखा। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने आज दावा किया कि अमेरिकी मैरीन का एक टोली दल इराक अधिकृत कुवैत के तट पर पहुँच गया। अमेरिकी जंगी जलयान 'यू.एस.एस. स्कोनसिन' ने 40 से.मी. तोपों के द्वारा लगभग 860 किलोग्राम के गोले दागकर जोरदार कहर ढाया। आज इराक के 13 लड़ाकू विमान ईरान में उतर गए। अब तक 147 इराकी विमान ईरान की सीमा में उतर चुके थे। शांति-प्रयास का सिलसिला दूसरी ओर जारी रहा।

10 फरवरी—आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराक के शहरों पर भी अपना हवाई हमला जारी रखा। आज की बमबारी में टिगरिस नदी पर बने दो महत्त्वपूर्ण पुल तथा अनेक सरकारी इमारतें बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गईं। फ्रांसीसी विमानों ने आज दक्षिणी-पूर्वी इराक में अनेक पुलों पर लेसर निर्देशित 'ए.एस.-30' प्रक्षेपास्त्रों से हमले किए। मित्र राष्ट्रों के विमानों ने कुवैत स्थित इराकी तोपखाने की यूनिट को भी अपना लक्ष्य बनाया। इराक ने दावा किया कि शत्रुसेना के विमानों ने आज 57 हवाई हमले किए हैं तथा अपने सैनिकों के बारे में मारे जाने की सही सूचना नहीं दे रहा है। जमीनी जंग शुरू होने के पूर्व-सप्ताह तक हवाई हमला जारी रहने की घोषणा एक मित्र राष्ट्रों की सेना कमांडर ने की।

11 फरवरी—आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराकी ठिकानों को ध्वस्त करने का अपना अभियान तेज कर दिया तथा इराक के एक महत्त्वपूर्ण 'शहीदी पुल' को भी नष्ट कर दिया। उन्होंने दावा किया कि ईरान में उतरे इराकी विमानों से कोई खतरा नहीं है; क्योंकि उनके विमानचालक अनुभवहीन हैं और वे युद्ध के लिए तैयार भी नहीं हैं। अब तक इराक के पचास प्रतिशत विमान नष्ट किए जा चुके हैं तथा 3 सचल स्कड प्रक्षेपास्त्र लांचरों को भी नष्ट किया जा चुका है। इराक की एक गश्ती नौका को भी डुबो दिया तथा बसरा तेल-शोधक कारखाने को भी अपना लक्ष्य बनाया। इसके साथ ही खाड़ी संकट को सुलझाने के लिए प्रयासों में भी तेजी आई। इराक ने आज इजराइल पर पुनः प्रक्षेपास्त्र दागे।

12 फरवरी—इराक ने इजराइल को उकसाने के लिए आज भी अपने स्कड प्रक्षेपास्त्रों से प्रहार किया तथा सऊदी अरब पर भी अपनी कार्यवाही जारी रखी। इजराइल ने बदला लेने की चेतावनी दी और कहा कि अब उसकी सहनशक्ति जवाब दे रही है। अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं का हवाई हमला लगातार जारी रहा। इराक ने आरोप लगाया कि कल रात से आज तक 126 हवाई हमले हुए हैं, जिसमें 96 हमले सैनिक ठिकानों पर तथा शेष 30 हमले नागरिक ठिकानों पर किए गए हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति ने संकेत दिया कि अभी जमीनी जंग नहीं होगी, क्योंकि हमारे हवाई हमले इराक पर अधिक कारगर सिद्ध हो रहे हैं। सोवियत संघ एवं ईरान के शांति-प्रयास भी लगातार जारी रहे।

13 फरवरी—आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं के द्वारा किए गए प्रक्षेपास्त्र प्रहार से इराक की राजधानी बगदाद में एक भूमिगत शरण-स्थल बंकर ध्वस्त हो गया। परिणामस्वरूप अनेक नागरिक मारे गए, जिसमें लगभग 1,000 लोगों के मरने का अँदेशा है। अमेरिका ने नागरिक ठिकानों के हमले को झूठा आरोप बताया। आज बहुराष्ट्रीय सेना की वायुसेना, नौसेना तथा थलसेना ने कुवैत स्थित इराकी सैनिकों पर लगातार 3 घंटे तक जोरदार बमबारी की। यह अब तक की संयुक्त सेनाओं की सबसे बड़ी कार्यवाही थी। दूसरी ओर इराक ने आज के इस आक्रमण की कोई सैनिक कार्यवाही नहीं की; बल्कि अपने सुरक्षा बंकरों में छिपे रहे। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराक तथा कुवैत पर अब तक 60,000 हवाई उड़ानें भरीं तथा 85,000 टन विस्फोटक बरसाया।

14 फरवरी—खाड़ी युद्ध के आज उनतीसवें दिन बहुराष्ट्रीय सेना द्वारा भीषण हवाई बमबारी जारी रही और आज इराक के करबला, नजफ व बसरा तेल ठिकानों को निशाना बनाया। इसके साथ ही दावा किया कि उसके विमानों ने इराक के एक प्रक्षेपास्त्र मरम्मत केंद्र तथा तीन चलते-फिरते प्रक्षेपास्त्र लांचरों को नष्ट कर दिया है। सऊदी-कुवैती सीमा पर एक मामूली मुठभेड़ की बात भी अमेरिका ने स्वीकार की।

आज इराक ने उत्तर-पश्चिम सऊदी कस्बे हफर-अल-बतन पर दो स्कड प्रक्षेपास्त्र दागे, लेकिन इससे कोई हताहत नहीं हुआ। इस कस्बे में अरब सेनाओं का मुख्य अड्डा

स्थित था। युद्ध शुरू होने से अब तक सऊदी अरब में इराक ने मध्यम दूरी तक मार करनेवाले 32 प्रक्षेपास्त्र दागे। इराक ने कहा कि शत्रु के हवाई हमले से आज 500 नागरिक मारे गए। शत्रु ने आज सादिंया, मकदादिया, याकूबिया तथा मांदली आदि इराकी शहरों में सैनिक, आर्थिक एवं तेल प्रतिष्ठानों पर हवाई हमले किए।

15 फरवरी—युद्ध के तीसवें दिन आज इराक ने कुवैत से सशर्त हटने की पेशकश की और कहा कि वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव संख्या 660 को स्वीकार करने को तैयार है; बशर्ते उसके विरुद्ध जमीनी, हवाई एवं नौसैनिक कार्यवाही बंद हो और अमेरिका की ओर से शामिल सभी राष्ट्रों की सेनाओं को वापस बुला लिया जाए। इसके साथ ही अधिकृत अरब क्षेत्रों से इजराइली वापसी, फिलिस्तीन समस्या के समाधान पर भी बल दिया। इराक ने पहली बार वापस हटने की सशर्त पेशकश की।

दूसरी ओर अमेरिका ने कहा कि अभी युद्ध विराम की कोई गुंजाइश नहीं है और हमारी कार्यवाही लगातार जारी रहेगी। हमने सदैव इस बात पर जोर दिया है कि इराक हर हालत में कुवैत से बिना शर्त एवं तुरंत पूरी तरह से हटे। अब वहाँ से सेना हटाने की इराकी पेशकश अपर्याप्त है। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने आज भी बिना ढील दिए अपना हवाई हमला जारी रखा और दावा किया कि हमारे हवाई हमले से इराक के एक तिहाई टैंक तथा तोपखाने तबाह हो गए हैं। आज इसने 'एयर फ्यूल बम' का नवीन हथियार प्रयोग किया।

16 फरवरी—आज अमेरिका ने सोवियत संघ का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि इराकी विदेशमंत्री तारिक अजीज के साथ बातचीत के नतीजे आने तक खाड़ी में मैदानी लड़ाई शुरू न की जाए, किंतु अपनी सेनाओं की तैनाती जारी रखी। बहुराष्ट्रीय सेनाओं का हवाई हमला इराक पर बदस्तूर जारी रहा। आज इनके विमानों ने 2,600 उड़ानें भरीं तथा बगदाद व कुवैत में लगभग 130 व्यक्ति मारे गए। इराक ने आज सऊदी अरब में 'स्कड' प्रक्षेपास्त्रों से प्रहार किया। परंतु उन्हें बीच में ही 'पेट्रियाट' द्वारा नष्ट कर दिया गया।

बड़ी संख्या में बहुराष्ट्रीय सेनाओं की ओर से अमेरिकी सैनिक संभावित जमीनी जंग के लिए उत्तरी सऊदी अरब में कुवैत व इराकी सीमा की ओर प्रक्षेपास्त्र टैंकों तथा अन्य आवश्यक साज-सामान सहित आगे बढ़े। इराक ने शत्रु के एक लड़ाकू विमान को मार गिराया। आज समुद्र में फैले तेल को हटाने के लिए जोरदार प्रयास शुरू किए गए। अनेक देशों ने शांति का आह्वान किया।

17 फरवरी—आज इराक ने इजराइल के परमाणु रियेक्टर स्थल डिमोना पर अपने 3 'स्कड' प्रक्षेपास्त्र दागे। इसके साथ ही अमेरिका के 4 लड़ाकू विमानों को मार गिराने का भी दावा किया। इराक ने आज भी आरोप लगाया कि अमेरिका के विमान उसके आबादीवाले क्षेत्रों पर अपने प्रहार कर रहे हैं। इराक के विदेशमंत्री शांतिवार्त्ता के लिए आज मास्को पहुँचे।

बहुराष्ट्रीय सेनाएँ तथा उनके बख्तरबंद वाहन आज सऊदी-कुवैती सीमा के निकट आगे बढ़े तथा लड़ाकू विमानों ने आज इराक के बसरा, फाव तथा अब्दुल खसीव पर लगातार 6 हमले किए। अमेरिका ने युद्ध विराम की संभावना से इनकार किया तथा दूसरी ओर इराक ने रासायनिक हथियारों के प्रयोग की धमकी दी। शांति-प्रयास इस समय प्रगति के साथ जारी था।

18 फरवरी—युद्ध को रोकने के लिए जहाँ एक ओर सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोव की विशेष कार्य-योजना पेश की गई, वहाँ दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय सेनाओं का हवाई हमला लगातार जारी रहा और इराकी नगर सभावा पर जोरदार हवाई हमला हुआ। अमेरिका के 2 जंगी जलयान समुद्री सुरंग से टकरा गए।

शत्रु के हवाई हमले के जवाब में इराक ने आज सऊदी अरब में अपना जोरदार प्रहार किया तथा कहा कि आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने 130 हवाई हमले किए, जिसमें शत्रु के 4 विमानों को मार गिराने का इराक ने दावा किया। शत्रु के नागरिक ठिकानों में किए गए हमले का विरोध किया। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने जमीनी जंग की पूरी तैयारी कर ली तथा इराक पर कुछ तोपों एवं राकेटों से फायर भी दागे। शांति-प्रयासों में लगातार जोर जारी रहा।

19 फरवरी—आज इस युद्ध को रोकने के लिए सोवियत नेता गोर्बाचोव के शांति-प्रस्ताव पर विचार-विमर्श करने इराकी विदेशमंत्री तारिक अजीज मास्को पहुँचने वाले थे, वहीं दूसरी ओर अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने अपना जोरदार हवाई हमला जारी रखा। सोवियत संघ ने जमीनी जंग अभी 2 दिन तक रोके रहने की अपील की। कल से आज तक इराकी नागरिक ठिकानों पर 65 तथा सैनिक ठिकानों पर 179 हमले हुए।

बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने जमीनी जंग की बजाय अपनी जल एवं वायुसेना की जोरदारी से प्रयोग करने की योजना तैयार कर ली। 30,000 नौसैनिकों से सज्जित 31 भारी जलयान बड़ी व्यग्रतापूर्वक युद्ध के अंतिम आदेश के लिए इंतजार में प्रतीक्षारत थे। अनेक मैरीन दस्ते तैनात थे तथा आपूर्ति-व्यवस्था बनाए रखने के लिए सी-30 मालवाहक विमान आवश्यक सैन्य-सामग्री अग्रिम मोरचे में पहुँचाने में जुटे हुए थे।

20 फरवरी—बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने आज हवाई हमले बगदाद में जोरदारी से किए तथा इजराइल ने भी लेबनान की बेक्का घाटी में फिलिस्तीनी ठिकानों पर हवाई हमले किए। इराक ने भी आज दावा किया कि उसके सशस्त्र बलों ने कुवैत-सऊदी सरहद पर दुश्मनों के हेलीकॉप्टर द्वारा किए गए एक हमले को पूरी तरह नाकाम कर दिया और उसकी सेना को भारी नुकसान पहुँचाया है। उधर मास्को ने पुनः अमेरिका तथा उसके मित्र राष्ट्रों को आगाह किया कि वे शांति-योजना पर इराक की प्रतिक्रिया जानने के पूर्व जमीनी जंग न शुरू करें। बहुराष्ट्रीय सेना ने आज इराक पर 148 हमले करके भारी हानि पहुँचाई। अमेरिकी सेना ने इराक की एक निगरानी चौकी पर भी अपने अधिकार का दावा किया।

21 फरवरी—आज अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं एवं इराकी सेनाओं के बीच कुवैत-सऊदी सीमा पर अनेक स्थानों पर झड़पें हुईं, जिसमें इराक का एक सैनिक प्रतिष्ठान नष्ट हो गया, जिसे इराक ने नौसैनिक अड्डे के रूप में प्रयोग किया था। दूसरी ओर हवाई हमले लगातार जारी रहे। आज इराक ने कहा कि वह अरब और मुसलिम इतिहास की सबसे भयंकर लड़ाई में काफिरों को कुचल देने के लिए पूरी तरह से तैयार है।

अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने कहा कि इस युद्ध को समाप्त करने के लिए सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचोव शांति-योजना की शर्तों को अगर सख्त बना दें तो अमेरिका इसे स्वीकार कर सकता है। इराक को 4 दिन के अंदर कुवैत को खाली कर देने की शर्त लगानी चाहिए। अनेक देशों ने शांति-योजना का जोरदार स्वागत किया और आशा की कि अमेरिका शांतिपूर्ण समाधान का अवसर हाथ से नहीं जाने देगा।

22 फरवरी—आज अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने इराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन को कल दोपहर से कुवैत से सेना तुरंत एवं बिना शर्त हटाने का अल्टीमेटम दिया और कहा कि हम कल दोपहर तक सार्वजनिक एवं आधिकारिक रूप से इस आशय की घोषणा सुनना चाहते हैं। इसके साथ ही—कुवैत से ह्टने के पूर्व इराक वहाँ के तेल उत्पादन को मनमाने ढंग से नष्ट करने की चेष्टा कर रहा है—अमेरिका द्वारा यह आरोप लगाया गया।

इराक ने सोवियत संघ की आठ सूत्रीय शांति-योजना को स्वीकार कर लिया और कुवैत से पूर्णरूप से बिना शर्त वापसी की घोषणा कर दी। अमेरिका ने इस पर आशंका व्यक्त करते हुए अपना हवाई हमला जारी रखा। दोनों ओर से सऊदी अरब की सीमा में झड़पें जारी रहीं, जिसमें 70 इराकियों को बंदी बना लिया गया। इजराइल ने भी इस शांति-योजना को नामंजूर कर दिया।

23 फरवरी—इराक के विदेशमंत्री तारिक अजीज ने मास्को में कहा कि उनका देश खाड़ी युद्ध को समाप्त करने से संबंधित सोवियत संघ की नवीन छः सूत्रीय योजना की पूरी तरह से पुष्टि और समर्थन करता है। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि अमेरिका का संभावित जमीनी हमला कामयाब नहीं हो सकेगा। इराक ने अमेरिका के अल्टीमेटम को अपमानजनक मानते हुए अस्वीकार कर दिया।

अमेरिका ने सोवियत संघ की दूसरी छः सूत्रीय शांति-योजना को भी नामंजूर कर दिया तथा इराक पर आरोप लगाया कि वह कुवैत के 100 तेल कुओं में आग लगा चुका है। बहुराष्ट्रीय सेनाओं के कमांडरों ने कहा कि किसी भी समय जमीनी जंग छिड़ सकती है। उसके हवाई हमले आज भी जारी रहे और इराक के अंदर 20 कि.मी. तक आक्रमण किया।

24 फरवरी—आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने जमीनी जंग शुरू करके कुवैत शहर में अपना अधिकार जमाने में एक महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की तथा लगभग 5,500 इराकी सैनिक

बंदी बना लिये। उन्होंने दावा किया कि आज जमीनी जंग के मात्र 10 घंटे में ही युद्ध के पहले दिन के पहले लक्ष्यों को पूरा कर लिया गया है। बहुत कम संख्या में ही हमारे सैनिक आज की कार्यवाही में हताहत हुए हैं।

इराक ने 'मादर-ए-जंग' का ऐलान तो कर दिया; परंतु इस सूचना का खंडन किया कि इराकी सेनाएँ लड़ाई के सभी मोरचे पर विफल हो रही हैं। इराक ने कहा कि हमारी स्थल सेनाएँ तब तक लड़ती रहेंगी जब तक अमेरिका सोवियत संघ के शांति-प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर लेता। आज दोनों पक्षों में जोरदार संघर्ष शुरू हो गया। आज अनेक क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय सेनाओं को सफलता मिली।

25 फरवरी—आज युद्ध का चालीसवाँ दिन भी भीषण बरबादी एवं तबाही के साथ शुरू हुआ। आज बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने कुवैत पर अपना शिकंजा कसने का दावा किया; लेकिन कुवैत अब भी इराक के अधिकार में था। इराक ने भी दावा किया कि हमारी सेनाओं ने बहुराष्ट्रीय सेनाओं के विरुद्ध जोरदार कार्यवाही की तथा उन्हें भारी नुकसान पहुँचाया है। आत्मसमर्पण की बात को सफेद झूठ कहा। बहुराष्ट्रीय सेनाओं के हवाई हमले बगदाद पर बहुत तेज हो गए; ताकि इराकी रिपब्लिकन गार्डों का सरलता से सामना किया जा सके।

अमेरिकी नौसेना भी जमीनी जंग में सहयोग देने के लिए कुवैत शहर के निकट पहुँच गई। इराक ने अपने 2 'स्कड' प्रक्षेपास्त्र पुनः इजराइल पर दागे। इस प्रकार आज का युद्ध अपने चरमबिंदु पर पहुँच रहा था।

26 फरवरी—आज इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने राष्ट्र के नाम एक प्रसारण में कहा कि आज से हमारी महान् सशस्त्र सेनाएँ कुवैत से वापसी शुरू करेंगी और यह काम आज ही पूरा कर लेंगी। इराकी सेना धूर्त्त बहुराष्ट्रीय सेनाओं के हमले का बहादुरी से मुकाबला करने में कामयाब रही है। अपनी सेना की सराहना करते हुए कहा कि आप लोग तीस देशों का मुकाबला करने में सफल रहे हैं। आपने सारी दुनिया का मुकाबला किया है, आपने जीत हासिल की है। कामयाबी आपके कदम चूम रही है। साथ ही बिना शर्त कुवैत से अपनी फौजें हटाने की घोषणा की।

अमेरिका ने इराक के तत्काल युद्ध विराम को ठुकराते हुए कहा कि इराक को सुरक्षा परिषद् के युद्ध की क्षतिपूर्ति से संबंधित प्रस्ताव सहित 12 प्रस्तावों को स्वीकार करने की घोषणा करनी चाहिए। युद्ध जारी रखने की घोषणा अमेरिका द्वारा की गई। आज इराक की सीमा के काफी अंदर जाकर बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने पश्चिम की ओर से इराकी सैनिकों के भागने के सभी मार्गों पर कब्जा कर लिया। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की बैठक बुलाई गई। एक 'स्कड' प्रक्षेपास्त्र सऊदी अरब के शहर दहरान में अमेरिकी सेना के कैंप पर गिरा; जिससे 28 सैनिक मरे तथा 98 सैनिक घायल हो गए। ब्रिटिश सेना ने इराक के 30-40 टैंक नष्ट कर दिए। जमीनी जंग का तीसरा (आज का दिन) भी जोरदार रहा। कुवैत को अधिकृत करने में सफल हुए।

27 फरवरी—आज कुवैत को आजाद कराने और कुवैत स्थित इराकी सेनाओं को घेरे में लेने के बाद अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराक के अंदरूनी (भीतरी) भागों में प्रवेश शुरू कर दिया तथा अपने अनेक छाताधारी सैनिकों को वहाँ उतारा, जहाँ जोरदार संघर्ष हुआ। बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इराक के बसरा, अलउमारा क्षेत्रों पर जोरदार हवाई हमले किए तथा इराक के लगभग 32,000 सैनिकों को बंदी बनाने का दावा किया। इसके साथ ही 3 दिन की जमीनी जंग में बहुराष्ट्रीय सेना के केवल 23 सैनिक ही मारे गए हैं।

इराक ने आज संयुक्त राष्ट्र को सूचित किया कि वह खाड़ी युद्ध विराम लागू होने के बदले में कुवैत पर अपना दावा छोड़ने और युद्ध मुआवजे की माँगें पूरी करने के लिए तैयार है। युद्ध विराम के बाद सभी युद्धबंदियों को भी छोड़ देने को तैयार है। इराक की करारी पराजय खुलकर सामने आ गई। संयुक्त राष्ट्र की परीक्षा की घड़ी भी आ गई। इस युद्ध से अमेरिका के दामन में कोरिया एवं वियतनाम युद्ध के दाग अवश्य धुल जाएँगे। आज स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो गई।

28 फरवरी—आज इराक के द्वारा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के सभी प्रस्ताव स्वीकार कर लेने तथा अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं द्वारा खाड़ी युद्ध विराम की घोषणा के साथ यह युद्ध समाप्त हो गया। कुवैत की आजादी तथा इराक की पराजय के पश्चात् अमेरिकी राष्ट्रपति बुश ने युद्ध विराम की घोषणा भारतीय समय के अनुसार प्रातः 10.30 बजे व्हाइट हाउस से की।

यह ऐतिहासिक युद्ध विराम कुवैत पर इराकी कब्जे के 209 दिन, वास्तविक संघर्ष के 42 दिन तथा जमीनी जंग के 100 घंटे बाद हुआ।

अस्थायी युद्ध विराम

युद्ध विराम के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के समक्ष यह शर्तें रखीं—

1. इराक तत्काल सभी युद्धबंदियों और विदेशी नागरिकों को रिहा करेगा।
2. इराक कुवैत के सभी बंधकों को रिहा करे।
3. इराक सभी जमीनी तथा समुद्री सुरंगों का पता, ठिकाना और उनकी प्रकृति कुवैती अधिकारियों को बताए।
4. इराक संयुक्त राष्ट्र से संबंधित सभी प्रस्तावों को स्वीकार करे। इसमें इराकी हमले से कुवैत को हुई हानि तथा आघात का मुआवजा भरना भी शामिल है।

परिणाम

इस युद्ध से हुई हानि के अभी तक सही आँकड़े प्राप्त नहीं हो सके हैं। परंतु यह

सुनिश्चित है कि लाखों की संख्या में सैनिक एवं नागरिक हताहत हुए हैं। नवीनतम शस्त्र प्रणाली का प्रयोग-स्थल भी यह क्षेत्र बना। इस युद्ध से अमेरिका ने अपने ऊपर लगे कोरिया एवं वियतनाम के कलंक को खाड़ी के खून से धो दिया और संसार की सर्वोच्च शक्ति के रूप में उभरकर आया। अमेरिका की जहाँ प्रतिष्ठा बढ़ी वहाँ विश्व में उसका वर्चस्व भी स्थापित हो गया। दूसरी ओर इराक को विभिन्न आर्थिक एवं सैनिक प्रतिबंधों से इतना जकड़ दिया गया कि वह युद्ध के लिए निकट भविष्य में सिर न उठा सके। अमेरिका ने युद्ध विराम का श्रेय भी स्वयं अपने हाथों में ले लिया।

सैन्य शिक्षाएँ

1. इस विनाशकारी युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि भविष्य के युद्ध अत्यंत भयंकर एवं खर्चीले होंगे कि कोई भी राष्ट्र सहन नहीं कर सकता।
2. किसी भी युद्ध में सफलता का आधार है कि हर रणनीति को पूरी तरह से सोच-समझकर अपनाया जाए; जैसाकि अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने इस युद्ध में किया।
3. शत्रु को धोखा देना ही सफलता का प्रमुख रहस्य है; जैसाकि अमेरिका ने अपनी जल, थल एवं नभ कार्यवाही एक साथ करके इराक को चकित कर दिया और एक ऐतिहासिक व समरतांत्रिक सफलता प्राप्त की।
4. युद्ध में आक्रामक पहल भी सफलता में सच्चा सहयोग देती है; जैसाकि इस युद्ध में अमेरिका व सहयोगी देशों ने लगातार अपनी आक्रामक पहल जारी रखी और निर्धारित समय व स्थान का लाभ प्राप्त किया।
5. इस युद्ध में यह निश्चित हुआ कि भावी युद्ध अत्यंत आधुनिक शस्त्रास्त्र प्रणाली से ही लड़े जाएँगे; जैसाकि इस युद्ध में टामहॉक, क्रूज, पेट्रियाट तथा स्कड जैसे प्रक्षेपास्त्र और एयर फ्यूल बम आदि शस्त्रास्त्रों का प्रयोग हुआ।
6. युद्ध में सेनाओं की सफलता का आधार उसकी आपूर्ति-व्यवस्था तथा शत्रु की निगरानी रखते हुए उसको इनसे वंचित करना ही है।
7. इस युद्ध ने सिद्ध कर दिया कि भविष्य में लड़े जानेवाले युद्धों पर यदि अंकुश न लगाया गया तो यह निश्चित है कि चाहे उस क्षण में विश्व विनाश न हो; परंतु पर्यावरण का संतुलन इतना असंतुलित हो जाएगा जिसमें मानव सभ्यता के लिए भीषण आपदाएँ खड़ी हो जाएँगी। जैसाकि इस युद्ध में समुद्र में बहते तेल तथा तेल कुओं में लगी आग, जो पर्यावरण संकट उत्पन्न कर रही है, उससे प्रबुद्ध वर्ग भलीभाँति परिचित हो गया है।
8. इटली के प्रसिद्ध सैन्य विचारक जनरल गाइलो डूहेट के उस कथन को इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया, जिसमें उन्होंने कहा था कि भविष्य के युद्धों में नभ प्रभुत्व स्थापित करना ही सफलता का प्रमुख आधार होगा। जैसाकि

इस युद्ध में अमेरिकी नेतृत्ववाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं ने स्थल युद्ध के बजाय लगातार हवाई हमले करके इराक को युद्ध विराम के लिए मजबूर कर दिया। अतः भविष्य में अति आधुनिक प्रणाली से युक्त वायुसेना निर्णायक भूमिका अदा करेगी, ऐसा अनुमान है।

9. किसी भी युद्धाभियान को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम शत्रु की आपूर्ति-व्यवस्था तथा आर्थिक व्यवस्था को ठप्प कर दिया जाए; ताकि वास्तविक युद्ध आरंभ होने से पूर्व ही वह अपने घुटने टेकने के लिए मजबूर हो जाए। जैसाकि इस युद्ध में शत्रु की संचरण व्यवस्था, आपूर्ति-व्यवस्था तथा आर्थिक नाकेबंदी करके बहुराष्ट्रीय सेनाएँ सफल हो सकीं।

10. इस युद्ध ने प्रमाणित कर दिया कि भविष्य के युद्धों में भी विश्व जनमत का सहयोग एवं राष्ट्र के लोगों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति भी सफलता की मजबूत कड़ी होगी। जैसाकि अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र की मंजूरी लेकर युद्ध के घोड़े को मनमरजी से दौड़ाया तथा उछाला। यही कारण था कि उसे इस अभियान में एक ऐतिहासिक सफलता मिली, जिसने पिछले कोरिया तथा वियतनाम युद्ध के लगे धब्बों को भी धो दिया।

□ □ □
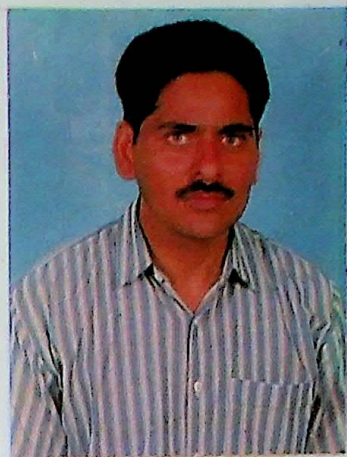
सुरेंद्र कुमार मिश्र का जन्म 10 जुलाई, 1955 को कानपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ। आपने 1978 में कानपुर से सैन्य विज्ञान की स्नातकोत्तर परीक्षा में विश्वविद्यालय में तृतीय स्थान प्राप्त किया। तत्पश्चात् सैन्य विज्ञान में ही पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। सैन्य विज्ञान से संबंधित अब तक आपकी तेरह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में आपके अनेक सामयिक, सामरिक व अंतरराष्ट्रीय लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आप सामरिक पुस्तकों के समीक्षक तथा आकाशवाणी के रक्षा व विज्ञान के स्थायी वार्त्ताकार हैं। संप्रति राजकीय महाविद्यालय, आदमपुर (हिसार), हरियाणा में सैन्य विज्ञान विभाग में प्रवक्ता एवं अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। आपको सोलह वर्षों का शैक्षिक अनुभव प्राप्त है। आप नेशनल कांग्रेस फॉर डिफेन्स स्टडीज,मद्रास तथा इंडियन एसोसिएशन ऑफ डिफेन्स एनालिसिस्ट, कानपुर के सदस्य हैं।